ग० कृ० गुर्जर द्वारा श्री लक्ष्मी नारायण प्रेस,
काशी में मुद्रित।

विषय-सूची

भूमिका

नित्यं शुद्धं निराकारं निराभासं निरंजनम् ।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्मनमाम्यहं ॥

प्रथम उस परम पूज्य सर्वव्यापक सर्वाधार सर्वपालक और सर्वपोषक परमेश्वर को कोटिशः धन्यवाद है जो अपने पतित-पावन नाम की सार्थकता प्रकट करने के लिये अपनी असीम दया द्वारा हम जैसे निर्बुद्धि और तुच्छ जीवों के निकृष्ट कार्यों पर दृष्टि न देकर अपने अपार अनुग्रह से सदैव हमारा निर्वाह करता रहता है। मुझ अल्पज्ञ की सामर्थ्य कहाँ कि उस सर्व-शक्तिमान् विश्वपति के गुणानुवाद गायन करने का कुछ साहस कर सकूँ !

फिर भी उसका यशोगान कर अपने कथनीय विषय पर आता हूँ।

अब से प्रायः तेंतालीस चौवालीस वर्ष पूर्व जब मैं अपनी जन्मभूमि कस्बा टप्पल जिला अलीगढ़ में पढ़ा करता था, तब मैं अनेक वृद्ध मनुष्यों के मुख से बहुधा समरू की बेगम की कथा सुना करता था। मुझे उस समय अधिक बोध न था; इसलिये उनके कथन को तो चाव से सुनता रहता था, परन्तु उसका अर्थ नहीं समझता था। किन्तु उसके २० या २१ वर्ष पश्चात् सन् १९०० में जब मैं अलवर की जय-पलटन के साथ बाक्सर युद्ध के अवसर पर चीन देश को गया, तो वहाँ टिन-सिन नगर में एक दिन अकस्मात् एक सैनिक अफसर के पास मैंने एक ऐसी अँगरेजी पुस्तक देखी जिसमें बेगम समरू का

संक्षिप्त वर्णन था। उसका मेरी दृष्टि में आना था कि मुझे अपने बचपन का समय स्मरण हो आया और उसका समस्त दृश्य मेरी आँखों के आगे फिर गया। मेरे चित्त पर उसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मैंने उसी समय से यह धारणा कर ली कि बेगम संबंधी समाचारों की खोज करूँगा; और यदि हो सका तो मैं उसका जीवन चरित्र भी लिखूँगा।

परन्तु बहुत काल तक मुझे इस विषय की कोई बात नहीं मिली। पर ज्यों ज्यों समय व्यतीत होने लगा, मेरी इच्छा प्रबल और दृढ़ होती गई। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थकार और हिंदी समाचारपत्रों के अनुभवी सम्पादक पंडित नन्दकुमार देव शर्मा से, जो कुछ वर्षों तक अलवर राज्य के इतिहास कार्यालय में रहे थे, मेरा परिचय हो गया। इस संबंध में मैंने उनसे प्रार्थना की। इस पर उन्होंने अपनी हस्तलिखित समरू और बेगम समरू की जीवनियों की प्रतियाँ, जिनको मिस्टर थामस बेल साहब ने अँगरेजी भाषा में लिखा था और जो "ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी" (Oriental Biographical Dictionary) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई थीं, कृपापूर्वक मुझे दे दीं। तथा उन्हीं महानुभाव ने मुझे बतलाया कि समरू और बेगम समरू का वृत्तान्त मिस्टर हेनरी जॉर्ज कीनी साहब कृत अँगरेजी पुस्तक "मुग़ल एम्पायर" (Moghal Empire by Henry George Keene), अंतिम अंक उर्दू रिसाला "अदीब" जो सैयद अकबर अली फीरोजाबादी के सम्पादकत्व में मुफीद-इ-आम प्रेस आगरे में छपता था और पादरी कीगन साहब कृत तथा पादरी क्रिस्टोफर साहब विवर्द्धित अँगरेजी पोथी "सरधना

और वहाँ की बेगम" ("Sardhana and Its Begum" by Rev. W. Keegan D. D., and Enlarged by Rev. Fr. Christopher, O. C.) नामक में भी मिलेगा मुग़ल एम्पायर ग्रंथ में अवश्य इन दंपति के विषय में जहाँ तहाँ उल्लेख है, किन्तु वह क्रमबद्ध नहीं है। इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि "हाल-इ-बेगम साहिबा" नाम का बेगम समरू का जीवन चरित्र फारसी भाषा में उसकी मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ था। परन्तु अब यह पोथी कहीं नहीं मिलती, यहाँ तक कि वह अब स्वर्गवासी खान बहादुर मौलवी खुदाबख्श साहब के प्रसिद्ध फारसी पुस्तकालय पटना नगर में और बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के पुस्तकालय में भी नहीं है। इसी प्रकार रिसाला अदीब का वह अंक भी, जिसमें बेगम का चरित्र प्रकाशित हुआ है, बहुतेरा ढुँढ़वाया; परन्तु कहीं प्राप्त न हो सका। सरधना नामक पुस्तक भी बड़ी कठिनाई से कई वर्ष की लिखा पढ़ी के उपरान्त मेरे प्रिय मित्र लाला रामदयालु जी विद्यार्थी मुखतार और रिसाला "वैश्य हितकारी" मेरठ के सम्पादक द्वारा प्राप्त हुई।

इन पुस्तकों के आ जाने पर भी मेरी यह लालसा बनी रही कि फारसी भाषा की पोथियों अथवा लेखों में बेगम संबंधी जो कुछ लिखा गया है, उसकी सहायता भी ली जाय; क्योंकि बेगम के शासन काल में फारसी भाषा ही प्रचलित थी। परन्तु इसका प्रचार अब नहीं रहा है और इसके ग्रंथ भी लुप्त हो गए हैं, जो बड़ी खोज करने से कठिनतापूर्वक कहीं कहीं मिलते हैं। अलवर नगर में हकीम मुहम्मद उमर साहब फसीह ने मुसल्मानी काल

के अगणित व्यक्तियों और इमारतों आदि का नाना प्रकार का बहुमूल्य विश्वसनीय वृत्तान्त हस्त लिखित और मुद्रित पुस्तकों, शाही फरमानों, पट्टों और शिलालेखों के रूप में संग्रह किया है और अब भी वे निरंतर करते रहते हैं। उनसे बेगम के विषय के समाचार देने के निमित्त मैंने प्रार्थना की, जिस पर उन्होंने अपने विशाल लेख भंडार से फारसी और उर्दू के कुछ फुटकर वाक्य इस संबंध के नकल करके मुझे प्रदान किए। इनके अतिरिक्त मौ० मुहम्मद सईद सब ओवरसियर और उनके बुजुर्ग पिता मौलवी अब्दुल वाहिद साहब फ़ारूक़ी थानवी ने कृपया अपने मित्रों को अनेक पत्र लिखे, जिनके उत्तर में केवल लाला चिरंजीलाल नायब रजिस्ट्रार कानूनगो तहसील बुढ़ाना जिला मुजफ्फरनगर ने क़स्बा बुढ़ाना से, जो अँगरेजी शासन में आने के पूर्व बेगम के राज्य के अंतर्गत था, स्थानीय अनुसंधान और अन्वेषण करके कुछ समाचार डाक द्वारा मेरे पास भेजे।

इस सामग्री के हस्तगत होने पर भी मेरा हार्दिक निश्चय है कि अभी बेगम संबंधी बहुत सी बातें शेष रह गई हैं, जो मुझे प्राप्त नहीं हुई हैं; किंतु अपनी वर्तमान स्थिति देखते हुए मुझे आशा नहीं होती कि मुझे और अधिक सामग्री प्राप्त हो सके। अतः विशेष प्रतीक्षा करना व्यर्थ है; क्योंकि पहले ही मेरी इस खोज में कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इसी संगृहीत सामग्री के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की गई है। सब से पहले मेरे मन में इसका नाम रखने का विचार उत्पन्न हुआ। सब बातों को भली भाँति सोच समझकर मैंने इसका नाम "शाही दृश्य" रखना उचित समझा। इस

नामकरण का मुख्य कारण यह है कि इस पुस्तक में जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है, उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विशेषतः उस समय से संबंध है जो शाही जमाना कहलाता है।

इस शाही दृश्य नामक पुस्तक को तीन खंडों में विभक्त किया गया है।

प्रथम खंड में मुगल साम्राज्य के अधःपतन का दिग्दर्शन है, जो "मुगल एम्पायर" नामक पुस्तक से समरू के चरित्र के प्रारंभ तक कराया गया है। मुगल अधःपतन का उल्लेख करने का यह कारण है कि समरू दम्पति का जीवन मुगल अधःपतन काल में गुजरा है—उनके कार्य उस युग के कार्य है—जैसा कि उनके मुख्य चरित्र-लेखक पादरी कीगन साहब ने अपनी सरधना नाम की पोथी में प्रकट किया है—

"ये समाचार अनेक परंपरागत, लिखित और ऐतिहासिक आधारों से प्राप्त किए गए हैं। इनका उद्देश्य यह है कि उन दो महानुभावों की सच्ची सच्ची कथा प्रकट की जाय, जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तरीय भारत में उन कष्टों में, जो मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के कारण उत्पन्न हुए, अपना बड़ा चमत्कार दिखाया।" इसलिये मुझे इस वर्णन का सब से पूर्व लिखना उचित और आवश्यक प्रतीत हुआ। इसमें भारतीय स्वाधीनता के नष्ट होने के समय की अनेक प्रसिद्ध और महत्वशाली घटनाओं का उल्लेख है, जिनको पढ़कर वर्तमान शान्तिमय और सुखदायक युग के निरुपाय, पुरुषार्थहीन और अपाहज भारत-वासियों के मन में, जिनका जीवन अधिकतर प्रसाद, सुगम कार्यों, भोग विलास और

नाना प्रकार की सुविधाओं में रात दिन व्यतीत होता है, अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होगा। निस्संदेह भारत के इतिहास में वह घोर अंधकार और दारुण दुःख का समय गिना जाता है। जिस समय चारों ओर अराजकता, अन्याय, अत्याचार और कपट का राज्य था, उस समय मनुष्यों के साथ पशुओं की भाँति व्यवहार किया जाता था। प्रजा के कष्टों की सीमा पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। किन्तु इतिहास-वेत्ता जानते हैं कि स्वतंत्र और जीवित जातियों के जीवन में कभी कभी ऐसा कठोर युग भी आता है।

द्वितीय खंड में समरू का जीवन चरित्र है। इसके लिखने में "मुगल एम्पायर" के अतिरिक्त "सरधना", "आरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी" और मुनशी ज्वालासहाय कृत उर्दू इतिहास "विकाये राजपूताना" से भी सहायता ली गई है। समरू एक चतुर सैनिक था और अपने इसी गुण के कारण वह भारतवर्ष के इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।

तृतीय खंड में बेगम समरू के जीवन की कथा है जिसके लिखने का मेरा मूल उद्देश्य था। इसकी रचना में पुस्तक "विकाये राजपुताना" को छोड़ उस समस्त सामग्री का उपयोग किया गया है, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

अनेक अवगुण और दूषण होने पर भी भारत के प्राचीन ऐतिहासिक नायकों में वे उच्च उत्कृष्ट गुण विद्यमान थे, जिनके कारण भारतवर्ष की गिनती स्वाधीन देशों में होती थी और जिनका पीछे से उनकी संतानों में शनैः शनैः ह्रास होकर अभाव सा हो गया है। उन पूर्वजों के जीवन का इतिहास इस घाटे की पूर्ति करने के निमित्त बड़ी प्रबल शिक्षा देता है।

अब मुझे यह और निवेदन करना शेष रह गया है कि मैं उर्दू-ख्वाँ हूँ। हिन्दी का तो मुझे इतना अल्प ज्ञान है जो न होने के समान है। अवश्य अपनी मातृ भाषा हिन्दी के लिये मेरे हृदय में बहुत श्रद्धा और प्रेम हो गया है। मुझे अपनी इस वृद्धावस्था में अनेक कार्यों से अवकाश और अवसर नहीं जो नियमपूर्वक अब इसे पढ़ूँ; परंतु यह अवश्य चाहता हूँ कि यथा सम्भव इसकी उन्नति करूँ। अतः मुझे एक यही उपाय दिखाई देता है कि अन्य भाषाओं की सहायता से हिन्दी भाषा में पुस्तकें लिखकर उसका ज्ञान प्राप्त करूँ। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है, जो प्रत्यक्ष में प्रचलित प्रथा के नितांत विपरीत और अति कठिन है; किन्तु अन्य प्रकार से मेरे लिये इस कार्य का पूर्ण करना सम्भव ही नहीं है। ऐसी स्थिति में इस पुस्तक की रचना में नाना प्रकार की अशुद्धियों और त्रुटियों का होना एक साधारण बात है। प्रथम और द्वितीय खंडों को मैंने अपने नातेदार चिरंजीव जयनारायण (ज्येष्ठ पुत्र लाला गणेशीलाल जी तहसीलदार अलवर) और तृतीय खंड को श्रीमान पंडित श्रीमन्नारायण जी शास्त्री को दिखाकर कुछ शुद्ध करा लिया है; तो भी इसकी उस न्यूनता की पूर्ति नहीं हुई जो वास्तव में मूल लेखक के भाषा के विद्वान् और मर्मज्ञ होने के कारण ग्रन्थ में पैदा हो सकती थी; क्योंकि सुधारक महाशयों ने तो केवल लेख की वे साधारण और मोटी मोटी भूलें ठीक कर दी हैं जो वे कर सकते थे*। अतः विद्वान् पाठकगण मुझे इस विषय में क्षमा करें।

---

* दुःख है कि इतने पर भी इस पुस्तक की हस्त-लिखित प्रति में बहुत सी

अंत में मैं उन सज्जनों को अपना सत्य और हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने किसी न किसी भाँति मुझे इस पुस्तक की रचना में सहायता दी है, विशेष कर पंडित नन्दकुमार देव जी शर्मा का मैं बहुत आभारी हूँ, जो मुझे इसके लिखने के लिये निरंतर उत्तेजित और उत्साहित करते रहे हैं। अपनी अयोग्यता के कारण कदाचित् ही मैं इसको हिन्दी में लिखने का साहस और प्रयत्न करता, यदि वे मुझे सदैव इसका स्मरण न दिलाते रहते।

अलवर (राजपूताना) } निवेदक
अषाढ़ कृ० १२ सं० १९८० } मक्खनलाल गुप्त गुर्क।

पुनश्च—उपर्युक्त भूमिका की मिती के पढ़न से विदित होगा कि यह पोथी संवत् १९७९-८० में लिखी जाकर प्रकाशानार्थ काशी नागरीप्रचारिणी सभा के कार्य्यालय में भेज दी गई थी। तदनन्तर इस बीच में निम्नलिखित पुस्तकें और मासिक पत्र इस विषय के मेरे देखने में आए—तीन अंग्रेजी निबन्ध जो महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी लिखित और कलकत्ते के प्रसिद्ध और प्रभावशाली अंग्रेजी मासिक पत्र "माडर्न रिव्यू" की अप्रैल, दिसम्बर सन् १९२४ तथा सितम्बर सन् १९२५ की संख्याओं में थे; और एक हिन्दी लेख पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० एल० टी० का लिखा आजकल हिन्दी

त्रुटियाँ रह गई थीं और इसकी भाषा बहुत अधिक शिथिल थी। छपने के समय मैंने उसे बहुत परिश्रम करके, जहाँ तक हो सका है, ठीक करने का प्रयत्न किया है।

रामचन्द्र वर्म्मा, प्रका० मंत्री।

भाषा की विख्यात मासिक पत्रिका 'माधुरी' के श्रावण तुलसी संवत् ३०२ के अंक में प्रकाशित हुआ है; तथा फारसी का इतिहास "मिफ्ताहुत्तवारीख़" । अब जब कि यह पुस्तक छपने के लिये जाने लगी, तो मँगाकर इस प्रकार इसमें घटा बढ़ा दिया है—

चतुर्वेदी जी के लेख और मिफ्ताहुत्तवारीख से तो केवल इनी गिनी थोड़ी सी बातें लेकर समरू के जीवन चरित्र में कहीं कहीं बढ़ा दी गई हैं। किन्तु बनर्जी महोदय के तीनों हो लेख अतीव महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य हैं; क्योंकि वे बड़ी खोज और जाँच के पश्चात् प्रकाशित किए गए हैं। उनमें बेगम समरू के उत्तर काल के बहुत से नवीन और अपूर्व समाचार दिए गए हैं; अतएव उनमें से अनेक बातें लेकर मैंने अपनी इस पुस्तक के पूर्व-लिखित अध्यायों में जहाँ तहाँ प्रविष्ट कर दी हैं; एवं "राज्य विस्तार" शीर्षक अध्याय को नवीन सामिग्री लेकर नए सिरे से फिर लिखा है। और पाँच अध्याय "राजस्व, चित्र, व्यय, सेना और उत्तराधिकारी" नए लिखकर सम्मिलित कर दिए गए हैं। "चित्र" शीर्षक में अवश्य मिश्रित सामग्री का (अर्थात् कुछ वह वृत्तान्त जो पहले "इमारत" नामक अध्याय के अन्तर्गत था, वहाँ से निकालकर और कुछ नवीन प्राप्त समाचार का) उपयोग किया है। शेष चार अध्याय तो एक दो बातों के अतिरिक्त बिलकुल उक्त बनर्जी महाशय के लेखों के आधार पर ही रचे गए हैं।

बेगम समरू को इस असार संसार से गए हुए ९० वर्ष व्यतीत हो चुके। उसने ९० वर्ष की लम्बी आयु पाई थी जिसके अन्तर्गत ५९ वर्ष के दीर्घ काल पर्यन्त शासन

किया, जिसका यह स्पष्ट प्रभाव पड़ा कि उत्तरीय भारत और उसके निकटस्थ राजपूताने में इस समय भी जो जनता है, उसमें से ५०-६० वर्ष के वय के जो मनुष्य विद्यमान हैं, उनमें से लगभग ६० आदमी प्रति सैकड़े ऐसे हैं जो उसके नाम से परिचित हैं, चाहे उसका हाल उनमें विरले ही जानते हों।

अतएव मेरा यह कहना कदाचित् अनुचित न होगा कि इस पुस्तक में उन समाचारों का अधिकतर उल्लेख हो गया है जो पश्चिमी इतिहास-लेखकों ने उसके संबंध में लिखी हैं।

अलवर (राजपूताना)
मार्गशीर्ष कृ० ९ सं० १९८२

निवेदक
मक्खनलाल गुप्त गर्क्

सूचना

इस पुस्तक के आरंभ में भूल से "पहला भाग" छप गया है। वास्तव में यह पुस्तक दो भागों में नहीं, बल्कि एक ही में समाप्त हुई है। इसका कोई दूसरा भाग नहीं है।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

शाही दृश्य

पहला भाग

(१) मुग़लों का पतन

मुग़ल बादशाहत

बादशाही ज़माने में हिंदुस्तान के निम्नलिखित सूबे कहलाते थे—

सरहिंद, राजपूताना, गुजरात, मालवा, बियाना, अवध, कटहर (जिसको पीछे रुहेलखंड कहने लगे) और अन्तर्वेद अर्थात् दुआब।

दक्षिण, पंजाब और काबुल को इनमें इसलिये नहीं गिना गया कि वे सर्वदा और सामान्यतया राज्य में सम्मिलित नहीं रहे। दक्षिण में औरंगज़ेब के शासन के अंत के लगभग स्वाधीन मुसलमानी रियासतें बनी रहीं। काबुल कभी ईरानियों के हाथ में आ जाता था, कभी निकल जाता था; और लाहौर से परे का पंजाब तो एक प्रकार से युद्ध-स्थल सा ही बना हुआ था, जहाँ अफ़गान और सिख सदैव बादशाहत के विरुद्ध तथा परस्पर लड़ा करते थे।

बंगाल, विहार और उड़ीसा भी पहले बादशाही इलाक़े में थे; पर फिर वे भी उससे पृथक् हो गए।

इनको मिलाकर बारह सूबे ये हैं—

(१) बंगाल, (२) विहार, (३) उड़ीसा, (४) सरहिंद, (५) दिल्ली, (६) अवध, (७) इलाहाबाद, (८) मेवाड़, (९) मारवाड़, (१०) मालवा, (११) बियाना और (१२) गुजरात। ज़िले सरकार के नाम से, तहसील दस्तूर के नाम से और क़स्बे परगने के नाम से प्रसिद्ध थे।

सूबे दिल्ली में ये ये सरकारें अर्थात् ज़िले थे—दिल्ली, हिसार, रेवाड़ी, सहारनपुर, सम्भल, बदायूँ, कोयल (अलीगढ़), सहार और निजारा।

इसी एक सूबे के अनुसार और दूसरे सूबों की लम्बाई और चौड़ाई का अनुमान कर लिया जाय।

किसानों को आवश्यकीय वस्तुएँ मौरूसी साहूकार देते थे और इसके बदले में वे उनके खड़े खेत ले लेते थे। कस्बों की आबादी में प्रधानतया किसान, साहूकार, कारीगर और अनेक कलाकौशल जाननेवाले होते थे। कोई कोई साहूकार तो बड़े ही धनाढ्य होते थे; और उन दिनों चौबीस रुपए सैकड़े सालाना ब्याज अधिक नहीं समझा जाता था।

पहले पहल भारत में ग़ज़नी और गोरी मुसलमानों ने चढ़ाई की। पुनः तैमूर लंग का भयानक आक्रमण हुआ। तदनंतर अफ़गानों का आक्रमण हुआ जिससे उनके घराने की

प्रबल नींव जम गई, जिसने उत्तरीय प्रांतों का वस्तु पर बड़ा प्रभाव डाला। अंत में तैमूर के वंशज बाबर ने, जो एक चतुर और तेजस्वी पुरुष था, तूरानी लोगों को जो मुग़ल कहलाते थे, अपने साथ लाकर जिहाद (मुसलमानी धर्मयुद्ध) ठाना। उसके घराने ने अफ़गानों से दीर्घ काल तक विषम युद्ध करके उसके पौत्र अकबर की अध्यक्षता में हिंदुस्तान के तख़्त पर अपना अधिकार जमा लिया। अकबर ने पहले यह प्रशंसनीय कार्य किया कि 'जज़िया' कर जो उससे पूर्व के मुसलमान बादशाहों ने हिंदुओं पर लगा दिया था, बिलकुल उठा दिया। वह दयावान, उदार और वीर था। वह सदैव पक्षपात-रहित होकर सत्यता की खोज करता रहता था। वह अपने मित्रों के साथ बड़े प्रेम से पेश आता था। अकबर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र जहाँगीर बादशाह हुआ जो नूरजहाँ का प्रेमिक था। वह बड़ा न्यायी था। उसने ऐसी सुगम रीति स्थापित की कि प्रत्येक फ़रियादी उस तक पहुँच सकता था। धार्मिक उदारता में भी वह अपने योग्य पिता का पदगामी रहा। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहाँ दया और न्याय के लिये अब तक भारत में प्रसिद्ध है। अपने पिता के समान वह भी बड़ा प्रेमिक था; और उसने अपने इस स्नेह को जगत-विख्यात आगरे का ताजमहल नामक रौज़ा बनाकर चिरस्थायी कर दिया, जो इस गुण के अतिरिक्त उसकी कला-विज्ञान संरक्षकता का भी प्रत्यक्ष

द्योतक है। वास्तव में यह बादशाह महान् शिल्पकार हुआ है। दिल्ली की मसजिद और महल, जिनको इसने स्वयं निर्माण कराया, सैकड़ों वर्षों का धूप-पानी झेलकर भी अब तक विद्यमान हैं और संसार भर की अपूर्व अनुपम सुन्दरता तथा मनोहरता में श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

शाहजहाँ का पुत्र औरंगज़ेब, जिसने आलमगीर की उपाधि धारण की थी, अपने उच्च वंश के सिंहासन पर भारतवर्ष का बादशाह बनकर बैठा। उसमें बड़े बड़े उत्तम गुण थे। युद्ध में वह जैसा कुशल और वीर था, वैसा ही वह राजनीति में भी बड़ा निपुण और मर्मज्ञ था। उसने फाँसी के कड़े दंड की प्रथा बन्द करा दी। खेती के सम्बन्ध में भी वह ज्ञान रखता था; उसने उसकी उन्नति की; अगणित बड़ी और छोटी पाठशालाएँ स्थापित कीं; अच्छी अच्छी सड़कें और पुल बनवाए। वह अपनी बाल्यावस्था से ही समस्त सार्वजनिक कार्य्यों की दिनचर्या निरंतर लिखता था; वह अदालत में स्वयं बैठकर सब के सम्मुख न्याय करता था; और दूर से दूर प्रदेशों के हाकिमों के दुष्कर्मों का भी वह कभी पक्षपात नहीं करता था। हिंदुओं से उसे बड़ी घृणा थी। 'जज़िया' कर, जो उसके प्रपितामह अकबर ने उठा दिया था, उसने फिर लगा दिया।

एक के पीछे दूसरे ये मुग़ल बादशाह अनेक गुणों और लक्षणों में बढ़ चढ़कर होते रहे, जो बात कि पुश्तैनी बाद-

शाहों में बहुत ही कम होती है। इनमें इन असाधारण और उत्तम गुणों के निरंतर होते रहने के दो कारण हुए। पहला कारण यह था कि इन्होंने हिंदू राजकुमारियों से विवाह किया, जिससे इनका वंश नित्य नवीन और ताज़ा बनता और सुधरता गया; क्योंकि परस्पर नए रक्त के मिलने से इनके पुराने घराने के दूषण न बढ़ सके, बल्कि नष्ट होते गए। जिन परिवारों के अंतर्गत स्त्री पुरुष का आपस में विवाह हो जाता है, उनके भीतर विविध भाँति के वंशीय संक्रामक रोग तथा दुर्गुण उत्तरोत्तर बढ़ते और फैलते जाते हैं।

दूसरा कारण यह था कि बादशाह के मरने के पीछे शाही तख्त की प्राप्ति के निमित्त शाहज़ादों के बीच में युद्ध छिड़ जाता था; इसलिये उनमें जो सब से अधिक योग्य और बलिष्ठ होता था, वही राज्य का अधिकारी बनता था॥

जब तक मुग़ल घराने का सितारा चमकता रहा, ये दो कारण उसकी वृद्धि और उन्नति करते रहे। पीछे जब उसके पतन का प्रारंभ हुआ, तो वे ही उसकी जड़ खोखली करने लगे।

पहले मुग़ल बादशाहों ने विवाह करके हिंदुओं के साथ जो नाता और मेल जोल पैदा किया था, पीछे से औरंगज़ेब के उनके साथ कठोर और असह्य व्यवहार करने के कारण वह सब नष्ट हो गया। हिंदू राजा महाराज भी, जो केवल अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की ओर से स्नेह प्रकट होने से स्नेह की फाँस में बँध गए थे, अपनी इस मोह निद्रा से जागे

और फिर खिंचने लगे; यहाँ तक कि धीरे धीरे बिल्कुल स्वाधीन हो गए।

जब जब बादशाह का देहांत हुआ, सलतनत के लिये उसके पुत्रों के बीच में रार ठनी और हिंदू नरेशों को किसी न किसी ओर साथ देने का अवसर प्राप्त हुआ। होते होते इसका फल यह हुआ कि प्रत्येक राज्याभिलाषी शाहज़ादा प्रभावशाली भूमिपतियों को अधिक संख्या में अपने विपत्तियों की ओर से उखाड़ उखाड़कर अपनी ओर मिलाकर उनसे शस्त्र उठवाने का प्रयत्न करता था। और इसके लिये फिर उसे उनको उनका अभीष्ट पारितोषक देना पड़ता था, जिसका यह शोचनीय परिणाम हुआ कि वह साम्राज्य, जो उनके पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े संकटों और उपायों से स्थापित किया था, उनकी मूढ़ता और असावधानी से कट कटकर पृथक् पृथक् टुकड़ों में विभक्त हो गया।

औरंगज़ेब जिस समय अपने बाप को कैद * और अपने

---

* औरंगज़ेब कैद में भी अपने पूज्य पिता और पूर्व बादशाह के प्रति इतना कठोर और निष्ठुर व्यवहार करता था कि एक बार शाहजहाँ ने अति दुःख पाकर उसके पास निम्नलिखित दो शेर लिखकर भेजे थे—

آفرین باد هندوان هرباب * مرده رامے دهند دایم آب ❀

ای پسر تو عجب مسلمانی * زنده جانم بآب ترسانی ❀

अर्थात् हिन्दुओं को बारम्बार शाबाशी हो जो सदैव अपने मृतक पितरों को पानी देते रहते है। हे पुत्र, तू अनोखा मुसलमान है, जो मुझ जीते हुए की जानको पानी तक के लिये तरसाता है।

भाइयों ※ को परास्त करके और मरवा कर बादशाह हुआ था, उस समय वह हिन्दुस्तान के समस्त बादशाहों से अधिक शक्तिशाली और ऐसा योग्य शासक और प्रवंधक था, जैसा पहले और कोई नहीं हुआ था। उसके राज्य-काल में तैमूर का घराना परम उन्नत दशा को पहुँच गया। काबुल और क़न्धार के दुर्दांत पठान अल्प काल के लिये वश में आ गए थे; ईरान के शाह ने मित्रता कर ली थी; गोलकुंडा और बीजापुर की प्राचीन मुसलमान शक्तियाँ नष्ट भ्रष्ट हो गई थीं; और उनको शाही हकूमत के अधीन होना पड़ा था। राजपूत जो अब तक अजेय रहे थे, पराजित हुए। मरहठों से भी, जो अपना बल पश्चिमी घाटों पर जमाए हुए पड़े थे, यह आशा नहीं होती थी कि वे महान् मुग़ल ताक़त का देर तक मुकाबला कर सकेंगे। लेकिन इतने पर

※ औरंगजेब ने अपने ज्येष्ठ भ्राता और वली अहद दाराशिकोह को पकड़वाकर पहले तो बड़े बड़े कष्ट दिए और उसको बहुत दुर्गति की। पुनः यह बहाना ढूँढ़कर कि उसने अपने इस कथन में कुफ़्र और इसलाम को समान बताया है, उसको मरवा डालने का फ़त्वा दिला दिया—

※ کفر و اسلام در رهش پویان ※ وحده لاشریک له گویان ※

अर्थात् कुफ़्र और इसलाम उसी (ईश्वर) के मार्ग पर चलते हैं और "वह एक है, वह अनन्य है" इस प्रकार उसके गुण गायन करते हैं। पर यह शेर जैसा कि पुस्तक "दरबार अकबरी" से विदित है, अबुलफ़ज़ल ने उस धर्मशाला के शिलालेख में अंकित किया था, जो सम्राट् अकबर ने हिन्दू मुसलमान यात्रियों के विश्रामार्थ कश्मीर में बनवाई थी।

इन्हीं के साथ क्या, उसने अपने अन्य सब भाइयों और भतीजों को भी इसी प्रकार एक एक करके मरवा डाला था।

भी उसके दीर्घ शासन के समाप्त होने से पूर्व ही उस बल का तथा उस गौरव का ह्रास हो गया था और कोरा दिखावा रह गया था। औरंगज़ेब की मृत्यु के समय मुग़ल साम्राज्य की शोचनीय दशा उस जर्जर हुई मुई लाश के सदृश थी, जो ऊपर से वस्त्र, आभूषण, मुकुट पहने और शस्त्र धारण किए हुए हो, परंतु तनिक पवन के झकोरे अथवा हाथ के लगाने से ही चूर चूर हो जाय। इससे यह उपयोगी शिक्षा मिलती है कि देशों पर शासन का अतिशय ज़ोर जमाना भी हानिकारक होता है। यदि औरंगज़ेब अपनी मूर्ति और अपने मत का शहज़ादों के महलों, पुजारियों के मंदिरों, बाजार के सिक्कों और प्रत्येक मनुष्य के मन और चित्त पर ठप्पा लगाने की इतनी चिंता न करता, तो उसको भी शासन करने में वैसी ही सफलता प्राप्त होती, जैसी उसके स्वेच्छाचारी और विलासी पूर्वाधिकारियों को हुई थी। यह जो उसके स्वभाव में कट्टरपन था, वही उसकी अपनी प्रकृति का निज गुण था। उसका उसके पूर्वजों से किञ्चित् भी संबंध न था। उसने 'मज़हबी तअस्सुब' में मदांध होकर हिंदुओं के साथ जो कठोर व्यवहार किए, वे अकबर और जहाँगीर की नीति के नितांत प्रतिकूल थे।

इस घराने का यह नियम था कि पहले से राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया जाता था। तब फिर बादशाह के मरने पर हिंदुस्तान जैसे विशाल देश के प्राप्त करने की उत्कंठा किस शहज़ादे को न होती, जिसकी आय तीस करोड़ चालीस

लाख रुपए थी और जिसकी सुदृढ़ सेना पाँच लाख पराक्रमी वीरों से सुसज्जित थी !

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् बादशाहत के लिये उसके तीनों पुत्रों में युद्ध हुआ, जिनमें सब से बड़ा विजयी हुआ; और वह बहादुर शाह की उपाधि धारण करके 'मसनद् शाही' पर आरूढ़ हुआ। परंतु उसका शासन अधिक समय तक नहीं रहा। सैयद, जिन पर विशेष कर औरंगज़ेब की सदिंग्ध दृष्टि रहती थी; दक्षिण पश्चिम के मरहठे, जिनको कुछ दे लेकर थोड़े समय के लिये टाल दिया गया था; राजपूत संघ, जिनके साथ शीघ्रतापूर्वक संधि कर ली गई थी; ब्रिटेन के साहसी व्यापारी, जिन्हों ने बिना आज्ञा प्राप्त किए ही गङ्गा के मुहाने पर फोर्ट विलियम के इलाके की स्थापना कर ली थी; चीन क़िलीच्च खाँ, जो पीछे से दक्षिण के निज़ाम घराने का जन्मदाता हुआ; और ईरानी वणिक् सआदत खाँ, जो लखनऊ के नव्वाबी कुल का संस्थापक था; आदि आदि सब लोगों ने, जो औरंगज़ेब के सामने दबे पड़े थे, अब अपना अपना सिर उठाया। किंतु बहादुर शाह ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह तो समस्त शाही बल का संग्रह करके सिखों का दमन करने में लगा हुआ था। इसी प्रयत्न में अपने पिता की मृत्यु के ठीक पाँच वर्ष पीछे लाहौर में उसका प्राण पखेरू उड़ गया।

कुल के प्रथानुसार शाहजादों में लड़ाई हुई। तीन परास्त शाहजादों का बध किया गया, और सब से बड़े पुत्र मिरजा

मौजउद्दीन के अनुचरों ने अपने स्वामी को तख्त शाही पर बैठा दिया; और उसके सब भाई बंधुओं को, जो उनके हाथ पड़े, बिना विचार अथवा न्याय किए हत्या कर डाली।

कुछ मास ही व्यतीत होने पाए थे कि बादशाहत के एक और दावेदार ने, जो जीता बच गया था, बिहार और इलाहाबाद के शासक सैयदों की सहायता पाकर निर्बल बादशाह को पराजित करके, उसका काम तमाम किया; और चचा के स्थान में विजयी भतीजा 'फर्रुख सिय्यर' के लक़ब से बादशाह बन बैठा।

इन वीर और साहसी सैयदों ने दूसरा कार्य्य यह किया कि राजपूतों पर चढ़ाई की: और उनके अध्यक्ष महाराज अजीत-सिंह से सदा की भाँति भू-कर देने और अपनी पुत्री का बाद-शाह के साथ विवाह करने के लिये अनुरोध किया। दोनों में परस्पर संधि हो जाने पर यह निश्चय हुआ कि बादशाह का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण विवाह नहीं हो सकता। इसी समय के लगभग सन् १७१६ ई० में यह प्रसिद्ध घटना घटी कि कलकत्ते के अँगरेज़ व्यापारियों की ओर से उस समय एक प्रतिनिधि मंडली आई, जिसमें जेबरईल हेमिलटन (Scottish Surgeon, Gabriel Hamilton) नाम का एक जर्राह था। बादशाह ने उससे अपना इलाज कराया और उसके हाथ से आरोग्यता लाभ करने पर राजपूत राजकुमारी के साथ बादशाह का विवाह हो गया। इस विवाह से उसे इतना हर्ष

हुआ कि उस उन्मत्त दशा में उसने अपने आरोग्यकर्त्ता डाक्टर हेमिलटन से मनमाना पारितोषक माँगने के लिये कहा। उस निःस्वार्थी मनुष्य ने अपने लिये तो कुछ नहीं माँगा, परंतु अँगरेज़ व्यापारियों को समस्त देश में बेरोक टोक वाणिज्य करने और अपनी कोठियाँ बनाने का स्वत्व दिए जाने की आज्ञा माँगी, जिस से ब्रिटिश शक्ति की नींव केवल बंगाल में ही नहीं जम गई, वरन् अँगरेज़ों को दूसरे प्रदेशों पर भी अधिकार प्राप्त हो गया। इसी समय के लगभग तुर्कमान सरदार चीन किलीचखाँ ने दक्षिण में अधिकार पाया, जो पीछे तक उसके घराने में रहा। इस सरदार ने बादशाह की चंचलता और छिछोरपन से तंग आकर सैयदों के संरक्षकरण में एक गुप्त षड़यंत्र रचा, जिसका परिणाम यह हुआ कि १६ फरवरी सन् १७१६ को फर्रुख-सियर की हत्या हो गई।

थोड़े काल तक तो सर्व शक्तिशाली सैयदों ने अपना डंका इस प्रकार बजाया कि शाही खानदान का जो कोई निर्बल मनुष्य उनको अपने हित का मिला, उसे नाम मात्र के लिये तख़्त पर बैठा दिया और राज-शासन की बाग अपने हाथ में रक्खी। परन्तु इस भाँति काम चलता न दिखाई दिया; और सात मास के ही बीच में दो नामधारी बादशाह क़बर के अर्पण हुए। इन कर्ता धर्ताओं को अंत में एक और पुरुष इस कार्य के लिये चुनना पड़ा, जो तनिक अधिक योग्य था। यह बादशाह बहादुर शाह के सब से छोटे शाहज़ादे का पुत्र

था, जिसका पिता अपने बाप की मृत्यु के पीछेवाली लड़ाई में मारा गया था। उसका नाम सुलतान रौशन अख्तर था। परंतु वह मुहम्मद शाह की उपाधि धारण करके बादशाह बना। यह बात प्रसिद्ध है कि वह हिंदुस्तान का अंतिम बादशाह था, जो शाहजहाँ के तख्त ताऊस पर सुशोभित हुआ।

मुहम्मद शाह को तख्त पर आरूढ़ हुए बहुत दिन न बीते थे कि उसने अपनी शक्ति का परिचय देना प्रारंभ किया, जिसकी राजसिंहासन पर बैठानेवाले सैयदों को उससे कदापि आशा न थी। अपनी माता के अनुशासन से, जो एक बुद्धिमती और वीर नारी थी, उसने अपने ऐसे मुग़ल मित्रों की एक मंडली बनाई जो सैयदों के जानी दुशमन थे। मुग़ल सुन्नी थे, और सैयदों का धर्म शिया* था। इसके अतिरिक्त मुग़लों

* मुसलमानों में भी हिन्दुओं की भाँति अनेक फिरके और मतमतान्तर हैं, जिनमें से सुन्नी और शिया दो जमाअतें मुख्य हैं। दोनों ही मुहम्मद साहब को पैग़म्बर मानते हैं और धर्म पुस्तक कुरान की आज्ञाओं को अपने अपने विचारानुसार पालन करते हैं। सुन्नत जमाअत के अनुयायी मुहम्मद साहब के बाद उनके चार खलीफाओं अर्थात् अबूबक्र, उमर, उसमान और अली को सम्मान के योग्य समझते हैं; और शिया मतवाले केवल अली को ही उसमें से पूज्य समझते हैं। शेष तीनों की वे निन्दा और अवज्ञा करते हैं। उनके पंजतन में मुहम्मद साहब, अली, मुहम्मद साहब की। पुत्री और अली की स्त्री बीबी फातिमा, और इनके दो पुत्र इमाम हसन और इमाम हुसैन सम्मिलित हैं। मुहर्रम के दिनों में शिया मतवाले ही ताज़िये बनाने, तथा रुदन और विलाप की मजलिस करने को सवाब समझते हैं। किन्तु सुन्नी इन कामों का खंडन करते हैं। वे इन दिनों में खैरात करना नेक बताते हैं। सुन्नी हाथों को छाती पर रखकर और शिया हाथों को सीधे नीचे डालकर नमाज पढ़ते हैं।

को अपनी विदेशी जन्मभूमि का घमंड था और वे मंत्री सैयदों को हिंदुस्तान के निवासी कहकर उनसे घृणा करते थे; और बादशाह से, जो उन्हीं के कुटुम्ब का था, अपनी मातृ भाषा तुर्की में बातें करते थे, जिसे सैयद नहीं समझते थे। चंचल प्रपंची चीनकिलीच खाँ और नया आया हुआ ईरानी वीर सआदत खाँ भी सैयदों का नाश करनेवालों में मिल गए, यद्यपि सआदत खाँ भी शिया ही था और उनके साथ धार्मिक

जान पड़ता है कि शिया और सुन्नी का प्रश्न मुग़ल राज दरबार में पहले से ही झगड़े का कारण बना हुआ था। बादशाह औरंगजेब, जो कट्टर सुन्नी था, मुनशी नामतखाँ आली को, जो एक बहुत बड़ा विद्वान् था, उसकी अपूर्व योग्यता के कारण अपने मंत्री-मंडल में उपस्थित तो रहने देता था; पर वह शिया धर्म का अनुयायी था; इस कारण उसकी दृष्टि में काँटे की भाँति खटकता था। 'हाकिमे वक्त' समझकर बादशाह को प्रसन्न करने के हेतु नामतखाँ आली ने ये दो शेर बनाकर भेंट किए थे—

اصحاب نبی چو چار یاراند * چون چارکتاب درشماراند

دربودن آن شکے نہ شبہے * زان چاریکے نداشت عیبے

अर्थात् "नबी के चार ख़लीफा हैं और वे भी चार पुस्तकों के समान गिनती में आते हैं। इस बात के होने में कुछ संदेह और संशय नहीं है। उन चारों में से किसी में कोई दोष न था"। प्रत्यक्ष में इसी अर्थ को सामने रखकर कवि ने यह कविता रची थी और ऊपर के तीन पदों के साथ रहकर चौथे और अंतिम मिसरे का अधिकतर वही अर्थ होता भी है, जो कि प्रकट किया गया है। परन्तु मुनशी नामतखाँ आली कोई साधारण मनुष्य नहीं था, जिसने केवल बादशाह को खुश करने के लिये ही अपने धर्म के विरुद्ध ऐसा किया। नहीं, कदापि नहीं। उसके चौथे पद का वास्तविक आशय, बल्कि शब्दार्थ भी यह है—"उन चारों में से एक दूषण-रहित था" और यही शियों का सिद्धान्त है।

बैर रखने का उसके लिये बिलकुल बहाना न था। अंत में इन सब ने मिल मिलाकर दोनों सैयद भ्राताओं को मरवा डाला। एक को खाँडे की धार उतारा और दूसरे को विष दिया गया।

गुप्त हत्या कराने में भी कुछ बुद्धि और राजनीतिक चतुरता की आवश्यकता होती है। पर यह चाल इतनी गहरी और बढ़िया न थी कि वे केवल इसके चलने से ही सलतनत के शासन का कार्य्य चला सकते। अंत में युवा बादशाह के छिछोरे मित्रों के विनाशार्थ स्वतः ही कारण उत्पन्न हो गए।

सब से पहले तो उन्हें राजपूतों से, जिनमें अब स्वदेश-प्रेम की वृद्धि हो रही थी, कुछ भूमि देकर पीछा छुड़ाना पड़ा। पर जब वृद्ध मंत्री चीन किलीचखाँ ने उनकी इस दुर्बलता पर अपनी घृणा प्रकट की, तब उन्होंने उसको कड़ी और दृढ़ प्रकृति तथा पुराने ढंग के व्यवहार का, जिसकी शिक्षा उसने औरंगजेब से ग्रहण की थी, बहुत ही ठट्ठा उड़ाया। यहाँ तक कि इस अनुभवी पुराने योद्धा को अपने पद से इस्तेफ़ा देकर दक्षिण चले जाना पड़ा। उसके इस पद-त्याग से सलतनत को बड़ा धक्का पहुँचा।

सन् १७२० में निज़ाम चीन किलीचखाँ और मरहठों के बीच में समझौता हो गया, जिनको उस वृद्ध राजनीतिज्ञ ने अपने बादशाह और देश-वासियों पर धावा करने के लिये उत्साहित किया। पहले तो उन्होंने मालवे पर चढ़ाई की और वहाँ के सूबेदार को मार डाला। निर्बल मुग़ल बादशाह ने,

जिसकी नीति टाल मटोल करने की हो गई थी, अपने मित्र और मंत्री की सम्मति से उनकी विजय और लूट मार को सहन करके निर्बलता का परिचय दिया, जिससे उनको नवीन आक्रमण करने का साहस हो गया।

सन् १७३६ में मरहठों के दल का अगला भाग मल्हार-राव हुलकर की अधीनता में यमुना पार उतर गया। पर उसे थोड़ा नीचा देखना पड़ा। उसी समय में ईरानी सआदत खाँ (जिसकी संतान ने अवध में पीछे अंगरेजी अमलदारी के आने तक शासन किया था) अपने राज्य की नींव जमाने में लगा हुआ था। वह गंगा और यमुना के बीच की भूमि में बढ़ आया; और उस समय में, जब कि मुग़ल मंत्री मंडल लज्जापूर्ण भेंट देने के अपमान से मुक्त होने के लिये कपट भरी संधि का पाप करने पर उतारू हो रहा था, नवाब अवध अचानक होलकर पर टूट पड़ा; और उसको बड़ी घबराहट और गड़बड़ी में बुंदेलखंड तक पीछे हटा दिया।

बाजीराव पेशवा ने, जो मरहटों की प्रधान सेना का सेनापति था, अपनी अपकीर्ति के इस धब्बे के मिटाने में, जो होलकर की पराजय से लग गया था, तनिक विलम्ब न किया। वह एक प्रशंसनीय और वेगवान बग़ली धावा करके अरक्षित राजधानी में घुस गया; और अपना झंडा ऐसे स्थान में गाड़ दिया, जो बादशाह के महल से दिखाई देता था। अब वह घड़ी आ गई कि दक्षिण के वृद्ध नवाब ने स्वयं स्थल पर

आकर बादशाहत के मुक्तिदाता बनने का गौरव प्राप्त किया। यद्यपि मरहठे दिल्ली से हट गए, परन्तु उन्होंने वह भारी चोट लगाई कि जिसके कारण साम्राज्य फिर कदापि उभर न सका। परन्तु निज़ाम को अवसर मिल गया और उसने उन लाडले छैल चिकनियों का, जिन्होंने थोड़े दिन पहले उसकी हँसी की थी, उपहास करके अपना चित्त शांत किया।

एक दृढ़ और सुंदर सेना को अपनी अधीनता में लेकर निजाम फिर अपने स्थान को लौट चला। परंतु मरहठों ने उसके मार्ग में बाधा खड़ी कर दी, जिससे विवश होकर उसको भी उनके साथ संधि करनी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि मालवा हाथ से निकल गया; और परस्पर यह स्थिर पाया कि आगे को बादशाहत की ओर से मरहठों को, जिन्हें शूद्र लुटेरे कहा जाता था, कर दिया जाय।

वृद्ध सरदार के लिये, जिसने शक्तिशाली औरंगज़ेब से नीति की शिक्षा ग्रहण की थी, यह घटना हृदयविदारक और मुँह न दिखलाने के योग्य थी। अब यह बुड्ढा दोनों ओर से दबकर बीच में ऐसे फँस गया था, जैसे दाँतों के अंदर रहकर जीभ की गति हो जाती है। यदि वह निज राजधानी हैदराबाद को चला जाय, तो अपने शेष जीवन के दिनों को उसे इस प्रकार लड़ झगड़कर काटना पड़े, जिस प्रकार उसके स्वामी को करना पड़ा था। और यदि वह दिल्ली को लौट चले, तो उसे सेनापति खान दौरान के हाथों से अपार अनादर सहना पड़े।

इस भाँति शिकंजे में फँसकर उसने स्वार्थवश होकर अपने देश का पुनः सत्यानाश करना विचारा। और कदाचित् वह ईरानी सआदतखाँ के समझाने बुझाने से, जो खान दौरान की जड़ उखाड़ना चाहता था, उसके साथ मिलकर महा पाप करने पर उतारू हो गया।

इन शठों ने मिलकर एक पत्र लिखने का अपराध किया। उस पत्र का यह फल निकला कि ईरान के लुटेरे बादशाह नादिर शाह ने सन् १७३८ में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। उसने शाहजहाँ के महल को लूटा; दिल्ली में एक लाख मनुष्यों को मरवाया; और हिन्दुस्तान से अगणित रत्न, घोड़े, हाथी, ऊँट आदि के अतिरिक्त अस्सी करोड़ से ऊपर तो वह नक़द रुपए ही ले गया। चाँदनी चौक में रोशन उद्दौला की मसजिद में वह बैठ गया और उसके देखते देखते यह भीषण हत्याकांड और लूट मार होती रही। दोनों कुटिल देश-द्रोहियों को भी अपने किए का उचित फल मिल गया। नादिर शाह के अधिकार में जब राजधानी दिल्ली नगरी आ गई, तब उसने तूरानी (चीन किलीचखाँ) और ईरानी (सआदत खाँ) दोनों को अपने सम्मुख बुलाया और उनको उनकी धूर्त्तता तथा नीच स्वार्थता पर अति धिक्कारा। उसने यहाँ तक उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध की अग्नि से, जो दैवी प्रकोप है, तुम्हें भस्म कर दूँगा। इतना कहकर नादिर शाह ने उनकी दाढ़ी पर थूक दिया और फिर उन्हें अपने आगे से निकलवा दिया। इस पर उन

तेजहीन धूर्तों ने परस्पर बात चीत करके यह निश्चय किया कि प्रत्येक मनुष्य अपने घर जाकर विष खा ले। इस विषय में निज़ाम ने पेशदस्ती की, जो अपने कुटुंब के सम्मुख जहर का प्याला पीकर थोड़ी देर में अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गया। सआदतखाँ के गुप्तचर ने जब इस विषय में अपना पूर्ण निश्चय कर लिया, तब वह अपने स्वामी के पास दौड़ा गया। सआदत खाँ ने उससे यह सुनकर अपने मन में बड़ी ग्लानि की कि इस मान और मर्यादा की बाजी में भी मैं पछड़ गया। उसने भी अपने वचन का पूरा पूरा निर्वाह किया; अर्थात् हलाहल पीकर अपने प्राण दे दिए। उसके मरने का समाचार पाते ही चीन किलीच खाँ तुरन्त जी उठा और उसने अपने इस कौतुक का वृत्तान्त विश्वसनीय मित्रों से पीछे हँसी में वर्णन किया कि मैंने खुरासान के व्यापारी को मात देने के निमित्त ही ऐसा किया था।

ऐसी प्रकृति का मनुष्य कैसे निश्चित बैठ सकता था! नादिर शाह अपने देश में पहुँचा ही होगा कि निजाम ने अपनी चालें चलनी आरम्भ कर दीं और अब वह पहले से भी अधिक शक्तिशाली हो गया। एक ओर तो वह दक्षिण का शाह था; दूसरी ओर उसने बादशाह और उसके वजीर को सर्वथा अपनी मुट्ठी में करके "वकील मुत्लक्" की उपाधि ग्रहण की। मृत्यु ने उसके वैरी पेशवा को १७४० में हर कर उसका मार्ग और साफ कर दिया।

अधिकाधिक पतन

सन् १७४१ में आफत के परकाले निजामचीन किलीचखाँ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गाजी उद्दीन को बादशाह के पास एक परम विश्वास के योग्य पद पर नियुक्त करके, तथा अपने नातेदार और भरोसे के मित्र क़मर उद्दीन को वज़ीर आज़म की उच्च पदवी पर आरूढ़ हुआ समझकर दिल्ली से सदैव के लिये बिदा प्राप्त की और वह दक्षिण को प्रस्थित हुआ।

इस वीर वृद्ध पुरुष का प्रस्थान क्या था, मानो बादशाहत को घुन लग गया। उसके अङ्ग भङ्ग होने लगे। बंगाल, बिहार और उड़ीसा को एक तातारी पुरुषार्थी मनुष्य अलीवर्दी खाँ ने विजय कर लिया। बादशाह की आज्ञा तो इन प्रदेशों में नाम मात्र को मानी जाती थी। फिर उस प्रदेश की बारी आई, जो गंगा के पार रूहेलखंड कहलाता है। वहाँ अली मुहम्मद नामक एक पठान योद्धा ने सन् १७४४ में शाही सूबेदार को पराजित करके मार डाला और स्वाधीन हो गया। इस पर बादशाह स्वयं सेना लेकर युद्ध के मैदान में गया; और उसने विद्रोही को पकड़ भी लिया। परन्तु शाही अधिकार में वह भूमि लौटकर न आई, जो निकल गई थी।

इसके कुछ दिन पीछे दुर्रानी अफ़गानों के नायक अहमद खाँ अबदाली ने, जिसने नादिर शाह का वध हो जाने के बाद ईरानी राजनीति में गड़बड़ी पड़ जाने से सीमा के प्रदेशों का अधिकार प्राप्त कर लिया था, उत्तर की ओर से नवीन

चढ़ाई की। परन्तु मुगल सरदारों की एक ऐसी नई पौद अब पैदा हो गई थी, जिसके पराक्रम ने बादशाहत के गिराव पर भी आशा की थोड़ी सी झलक दिखा दी थी। वली अहद, वजीर के पुत्र मीर मन्नू, गाज़ी उद्दीन और मृतक नवाब अवध के भतीजे अब्दुल मनसूर खाँ, जो सफदर जंग के खिताब से प्रसिद्ध था, इन सबकी बुद्धिमत्ता और वीरता ने उस हमले को निष्फल कर दिया। अप्रैल १७४८ में वजीर कमर उद्दीन जब अपनी छौलदारी में नमाज पढ़ रहा था, उसे गोली लगी और वह मर गया। बादशाह की गिरी हुई तबियत पर, जिसका वह पुराना और स्थिर सेवक था और जिसके भारी और महान् राज्य के हर्ष और चिंताओं में सदैव साथ शरीक रहा था, ऐसे हार्दिक मित्र की मौत की ख़बर ने अतिशय चोट पहुँचाई। बादशाह उस वक्त अपने शाही महल दिल्ली में बैठा हुआ न्याय कर रहा था कि यह खबर सुनकर उठ गया और उसी समय उसने अपने प्राण छोड़ दिए।

बहुत ही कम ऐसी सानुकूल अवस्था में राज्याधिकार की प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त होता है, जैसी अवस्था में अहमद शाह को हुआ। बादशाह अपनी पूर्ण तरुणावस्था में था। उसके मंत्री गण पराक्रम और निपुणता में विख्यात थे। दक्षिण में चीन कुलीच खाँ मराठों को रोक रहा था; और उत्तर की ओर से चढ़ाई होने का भय मिट चुका था। तथापि राज्य-प्रबंध में अनिश्चित हानिकारक तत्त्व सदैव बना रहता है।

इसमें सफलता पाना केवल मनुष्य के पुरुषार्थी गुणों पर निर्भर है। थोड़े दिन पीछे वृद्ध निजाम चीन कुलीचखाँ का देहान्त हो गया, जिससे एक बड़ा नुकसान हुआ; क्योंकि वह बादशाहत की एक बड़ी ढाल के समान था। निजाम का ज्येष्ठ पुत्र सेना और कोष का अध्यक्ष बना रहा; और उसका छोटा भाई नसीर जंग दक्षिण का नवाब हुआ। वकालत का पद रिक्त रहा। वजारत मृतक नवाब अवध के भतीजे सफदर जंग को, जो नव्वाबी भी करने लगा था, सौंपी गई।

यह कार्य करके बादशाह अपनी मौरूसी प्रकृति की रुचि के अनुसार चलने लगा। प्रदेशों को उनके मत पर छोड़ कर वह स्वयं भोग विलास में डूब गया। इसी बीच में बादशाहत के दो बड़े प्रदेश अर्थात् पंजाब और रूहेलखंड के मैदानों में खून बहने लगा।

रुहेलों ने शाही लश्कर के, जिसे स्वयं वजीर अपने हाथ में रक्खे हुए था, पाँव उखाड़ दिए। यद्यपि सफदर जंग ने इस कलंक को मिटा दिया, परन्तु इस कार्य से उसे एक और बहुत बड़ा अपमान सहना पड़ा; क्योंकि हिंदू शक्तियों को जो दिन पर दिन दुर्बल होती जाती थीं, बादशाहत पर, हाथ साफ करने का साहस हो गया।

मराठे, जिनका नायक होलकर था और जाट, जो सूर्यमल के अधीन थे, दोनों की सहायता से वजीर ने रुहेलों को गंगा की रेती में हराकर कुमायूँ पहाड़ की तराई तक खदेड़ा।

इतने में अफ़गान अहमद खाँ अवदाली फिर आ गया। इस सेवा के वदले में मराठों को रुहेलखंड के भाग पर अधिकार जमाने और शेष से चौथ वसूल करने की आज्ञा मिल गई, जिस पर उन्होंने अफगानों के मुकाबले में सहायता देने का वचन दिया। किन्तु दिल्ली में पहुँचकर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वादशाह ने वजीर की अनुपस्थिति में अहमद खाँ को लाहौर और मुलतान के प्रान्त समर्पित करके युद्ध की सम्भावना ही न रहने दी।

उस समय वादशाह के मंत्री मंडल की स्थिति उस मायावी इन्द्रजाली की सी हो गई थी, जो अपने साथियों को स्वयं अपने मारने के काम पर लगाता है और इसका भीषण दृश्य लोगों को दिखाता है; अर्थात् वादशाह ने स्वयं अपने ऐसे मंत्री वना लिए, जो उसकी जान के गाहक थे। किन्तु वख़शी फौज गाज़ी उद्दीन की युक्तियों से शीघ्र ही उसके वचाव की सूरत निकल आई, जिसने यह वचन दिया कि मैं इन भयंकर अधिकारियों को, अपने तीसरे भ्राता दौलत जंग से—जो नसीर जंग की मृत्यु हो जाने से दक्षिण का नवाव वन वैठा था—उसके अधिकार छीनने में मुझे सहायता देने के वहाने से, यहाँ से निकाल ले जाऊँगा।

वजीर ने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रतिरोधी को टलते देखा; किंतु उसको स्वप्न में भी यह नहीं सूझा कि सेनापति जिस लड़के को अपने पीछे यहाँ छोड़ गया है, वह एक आफ़त का

परकाला और विष की गाँठ है। पीछे यह युवा ग़ाजी उद्दीन (सानी) के नाम से बहुत विख्यात हुआ, यद्यपि उसका नाम शहाबुद्दीन और लक़ब अहमदुल मलिक था। अहमदुल मलिक वृद्ध निजाम चीन किलीच खाँ के चौथे बेटे फीरोज़ जंग का पुत्र था। वजीर सफदर जंग ने बादशाह के प्यारे सेनापति गाजीउद्दीन की औरंगाबाद में हत्या कराके अपने विचार में पूर्णतया अपना मनोरथ प्राप्त होना और अब किसी प्रकार का खटका शेष न रहना समझ लिया था। जब दिल्ली में युवा गाजीउद्दीन के ताऊ की मृत्यु का समाचार सहसा पहुँचा, तब उसका बेटा सोलह वर्ष का था। परन्तु उसने निर्बल और चिंतित बादशाह के गुप्त रूप से उभारने पर सफदर जंग के विरुद्ध वही लड़ाई—तूरान और ईरान व सुन्नी और शिया की—फिर उठाई, जो पहले मुहम्मद शाह बादशाह के समय में सैयदों और मुगलों के बीच में हुई थी और जिसमें उसके पितामह निज़ाम चीन किलीच खाँ और सफदर जंग के चचा नवाब सआदत खाँ ने भाग लिया था। पहले और इस विवाद में अंतर यह था कि उस समय कलह मन ही मन में थी; अब खुले बन्दों झगड़ा होता था। राजधानी के गली कूचों में दोनों पक्षवालों के बीच में प्रति दिन लड़ाई होती रहती थी। खेत मुगलों के हाथ रहा। गाज़ीउद्दीन ने सेना की अध्यक्षता ग्रहण की। वजारत गाज़ीउद्दीन के चचेरे भाई और मृत वजीर क़मरउद्दीन के दामाद इंतिजाम उद्दौला

ख़ानख़ानाँ को सौंपी गई। सफ़दर जंग ने प्रत्यक्ष में विद्रोह का झगड़ा खड़ा किया और सूर्यमल के अधीन जाटों को अपने सहायतार्थ बुलाया। मुग़लों ने मराठों पर अपना अवलंबन किया; और होलकर बादशाहत का हिमायती बनकर अपने सहधर्मी जाटों और अपने पूर्व संरक्षक सफ़दर जंग के विरुद्ध लड़ने को प्रस्तुत हुआ। नवाब अवध, जो सदैव पराक्रम की अपेक्षा चातुर्य्य में अधिक विख्यात था, अपने राज्य में चला गया और विजयी ग़ाज़ी की पूरी चोट अभागे जाटों पर पड़ी।

अब खानखानाँ और बादशाह को जान पड़ने लगा कि बात बहुत बढ़ गई; और खानखानाँ ने, जो अपने बंधु ग़ाज़ीउद्दीन के असावधान विचार और निर्दय आवेश से परिचित था, उससे वह सुरंग ले ली, जिसकी भरतपुर को उड़ाने के लिये आवश्यकता थी। बादशाह इस समय ऐसी परिस्थिति में था कि जिसको अपनी सफलता और कुशलतार्थ बहुत कुछ सोच समझकर काम करने की आवश्यकता थी। उसके पिता के पुराने मित्र और सेवक कमरउद्दीन का शूरवीर पुत्र मीर मन्नू उस वक्त पंजाब के अफ़ग़ानों के रोकने के कठिन कार्य में लगा हुआ था। परन्तु उसका बहनोई खानखानाँ भी पराक्रमी और समझदार था। ऐसी नाज़ुक हालत में बादशाह की गति साँप छछूँदर की सी हो गई थी। यदि वह सफ़दर जंग को बुलाता और जाटों से खुल्लमखुल्ला मिल जाता, तो उसको भले प्रकार से सोची समझी हुई एक प्रबल लड़ाई करने

पड़ती। और यदि वह सेनापति की सच्चे मन से सर्वांश पुष्टि करता, तो उसको स्वयं तो निश्चिन्तता प्राप्त हो जाती, पर इसके साथ ही एक बलिष्ठ हिंदू शक्ति का सत्यानाश हो जाता। चंचल विषयी बादशाह के संमुख जब ये दोनों परामर्श रखे गए, तब वह साहसपूर्वक किसी बात का निर्णय न कर सका। दिल्ली से तो उसने यह प्रतिज्ञा करके कूच किया कि सेनापति की सहायता करूँगा, जिसकी पीठ उसने पहले से ही इस विषय के अनेक पत्र भेजकर ठोंक दी थी। उधर उसने सूर्यमल को यह लिखा कि मैं शाही लश्कर के पिछले भाग पर आक्रमण करूँगा; जाटों को चाहिए कि उस किले से, जिसमें वे घिर गए हैं, निकलकर टूट पड़ें। सफदर जंग को कुछ नहीं लिखा गया; इसलिये वह चुपचाप अलग रहा। सूर्यमल के नाम का बादशाह का पत्र सेनापति ग़ाज़ी उद्दीन के हाथ में पड़ गया, जिसमें उसने अपनी ओर से कठोर धमकियाँ बढ़ाकर बादशाह के पास लौटा दिया। इस पर वह डरकर दिल्ली की ओर हटा, जिसका पीछा कुछ दूरी से उसके विद्रोही योद्धा ने किया। इस अवसर को उपयुक्त जानकर होलकर ने शाही शिविर पर अचानक धावा करके उसे लूट लिया। बादशाह और वजीर के हाथों के तोते उड़ गए और वे आतुरतापूर्वक दिल्ली को भागे। उन्हें इतना ही अवकाश मिला कि लाल किले में घुस गए, जिसे ग़ाजीउद्दीन ने चारो ओर से अच्छी तरह घेर लिया।

गाज़ीउद्दीन के स्वभाव को जानकर, जिसके साथ उसे पाला पड़ा था, बादशाह का ऐसी गंभीर और कठिन परिस्थिति में प्रत्यक्ष रूप में निज हित के लिये केवल यही उचित कर्त्तव्य रह गया था कि स्वयं वीरता से मुकाबले में खड़े होकर अपने दो दो हाथ दिखलावे और नवाब अवध तथा जाटों के राजा को सहायतार्थ निवेदनपत्र भेज दे। एक विश्वसनीय फारसी तवारीख में दर्ज है कि 'वजीर बा-तदबीर' ने उस समय बादशाह को जो सम्मति दी थी, उसका आशय भी यह ही था। परन्तु बादशाह ने कदाचित् इस बात को इन कठिनाइयों के कारण कि सफदर जंग के साथ पहले से वैर है और मुग़ल सेना पर ग़ाजीउद्दीन का बहुत अधिक प्रभाव है, अस्वीकार कर दिया। इस पर खानखानाँ निज गृह को चला गया और अपनी किले बंदी कर ली। शेष शाही अनुचरों ने फाटक खोल दिया और बख्शी फ़ौज ग़ाजीउद्दीन से सन्धि कर ली। उसने अपनी प्रकृति के अनुसार मंत्री मंडल से, जो वास्तव में उसका निजी स्वार्थपूर्ण विचार था, सम्मति दिलाई कि "यह बादशाह सल्तनत के लिये अयोग्य निकला: यह मराठों से मुकाबला करने में असमर्थ है। इसका व्यवहार अपने मित्रों के साथ मिथ्या और अनिश्चित है। इसलिये इसे तख़्त पर से उतारा जाय और इसके स्थान में तैमूर के घराने का कोई अधिक योग्य पुत्र तख्त पर बैठाया जाय"। इस प्रस्ताव को तुरंत कार्य रूप में परिणत किया गया। अभागे

बादशाह को अंधा करके महल के निकटस्थ सलीमगढ़ के कारागार में कैद किया गया और जूलाई १७५४ में फर्रुख सिय्यर के प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र को आलमगीर सानी की उपाधि देकर बादशाह बना दिया गया।

अकबर से औरंगजेब तक को जिस बादशाहत का सारे हिन्दुस्तान पर डंका बजता रहा, उसकी अब ऐसी करुणा-जनक और शोचनीय छिन भिन्न दशा हो गई थी कि नाम को तो उसका अधिकार समस्त देश पर कहा जाता था; परन्तु दुआब के ऊपर के भाग और सतलज के दक्षिण के थोड़े से जिलों के अतिरिक्त और कोई प्रदेश उसमें न बच रहा था। गुजरात के ऊपर मराठों को दौड़ धूप थी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा अलावर्दी खाँ के उत्तराधिकारी के अधिकार में थे। अवध का नव्वाब सफदर जंग था। मध्य दुआब पर बंगेश की अफगानी जाति अपना प्रभुत्व जमाए हुए थी। रूहेलखंड रुहेलों का हो चुका था। और यह पूर्व में ही प्रकट किया जा चुका है पंजाब पहले ही साम्राज्य से पृथक् हो गया था। दक्षिण के उस भाग को छोड़कर, जिस पर वृद्ध निजाम के पुत्रों में घरेलू झगड़ा हुआ, शेष सब को हिंदुओं ने पुनः जीत लिया था। एक ओर अँगरेज व्यापारी भी अपनी डेढ़ ईंट की मसजिद बना रहे थे।

इस परिवर्तन के सानुकूल समाप्त होते ही उस युवा बाद-शाह-निर्मायक ने अपना सिक्का जमाने का पूरा प्रबंध कर

लिया। अपने चचेरे भाई खानखानाँ को कैद करके आप वज़ीर बन बैठा। सफदर जंग की मृत्यु हो जाने से यह खटका मिट गया। इस बीच में उसके स्वेच्छापूर्ण व्यवहार से एक सैनिक विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, जिसका उसने इस निर्भयता और कठोरता से दमन किया कि फिर आगे किसी को ऐसा करने का साहस न हो। इतने पर भी ऐसे प्रपंचों का अंत न हुआ, जिनमें उच्च पदाधिकारी पुरुष लग रहे थे। इस निरंकुश मंत्री के हत्यार्थ जो षड्यंत्र रचा गया, दुर्बल बादशाह उसका सब से बड़ा प्रतिपालक हो गया। यद्यपि मंत्री ने अपने रक्षार्थ पहले से जो उपाय कर रक्खे थे, उनके कारण यह घटना न होने पाई, तथापि उसके राज-संबंधी प्रबंध के प्रयत्नों में विफलता होती रही; इससे उसके मन में मनुष्य मात्र से घृणा उत्पन्न हो गई।

उधर पंजाब में मीर मन्नू घोड़े से गिरकर मर गया। प्रजा उसको मन से इतना चाहती थी कि जब लाहौर और मुलतान प्रदेश अहमद शाह बादशाह के शासन काल में बादशाहत से निकल गए थे, तब नवीन बादशाह अहमद शाह अबदाली ने उनका प्रबन्ध मीर मन्नू के हाथ में ही बना रहने दिया; और उसकी मृत्यु के पीछे वही अधिकार उसके बालक पुत्र के नाम से प्रचलित रहने दिया। पुत्र की बाल्यावस्था में यथार्थ प्रबंध-कर्त्ता मीर मन्नू की विधवा और अदीना बेग—जो स्थानीय अनुभव में निपुण था-थे।

गाज़ीउद्दीन ने, जो दरबार से निकलना चाहता था, इस मौक़े को ग़नीमत समझा और ऐसे उचित अवसर पर पंजाब पर चोट लगाने की चेष्टा की। लूटे पूटे शाही ख़ज़ाने में जो रुपया रह गया था, उससे शीघ्रता के साथ सेना भरती करके और वली अहद मिरज़ा अली जौहर को अपने साथ लेकर उसने लाहौर को कूच किया। अचानक और बेख़बरी में नगर को जीतकर बेगम और उसकी पुत्री को अपने वश में किया और दिल्ली को लौट आया। यह घोषणा करके कि हमने अफ़गान बादशाह को संधि करने पर विवश कर लिया है, वहाँ अदीना बेग को अपनी ओर से उन प्रदेशों का अधिकारी नियुक्त करके छोड़ आया।

उसने यह सब कुछ किया, तो भी राजसभा संतुष्ट नहीं हुई, जिसका विशेषकर यह कारण था कि उसकी विजय उसे और अधिक कठोर तथा निर्दय बना देगी। अहमद अबदाली भी केवल उतने समय तक ही चुप रहा, जब तक कि उसको अपने कामों से सुभीता न मिल सका; क्योंकि यह बात वह कैसे सहन कर सकता था कि उसकी भूमि पर उसके प्रबंध में बिना आज्ञा प्राप्त किए कोई और आकर हाथ डाल दे। बादशाह के पक्षवालों ने दिल्ली से उसके पास जो कुछ लिख कर भेज दिया, उस पर अफ़गानी सरदार ने शीघ्र ही ध्यान दिया और बेग के साथ अपने कटक को लेकर दिल्ली से बीस मील पर आकर डेरा जमाया। वजीर उस समय

नजीबखाँ* की सहायता लेकर उससे लड़ने के लिये बढ़ा। परंतु जो सेना नजीब के साथ थी, वह शत्रु के दल में पहुँच कर इस प्रकार मिल गई, मानों बुलाई हुई आई हो; और गाज़ीउद्दीन "ठन्‌ठन्‌पाल मदन गोपाल" की कहावत के अनुसार अपनी करतूत से अकेला अलग रह गया। तब कहीं जाकर उसकी आँखें खुलीं और उसे अपनी वास्तविक दशा का बोध हुआ।

इस विपत्ति से उसने अपनी नीति के द्वारा छुटकारा पाया। उसने झट पट मीर मन्नू की पुत्री को अपनी स्त्री बना कर अपनी सास के द्वारा अहमद खाँ अबदाली से मुआफ़ी ही नहीं प्राप्त की, बल्कि उस सरल योद्धा से ऐसी गोटी जमा ली कि पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया।

तदनन्तर अबदाली ने सलतनत के कार्यों में हाथ डाला।

---

* नजीबखाँ एक धनी अफ़गानी सिपाही था, जिसने रुहेलखंड के पठान सरदारों में से दुंदीखाँ की पुत्री से विवाह किया था। इस भूमि-अधिकारी ने रुहेलखंड के पश्चिमोत्तर के कोने का ज़िला उसे प्रदान किया। तदनन्तर जब वज़ीर सफ़दर जंग के अधिकार में यह भूमि आ गई, तब नजीबखाँ उसके पक्ष में हो गया। इसके अनन्तर सफ़दर जंग जब अपने पद से हट गया, तब उसने गाज़ीउद्दीन का साथ उसकी लड़ाइयों में दिया। वज़ीर ने जब आरंभ में बादशाहत पर आक्रमण करने का विचार किया था, उस वक्त उसने नजीब को वज़ीर खानखानाँ की जागीर पर अधिकार करने के लिये एक सेना की टोली के साथ भेजा था। उस वक्त वह भूमि जो सहारनपुर के समीप है, बावनी महल के नाम से प्रसिद्ध थी और वह पीछे साम्राज्य से अलग होकर दो पीढ़ियों तक नजीब के घराने में रही।

वजीर को दुआब से कर लेने को भेजा। उसका एक मुख्य सरदार जहाँखाँ जाटों से चौथ लेने को गया और स्वयं बादशाह ने राजधानी को लूटा। प्रथम बार में ही गाज़ीउद्दीन बड़ी लूट लेकर लौटा। परंतु जाटों की चढ़ाई में ऐसी सफलता नहीं हुई; क्योंकि उन्होंने अपने बहुत से दुर्गों में घुसकर, जो उनकी भूमि पर ठौर ठौर बने हुए हैं, अफ़गानों की फौज़ के छक्के छुड़ा दिए और अचानक प्रहार करके उनके पशुओं की रसद का मार्ग बंद कर दिया। आगरे ने भी मुगल शासन की अधीनता में अपनी भली भाँति रक्षा की। किन्तु लुटेरों ने निकटवर्त्ती मथुरा नगर के अभागे निवासियों को अचानक ऐसे अवसर पर, जब कि वहाँ एक धार्मिक मेला हो रहा था, लूटकर अपनी कमी पूरी कर ली। घातकों ने बालक, बूढ़े या स्त्री किसी का कुछ भी विचार न करके सब का वध कर डाला।

दिल्ली के निवासियों का क्या कहना, जिन्होंने बीस वर्ष पहले नादिर शाह के साथियों के हाथ से जो दुःख झेले थे, इस समय उनसे भी बढ़कर दारुण कष्ट और आपत्तियाँ सहीं क्योंकि अबदाली के पठान ईरानियों की अपेक्षा बड़े उजड्ड और असभ्य थे। जो अपार धन तथा बहुमूल्य पदार्थ नादिर शाह उस वक्त ले गया था, वे तो अब इनके लिये कहाँ रक्खे थे! कौन सी विपदा थी, जो इस बीच में अर्थात् तारीख ११ सितंबर १७५७ से लेकर जब तक उन्होंने वहाँ प्रवेश किया, और उसके दो मास पीछे तक, दिल्लीवालों पर नहीं पड़ी।

इस द्रव्य-संचय के कार्य से निवृत्त होकर अबदाली गंगा किनारे अनूपशहर की छावनी को चला गया। वहाँ बैठकर उसने बादशाहत को उन हिन्दुस्तानी सरदारों में विभक्त किया, जो उसके प्यारे थे। नजीबखाँ को अमीर उल्उमरा के पद से, जिसके अधीन महल और उसमें वास करनेवालों का समस्त प्रबंध था, विभूषित किया। तदनन्तर वह स्वदेश को लौट गया, जहाँ से उसे हाल में एक विपद् का समाचार मिला था। परंतु अपने गमन से पूर्व उसने पुराने बादशाह मुहम्मद शाह की पुत्री की प्रशंसा सुन कर, जिसके साथ आलमगीर सानी अपना विवाह करना चाहता था, उसे अपने निकाह में ले लिया; और अपने पुत्र तैमूर शाह का विवाह वलीअहद की कन्या से किया, जिसके अधिकार में अपने पीछे पंजाब को छोड़कर आप अपनी सेना और दल बल सहित कंधार को प्रस्थित हुआ।

वजीर गाजीउद्दीन को ज्यों ही इस चिंता से, जो अबदाली के आने से उसके लिये उत्पन्न हो गई थी, मुक्ति हुई, त्योंही वह उन्मत्त होकर अति कठोर अत्याचार करने लगा, जिस पाप कर्म से उसकी प्रकृति सर्वथा बुद्धि-हीन और मलीन होकर कलंकित और दूषित हो गई थी। उसनें अपने बहुत से वैरियों से अपनी रक्षा करने के निमित्त मराठों की बड़ी फौज को रुपए देकर अपनी शरीर-रक्षक टोली अर्थात् गार्ड नियत किया, जिसके व्यय के लिये प्रजा के साथ नाना प्रकार की

दारुण कठोरताएँ और निर्दयताएँ करके उनसे वलपूर्वक रुपया वसूल किया। उसने नजीबखाँ को, जो अमीर उल् उमरा की उपाधि से अलंकृत होने के पीछे नजीब उद्दौला कहलाने लगा था, बाहर निकाल दिया; और उन सरदारों को, जो बादशाह के पक्षपाती थे, मार डाला या भीषण कारागार में डाल दिया। इसी से वह निर्दय संतुष्ट नहीं हुआ, वरन् उसने वली अहद अली गौहर पर भी हाथ साफ करना चाहा। शाहजादे की अवस्था सैंतीस वर्ष की थी। उसने अपनी जाति के वे समस्त उच्च गुण प्रकट किए, जो उसमें रनवास के भोग विलास में लिप्त होने से पहले देखने में आते थे। यमुना के तट पर जो दुर्ग किसी समय अली मरदानखाँ की हवेली था, उसमें वह इस प्रकार रहता था, जैसे लोग खुली हवालात में रहते हैं। यहाँ उसने यह सुना कि वजीर मुझे शाही कारागार में, जो महल के घेरे में सलीमगढ़ के नाम से विख्यात था, कड़ी कैद में डालना चाहता है। इस पर उसने अपने संगी साथियों अर्थात् राजा रामनाथ और एक मुसलमान सज्जन सैयद अली से सम्मति ली, जिन्होंने प्रतिज्ञा की कि हम चार घरेलू सवारों के साथ उस भीड़ में से, जो चारो ओर से घेरती हुई आ रही थी, शाहजादे को लड़ भिड़कर निकलने में सहायता देंगे। बड़े सवेरे वे चौक में उतरकर चुपके से घोड़ों पर चढ़ गए। विलंब के लिये तनिक भी अवकाश नहीं रह गया था; क्योंकि शत्रु के पराक्रमी सिपाही निकटवर्ती

छतों पर चढ़ चुके थे; जहाँ से उन्होंने शाहजादे के साथियों पर गोली चलानी शुरू की। उधर प्रधान सेना फाटक की रक्षा कर ही रही थी। परंतु नदी की ओर जो भीतें थीं, उनमें एक दरार हो गई थी। उसमें से होकर छलाँग मारकर और तनिक भी अपने मन में झिझक न मानकर तुरन्त उन्होंने अपने घोड़े यमुना के चौड़े पाट में डाल दिए। अकेला सैयद अली पीछे ठहर गया; और जब तक शाहजादा भली भाँति बचकर बहुत दूर न निकल गया, उनके साथ ऐसी वीरता से लड़ा कि वे उसी से लड़ने में फँसे रहे और पीछा करने का अवकाश ही न पा सके। इस सच्चे सेवक ने स्वामी के रक्षार्थ अंत में अपने प्राण भी निछावर कर दिए। ये भगोड़े नजीब को नवीन जागीर के केन्द्र सिकन्दरा में पहुँचे और कुछ दिन अमीर उलउमरा के पास ठहरकर लखनऊ चले गए। वहाँ शाहज़ादे ने बहुतेरा चाहा कि नया नवाब मुझसे मिलकर अँगरेज़ों पर आक्रमण करे, परन्तु उसे इस विषय में कुछ भी सफलता न प्राप्त हुई। इसलिये हारकर उसने विदेशीय शक्ति की शरण ग्रहण की।

दिल्ली के पत्रों से अहमदखाँ अबदाली को सब समाचार विदित हुए। इसलिये उसने फिर चढ़ाई की तैयारी की। विशेषतः यह कारण और हुआ कि मराठों ने उसी समय इधर उसके पुत्र तैमूर शाह को लाहौर से हटाकर खदेड़ा। उधर सेना भेजकर नजीब को उसकी नई जागीर से निकाला। इस कारण वह अपनी पुरानी भूमि बाउनी महल में आश्रय लेने

को विवश हुआ। नए नवाब अवध ने उसकी सहायता के हेतु रुहेलों को खड़ा किया और अफगानों ने, दिल्ली के उत्तर में नजीब के इलाके में यमुना पार करके, पुनः सितम्बर सन् १७५९ में अपनी पुरानी छावनी अनूपशहर में पड़ाव जमा दिया। वह निर्दय वजीर अब ऐसा हताश हो गया था कि उसको कहीं सहारा नहीं दिखाई देता था। अतः उसने अपने जीवन की चौसर का अंतिम पासा फेंकने की चेष्टा की। या तो वह अपने इस घोर दुष्टतापूर्ण उपाय से सारी बाजी जीत ले, या उसे सर्वथा हारकर कहीं चला जाय।

बादशाह कभी कभी अपने मुसाहिबों में बैठकर फकीरों और वलियों की पूजा करने की इच्छा प्रकट किया करता था। इस बात से अपना हित साधने के आशय से एक कशमीरी ने, जो गाज़ी उद्दीन का शुभचिन्तक था, आलमगीर से यह वर्णन किया कि एक 'रसीदह वली अल्लाह' ने हाल में फीरोजाबाद के ऊजड़ किले में, जो नगर से दक्षिण की ओर दो मील से अधिक दूर यमुना के दाहिने किनारे पर है, निवास किया है। दीनदार बादशाह ने उस संत के साथ सतसंग करने का संकल्प किया और पालकी में बैठकर उस खँडहर को प्रस्थित हुआ। हुजरे के द्वार पर पहुँचकर, जो फीरोज शाह की मसजिद के उत्तर पूर्व कोने में था, उस कशमीरी ने बादशाह के शस्त्र ले लिए और द्वार बन्द करके अँदर ले गया। जब सहायतार्थ चिल्लाहट सुनने में आई, तब बादशाह के जमाई मिरजा बाबर ने अपूर्व

वीरता का परिचय दिया। उसने हमला करके संतरी को घायल किया; और उसे पकड़कर बादशाह को डोली में सलीमगढ़ को भेज दिया गया। जब बादशाह अकेला और असहाय रह गया, तब एक राक्षस उज़बक ने, जो अंदर घुसा हुआ था, उसको कसकर पकड़ लिया और अभागे का सिर छुरे से काटकर धड़ से पृथक् कर दिया। मृत शरीर से शाही पोशाक उतारकर शिरविहीन धड़ को उसने खिड़की से यमुना की रेती में फेंक दिया, जहाँ से उसे घंटों पड़े रहने के बाद कश्मीरी ने उठाया।

गाज़ीउद्दीन ने जब अपने इस जघन्य कार्य की निर्विघ्न समाप्ति का संवाद सुन लिया, तब उसने सैयदों की सी चाल चलकर किसी को नाम मात्र का बादशाह बनाना चाहा। परन्तु अबदाली के सिर पर आ जाने से वह विवश होकर भरतपुर के जाटों के राजा सूर्यमल की शरण में चला गया। इसलिये अबदाली का कोप बेचारे निर्दोष दिल्ली-वासियों पर पड़ा, जिनका उसने तलवार और बन्दूक से विध्वंस कर डाला। अबदाली ने कुछ सेना लाल क़िले में रखकर उस उजड़े नगर का पीछा छोड़ा और अपनी पुरानी छावनी अनूपशहर को चला गया, जहाँ बैठकर उसने रुहेलों और अवध के नवाब से संधि की, जिसका अभिप्राय यह था कि हिंदुस्तान के समस्त मुसलमानों को मिलाकर इसलाम के रक्षार्थ एक भारी और गहरी चोट चलाई जाय।

उधर मराठों और जाटों ने कदाचित् भगोड़े वज़ीर के फुसलाने से और विशेषतः देशभक्ति के उत्कृष्ट भाव से, जो हिंदू राजाओं में बढ़ रहा था, प्रेरित होकर एक विशाल सेना एकत्र की; और दिल्ली में आकर सुगमता से अपना अधिकार जमा लिया और नगर को पूर्णतया नष्ट कर डाला।

अभी वर्षा ऋतु पूर्णतया समाप्त भी नहीं हुई थी कि अबदाली ने अपनी छावनी उखाड़ दी और दुआब के ऊपरवाले भाग से कूच करके शत्रु के सम्मुख अपनी सेना को यमुना में डाल दिया; और उसे पार करके उसने करनाल के समीप नादिर शाह के पुराने रण-क्षेत्र पर अपने मोरचे जमा दिए। इधर मराठों ने कुछ दूर दक्षिण को हटकर पानीपत में किलाबन्द पड़ाव डाला। बाहर के शत्रु का बल भी बिलकुल ही कम न था। इधर मराठों के पास पचपन हज़ार उत्तम घुड़सवार रिसाले की भीड़, पन्द्रह हजार पैदल पल्टन के साथ थी, जिनमें से अधिकतर दक्षिण में फरांसीसी ढंग की कवायद सीखे हुए थे। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या बे-कवायदी बेड़ों की थी; और इन सब की संख्या तीन लाख सिपाहियों तक पहुँच गई थी। तोपों की श्रेणी भी उनके पास बड़ी भारी थी। उधर अफगानों के पास पचास हजार घुड़सवार सेना थी, जिसके सामने चालीस हजार हिन्दुस्तानी पैदल पल्टन थी। तोपों की दृष्टि से वे निर्बल थे।

परन्तु लड़ाई के परिणाम में अफगानों की तोपों की न्यूनता

कुछ भी बाधक नहीं हुई। उन्होंने जो छावनी डाली, वह पीछे की ओर को खुली रक्खी थी। और उनके युद्ध करने की परिपाटी ऐसी श्रेष्ठ थी, जिसके कारण वे मराठों को चारों ओर से घेरने में समर्थ हुए और निरन्तर रसद भी बहुतायत के साथ पंजाब से मँगाते रहे। दो मास बहुत सी अनिश्चित छोटी छोटी लड़ाइयों का क्रम स्थिर रहने पर भूखों मरते हुए हिंदुओं ने अंत में तंग आकर तारीख ६ जनवरी सन् १७६१ को प्रातःकाल के समय एक बड़ा धावा करके भीषण मार काट की। किन्तु ऐसे विषम समय में एक साथ सब जाट उन्हें छोड़ कर चले गए। होलकर भी, जिसका सदैव नजीब उद्दौला के साथ मेल रहता था, थोड़े काल पीछे युद्ध स्थल से विदा हो गया। पेशवा का पुत्र मारा गया; और सेनापति सहसा ऐसा गायब हुआ कि फिर उसकी कभी सुध ही नहीं मिली। मराठों को हटकर पानीपत ग्राम में शरण लेते ही बना, जहाँ दिन निकलते निकलते उनको मार काटकर रक्त की नदी बहाई गई। इस समस्त संग्राम में मराठों की हानि दो लाख के लगभग हुई।

अबदाली ने तुरन्त दिल्ली को कूच किया, जहाँ उसके पहुँचने पर मराठों की जो छावनी थी, वह टूट गई। वहाँ रहने का उसका यह अभिप्राय था कि अनुपस्थित अली गौहर के पास बुलाने के लिये दूत भेजे, जिसके बादशाह होने की उसने तोपों की सलामी करा दी थी। उसके लौटने तक

अस्थायी प्रबन्ध उसके सब से बड़े पुत्र मिरज़ा जवाँबख्त को समर्पित किया गया। नजीब उद्दौला पुनः अमीर उल्उमरा के पद पर बहाल किया गया। जो वज़ारत खाली पड़ी थी, उस पर नवाब अवध को नियत किया। इस प्रकार प्रबन्ध करके अहमद खाँ अबदाली स्वदेश को लौट गया।

शाहज़ादे अली गौहर के लखनऊ पहुँचने का वर्णन पहले हो चुका है। लखनऊ में उस समय (सन् १७६०) प्रसिद्ध सफदर जंग का पुत्र शुजा उद्दौला नवाब अवध था। वह योग्यता में अपने पिता के समान और वीरता में उससे बढ़ चढ़कर था। अपने पिता की स्वाधीन जागीर की गद्दी पर बैठने के समय वह तरुण था। भोग विलास में उसका मन बहुत लगता था; इसलिये पहले उसने उन वासनाओं को ही तृप्त किया। कहा जाता है कि वह बड़ा ही रूपवान, छरहरा, लम्बा और सुडौल शरीर का था। उसकी बुद्धि भी अति तीक्ष्ण थी परन्तु मन तनिक चलायमान और चंचल था। मंत्र सभा में गम्भीर विचार प्रकट करने की अपेक्षा उसका स्वभाव रण के करतबों की ओर ही अधिक झुका हुआ था। शुजाउद्दौला को अपना प्रयोजन सिद्ध करने की नीति की अच्छी शिक्षा दी गई थी और वह उसे ग्रहण करने में तत्पर भी रहता था। शुजा का व्यवहार पिछले रुहेले युद्ध में प्रशंसनीय नहीं रहा। वह अपने बिगड़े हुए बादशाह के भगोड़े पुत्र के पक्ष में निन्दा रहित रूप में होने के कारण उससे विशेष करके अप्रसन्न था। शाहज़ादे

ने उससे निराश होकर अपना मुँह एक और मनुष्य की ओर फेरा, जो नवाव के ही कुटुंब का था; और इलाहावाद का जिला तथा किला जिसके अधिकार में था। उसका नाम मुहम्मद कुलीखाँ था। इस सरदार को शाहजादे ने अपने हस्ताक्षर से विहार, वंगाल और उड़ीसा की नवावी का शाही फरमान प्रदान किया। उस समय में ये प्रदेश कलकत्ते के अँगरेज व्यापारियों और नवाव अलावर्दी खाँ के पोते के बीच में होनेवाली लड़ाई के स्थल वने हुए थे। शाहजादे ने मुहम्मद कुलीखाँ को यह परामर्श दिया कि वह शाही झंडा खड़ा करके दोनों प्रतिरोधियों को दवा दे। यह शासक स्वयं ही साहसी और पराक्रमी था; और दूसरे उसके वन्धु नवाव अवध ने उसकी और भी पीठ ठोंक दी थी। यह कार्य उसने वहुत ही पसंद किया, जिसका कारण आगे विदित हो जायगा। उधर विहार में कामगारखाँ नामक एक शक्तिशाली कर्मचारी ने भी सहायता का वचन दिया। इस प्रकार सहारा पाकर नवंवर सन् १७५९ में शाहजादा सीमा की नदी करमनासा के पार उतर गया। यह ठीक वही समय था, जव उसके अभागे पिता के प्राण कपटपूर्वक हर लिए गए थे, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

जव विहार प्रांत के कुनोती ग्राम में शाहजादे के डेरे लगे हुए थे, तव वहाँ एक मास से अधिक व्यतीत हो जाने पर सन् १७६० में इस शोकजनक घटना का समाचार पहुँचा। शाहजादा तुरंत वादशाह वन गया; और उसने अपने उग्र साहस के

अनुकूल ही "शाह आलम" की उच्च उपाधि धारण की। उस समय के शाही लेखों से विदित होता है कि उसने यह आज्ञा दी कि उसके राज्याधिकार का प्रारंभ उसके पिता के वध होने के दिन से गिना जाय और इसकी पुष्टि के निमित्त उसने फरमान जारी किए। सब पक्षवालों ने शीघ्र ही उसे बादशाह मान लिया। उसने अपनी ओर से भी शुजाउद्दौला को हत्यारे गाजीउद्दीन के स्थान में वज़ीर स्वीकार किया; और नजीबउद्दौला को, जो अबदाली का नियुक्त किया हुआ था, हिन्दुस्तान की सेना का अधिकार समर्पित किया।

इस प्रबंध से निवृत्त होकर बादशाह राजस्व संचय करने और बिहार में अपना जमाव जमाने में प्रवृत्त हुआ। वह इस समय एक लंबा शानदार पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था के लगभग का था, जिसकी चाल ढाल अपनी जाति की सी थी; और कुछ उसके निज स्वभाव की विशेषताएँ भी विद्यमान थीं। अपने पूर्वजों के सदृश वह पराक्रमी, धीर, तेजस्वी और दयालु था; परन्तु उसके जीवन के समस्त इतिहास से यह विचार प्रकट होता है—जिसकी पुष्टि उसके सब समकालीन वृत्तान्त भी करते हैं—कि उसके अवगुण इन गुणों की अपेक्षा कहीं अधिक थे। उसका साहस, उद्योग और शील उचित पुरुषार्थ की अपेक्षा धैर्य के रूप में विशेषकर पाया जाता था, जिस बात की उस स्थिति में, जिसमें कि बादशाह उस समय था, पूर्णतया आवश्यकता थी। उसकी इस नम्रता ने, कि जिस किसी

ने जो चाहा, उसके साथ किया और उसने उसे क्षमा या उपेक्ष्य कर दिया, और प्रवल स्वभाववाले जो जो मनुष्य उसके निकट आते रहे, उनके कहने पर उसने तत्काल अपने कान दिए और कार्य कराया, वड़ी हानि की। उसका इस प्रकार का स्वभाव था कि जिसका सितारा जव चमका, उसके साथ वह तभी मिल वैठा। उसकी इन क्षणिक दुर्वल वासनाओं की पूर्त्ति ने उसकी आगामी उच्च आशाओं पर पानी फेर दिया।

पूर्वी सूवे इस समय क्लाइव के नियुक्त नवाव मीर जाफर खाँ के अधिकार में थे; और विहार में रामनारायण नामक एक हिंदू व्यापारी राजा शासन करता था। इस अधिकारी ने मुर्शिदावाद और कलकत्ते से अँगरेज़ों की मदद मँगाकर अपने वादशाह के कार्यों में वाधा डालने का प्रयत्न किया। परंतु वादशाही सेना ने उसे हराकर वड़ी क्षति पहुँचाई, जिसके कारण वह अभागा व्यापारी शरीर से घायल और मन में डरा तथा घवराया हुआ पटने में जा पड़ा, जिस पर मुग़लों ने उस समय चढ़ाई करना उचित न समझा। इसी वीच में नवाव की फौज एक छोटी सी अँगरेज़ी सेना से मिलकर वादशाह के मुकावले को चली, जिसने उस लड़ाई में, जो तारीख़ १५ फ़रवरी सन् १७६० ई० को हुई, वहुत नीचा देखा। इस पर वादशाह ने साहसपूर्वक वग़ली धावा करना विचारा, जिसके द्वारा वह वंगाल की सेना का मार्ग उसकी राजधानी मुर्शिदावाद के साथ काट दे और उसे उसके रक्षकों को अनु-

परिस्थिति में अपने अधिकार में कर ले। परंतु उसके मुर्शिदाबाद पहुँचने से पहले ही तारीख ७ अप्रैल को अँगरेज़ों ने आक्रमण करके उसके पाँव उखाड़ दिए। उस समय फरांसीसों की एक लघु सेना, जो एक प्रसिद्ध सेनानी के अधीन थी, बादशाह के साथ मिल गई; इसलिये उसने विहार में ही रहने और पटने पर घेरा डालने की चेष्टा की।

यह फरांसोसी टुकड़ी जो, बादशाह के साथ सम्मिलित हुई, लगभग सौ अफ़सरों और सिपाहियों की थी, जिन्होंने अब से तीन वर्ष पहले चन्द्रनगर को अँगरेजों के हाथ सौंपने से नाहीं कर दी थी; और तब से वे चारों ओर देश भर में मारे मारे फिर रहे थे; और निर्दय विजयी क्लाइव उनको कष्ट देने के लिये उनका पीछा करता फिरता था। उनका प्रमुख वीर ला (Law) था, जिसने अपना और अपने अनुयायियों का कौशल और पुरुपार्थ बादशाह के चरणों में समर्पित करने में अधिक शीघ्रता की। उसका साहस उच्च और वह निर्भय था, परन्तु वह ऐसा न था कि ऐसा काम करने लग जाता, जिसके करने की योग्यता की उसकी बुद्धि साक्षी न देती। उसको शीघ्र ही बादशाह की दुर्बलता और मुग़ल सरदारों के कपट और नीच भावों का हाल भली भाँति मालूम हो गया; और जो भरोसा उसने कर रक्खा था, वह सब जाता रहा। ला ने फारसी इतिहास "सैर उल् मुताखरीन" के लेखक गुलाम हुसेन से इस प्रकार कहा था—

"जहाँ तक मुझे दृष्टिगोचर होता है, यही प्रतीत होता है कि पटने और दिल्ली के बीच में कोई राज्य स्थिर नहीं है। यदि ऐसा ही कोई मनुष्य, जैसा शुजाउद्दौला है, तन, मन, धन से मेरी मदद पर हो जाय, तो मैं न केवल अँगरेजों को ही मारकर भगा दूँगा, वरन् साम्राज्य का प्रबन्ध भी अपने हाथ में ही ले लूँगा।"

जब बादशाह अपने फरांसीसी साथियों सहित पटने पर घेरा डाले हुए पड़ा था, तब कप्तान नौक्स (Captain Knox) एक पलटन की छोटी सी सेना लेकर, जिसमें दो सौ गोरे भी थे, तेरह दिन के समय के अंदर तीन सौ मील की दूरी, जो मुर्शिदाबाद और पटने के बीच में है, तै कर गया और शाही कटक पर टूट पड़ा। उसने उसके बिलकुल पाँव उखाड़ दिए और उन्हें दक्षिण की ओर गया को भगा दिया। उस वक्त शाही सेना पर कामगारखाँ का अधिकार था; क्योंकि मुहम्मद कुलीखाँ इलाहाबाद को लौट गया था, जिसको शुजाउद्दौला ने मरवा डाला और जिसका प्रदेश तथा दुर्ग ले लिया। बादशाह जब दक्षिण की ओर पीछे को हट रहा था, तब अपने मन में इस आशा के पुल बाँधता जाता था कि समस्त देश को अपने पक्ष में खड़ा करूँगा। उसकी आशा इतनी तो सफल हुई कि ख़ादिम हुसेन नामक एक और मुग़ल सरदार उसके साथ मिल गया। इस प्रकार कुमक पाकर उसने फिर पटने पर चढ़ाई की। नॉक्स ने उसका मुकाबला किया,

जिसके साथ भी एक हिन्दू राजा, जिसका नाम शितावराय था, सम्मिलित हो गया था। फिर भी बादशाह की हार हुई, जो अंत में इस भूमि को छोड़कर उत्तर की ओर भागा। अँगरेजों तथा बंगाल के नवाब को समस्त संयुक्त सेना उसका पीछा किए चली आ रही थी। परन्तु नवाब का पुत्र जूलाई में बिजली गिरने से मर गया; इसलिये यह मित्र दल पटने की छावनी को लौट गया। उधर हठीले बादशाह ने फिर अपने मोरचे पुरानी छावनी गया में लगा दिए।

इस कारण सन् १७६१ के आरम्भ में संयुक्त अँगरेजी और बंगाली फ़ौज फिर मैदान में उतरी; और उसने शाही लश्कर से उसके शिविर के समीप मुकाबला करके उसे पुनः पराजित किया। इस लड़ाई में ला क़ैद कर लिया गया, जो अंत समय तक बराबर लड़ता रहा। इस पर भी उसने अपनी तलवार देने से नाहीं कर दी, जो उसके पास रहने दी गई।

दूसरे दिन प्रातः काल अँगरेज़ी सेनाध्यक्ष ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम किया, जो दो वर्ष से अधिक काल तक निरन्तर व्यर्थ युद्ध करते करते थक गया था, और जिसने प्रसन्नतापूर्वक हिन्दुस्तान को ओर प्रस्थान किया। इस समय उसने पानीपत के युद्ध और अबदाली द्वारा साम्राज्य के फिर जीत लेने के विचार का वृत्तान्त सुना। और निश्चय ही बादशाह अँगरेजों की संरक्षता में दिल्ली में तुरंत पुनः स्थापित हो गया होता, किंतु मीर क़ासिम की ईर्ष्या

के कारण ऐसा न हो सका, जिसे अँगरेजों ने परिवर्तन करके मीर जाफर के स्थान में नवाब बना दिया था। सूबेदारी मीर कासिम के नाम बादशाह ने भी स्वीकार कर ली और आर्थिक प्रबन्ध भी उसको सौंपा गया। यह समस्त कार्य अँगरेज़ों के इच्छानुसार ही हुआ था। बादशाह को तो केवल चौबीस लाख रुपए वार्षिक कर की आय का दिया जाना स्थिर हुआ था।

उस समय इससे पूर्व कि अँगरेजों को हिन्दुस्तान के मामलों में हाथ डालने का अवसर प्राप्त हो; उनको बहुत काम करना और बड़ा कष्ट सहना पड़ा था। बादशाह को भी अनेक विलक्षण परिवर्तनों में होकर निकलना पड़ा; तब कहीं वह उनसे अपने बाप दादों के महल में मिल सका। उत्तर पश्चिम के मार्ग में जाते हुए वह अधर्मी वज़ीर अवध के नवाब के फन्दे में फँस गया, जिसको अबदाली का यह आदेश मिला था कि सब प्रकार से बादशाह की सहायता करना। परंतु उसने इस आज्ञा का इस भाँति पालन किया कि उसको दो वर्ष से ऊपर आदरपूर्वक हवालात में बादशाहत के ऊपरी चिह्नों से सुसज्जित कर कभी बनारस में, कभी इलाहाबाद में और कभी लखनऊ में रक्खा।

इसी बीच (सन् १७६३) में अचेत मूर्ख सैनिकों ने, जो भारत में अँगरेजी साम्राज्य की नींव जमा रहे थे, अपने पुराने यन्त्र मीर कासिम को बंगाल की मसनद पर से हटाना उचित

समझा। उनकी समझ में इस परिवर्तन का मूल कारण वह कठोर पत्र था, जो क्लाइव के पक्षवालों ने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors, अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी की सदर कचहरी, जो लन्दन में थी) के नाम भेजा था और जिसने उन्हें सेवा से निकलवा दिया था। उनका जो प्रतिरोधी नवाब के दरबार में प्रतिनिधि के रूप में शक्ति को प्राप्त हुआ, वह मिस्टर एलिस (Mr. Ellis) था, जो उन सब में अत्यन्त उग्र स्वभाव का था, और जिसके व्यवहार का थोड़े ही दिनों में यह परिणाम हुआ कि रेजीडेंट, और उसके समस्त कर्मचारियों तथा अनुचरों की अक्तूबर सन् १७६३ में हत्या हो गई। यह घोर हत्या कांड पटने में हुआ, जिस नगर पर अँगरेज़ों ने चढ़ाई की और गोले बरसाए। इस घटना का वास्तविक कारण फरांसीसी और जर्मन मिश्रित वंश से उत्पन्न वाल्टर रेनहार्ड (Walter Renhardt) नामक एक मनुष्य था, जो पीछे समरू के नाम से बहुत विख्यात हुआ।

---

(२) वाल्टर रैनहार्ड अथवा समरू का जीवन चरित्र

परिचय

पिछले अध्याय में जो कुछ वर्णन हो चुका है, वह मुग़ल साम्राज्य और उसके पतन का संक्षिप्त इतिहास उस स्थल तक है, जहाँ से हमारे उपर्युक्त नायक के कार्यों का उल्लेख प्रारंभ होता है। तद्यपि समरू के जीवन को सभी घटनाएँ जो इस खंड में लिखी जायँगी, प्रायः मुग़लों के पतन के अंतर्गत हुई हैं, तथापि उन सब का घनिष्ट संबंध विशेषतः उस क्रम को अपेक्षा जो पीछे प्रचलित रहा है, अधिकतर उसके अस्तित्व के प्रति ही है। इसलिये यहाँ से दूसरा प्रसंग आरंभ होता है।

जन्मभूमि, भारतागमन और नाम-परिवर्तन।

वाल्टर रैनहार्ड का जन्म ट्रेव्ज़ * (Treves) स्थान में जो

---

* "मुग़ल एम्पायर" नामक पुस्तक के लेखक हैनरी जार्ज कीनी साहब और "ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी" के रचयिता थामस विलियम बेल साहब ने उपर्युक्त समरू के केवल निवास का नाम लिखा है, परंतु पादरी डब्लू० कीगन साहब ने अपनी पुस्तक "सिपर्नो" नामक में इसके अतिरिक्त यह और प्रकट किया है कि किसी ने उसको बवेरिया देश के टिरोल के इलाके (Bavarlan Tyrol) सैल्ज़बर्ग (Salzburg) का निवासी भी बतलाया है।

लक्ज़म्बर्ग की जागीर (Grand Duchy of Luxemburg) के अंतर्गत हुआ था। खेद है कि उसकी जन्म-तिथि का पता नहीं मालुम हो सका। उसका जन्म दो भिन्न वंशों के माता पिता से हुआ था, जिसके विषय में अँगरेज़ लेखकों ने बहुत विष उगला है।

वाल्टर रैनहार्ड फरांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के जंगी बेड़े में मल्लाह बनकर भारतवर्ष में आया था। उसका रंग कुछ काला और धुँधला सा था, जिस कारण उसके साथी उसको सौम्ब्रे (Sombre, जिसका अर्थ काला या धुँधला होता है) कहते थे। उनकी देखादेखी भारतवासी भी उसे शमरू अथवा समरू कहने लगे। अतएव भारतवर्ष में सर्वत्र उसका नाम समरू ही विख्यात हो गया। पादरी कीगन के मतानुसार उसका यह दूसरा नाम उस समय प्रचलित हुआ, जब वह नवाब मीर कासिम के यहाँ था।

प्राथमिक वृत्तान्त

समरू ने भारतवर्ष आने पर जहाज़ी बेड़े की सेवा त्याग दी और वह बंगाल को चला आया। बंगाल में उस समय पहले पहल जोरों की एक पल्टन खड़ी हुई थी। समरू उसमें भरती हो गया। परंतु उसने उसकी सेवा भी छोड़ी और फरांसीसी छावनी चन्द्रनगर में पहुँचकर वह वहाँ सार्जेंट हो गया। जब क्लाइव ने मई सन् १७५७ में उदासीनता स्थिर

रखने की संधि भंग करके चन्द्रनगर का फरांसीसी उपनिवेश जीत लिया था, उस समय समरू उन फरांसीसियों में से था, जिन्होंने ला साहब की अध्यक्षता में आत्म-समर्पण करने से नाहीं कर दी थी और जो फिर बहुत समय तक मारे मारे फिरते रहे थे *। जब सन् १७६१ में वीर चूड़ामणि ला पकड़ा गया, जिसका वर्णन पीछे हो चुका है, तब समरू ने विहार के शासक मीर कासिम के आरमी जनरल ग्रैगोरी (Gregory) अथवा गुर्जीनखाँ की सेवा ग्रहण की। उस समय विहार प्रान्त की राजधानी पटने में थी। समरू ने नवाब मीर कासिम की सैना को यूरोपियन ढंग की शिक्षा दी। एक ब्रिगेड (Bri-gade) वह स्वयं अपने अधिकार में रखता था। जब नवाब और अंग्रेज़ों के बीच में झगड़ा हुआ, तब वह समस्त सेना का सेनापति नियुक्त हुआ।

२ अगस्त सन् १७६३ को वह गैरियाह (Gerlah) की लड़ाई लड़ा। यह युद्ध उन सब से अधिक भयंकर था, जो अब तक अगरेजों को देशी सेनाओं से करने पड़े थे। निरंतर चार घंटे तक संग्राम होता रहा। अँगरेजी पंक्ति तोड़ दी गई; दो तोपें उसके हाथ से निकल गईं और ८४ वीं गोरी पल्टन नष्टप्राय: हो गई।

---

* इसी बीच में समरू सन् १७६० में पुरनिया के फौजदार खादिमहुसैन खाँ के पास रहा था।

अँगरजों से वैर का कारण

जिन लोगों को इंगलैंड के इतिहास का परिचय है, वे भले प्रकार जानते हैं कि अँगरेजों और फरांसीसियों के बीच में बड़ी पुरानी शत्रुता है और एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। इन दोनों जातियों की प्रतिद्वन्द्विता भारत में भी हो गई; इस कारण इनमें यहाँ भी नित्य नया उपद्रव होने लगा।

कुछ भी हो, समरू भी फरांसीसी ही था। उसके स्वभाव में भी न्यूनाधिक वही गुण विद्यमान थे, जो उसके जातिवालों में थे; इसलिये उसका अँगरेजों से वैर भाव रखना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त चन्द्रनगर के अँगरेजों के अधिकार में आ जाने पर उसने अपने देश-वासियों की जो शोचनीय और करुणाजनक दशा देखी थी; और बीरवर ला के साथ स्वयं बराबर तीन वर्ष के दीर्घ काल तक इधर उधर क्लाइव के डर से मारे मारे भटकते फिरने में नाना प्रकार के जो दारुण कष्ट सहे थे, वे भी कदाचित् उसकी स्मृति से लुप्त नहीं हुए थे। उसको नवाब मीर कासिम की सेवा में प्रविष्ट होने का अवसर सहज ही में मिल गया, जो अँगरेजों के अपने साथ विश्वासघात करने, उनके कपट करके पटना ले लेने और पुनः पीछे से मूँगेर खो बैठने से अपार क्रोध के आवेश से अंधा हो रहा था। तभी तो उस पर यह लोकोक्ति सर्वथा चरितार्थ हो गई थी कि "एक तो कड़वा करेला और दूसरे नीम चढ़ा"। जो अँगरेज़ कैदी गैरियाह को

लड़ाई में नवाब के हाथ पड़ गए थे, उन्हें वह अपने साथ पटने ले आया और फिर उनका वध करा दिया। कहते हैं कि इस भीषण हत्या-काण्ड का करनेवाला समरू ही था। यद्यपि यह घोर अपराध समरू के माथे मढ़ा जाता है, परन्तु पादरी कीगन साहब का कथन है—"वास्तव में इस घृणित अभियोग की पुष्टि में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है *।" पटना नगर

---

* इस दुर्घटना के विषय में प्रिंसिपल श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० एल० टी० ने प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका "माधुरी" की श्रावण तुलसी संवत् ३०२ की संख्या में निम्न लिखित वर्णन किया है—

"पटने में मुख्य अँगरेज़ कर्मचारी मि० एलिस थे। इन्हीं की स्वार्थपूर्ण नीति और कट्टरपन के कारण इस युद्ध का आरंभ हुआ था; क्योंकि यह चाहते थे कि मीरकासिम अँगरेज़ों के माल पर कर लगावे। किंतु जब मीरकासिम ने हिन्दुस्तानियों के माल पर से भी कर उठा लिया, तब वे बड़े नाराज हुए; क्योंकि इससे अँगरेज़ और हिंदुस्तानी व्यापार में समान हो गए और अँगरेज़ों को नाजायज लाभ उठाने का मौका न रहा। अतएव बहुत से अँगरेज़ों ने मीरकासिम के विरुद्ध होकर उन्हें गद्दी से उतार देने का प्रयत्न करना शुरू किया। मि० एलिस उन अँगरेज़ों में मुख्य थे। कलकत्ते की कौंसिल में उनका प्रभाव था और मीर कासिम का विश्वास था कि उन्हीं के कारण यह युद्ध छिड़ा है। अतएव जब पटने की विजय के बाद मि० एलिस प्रायः दो सौ अँगरेज पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के साथ कैद हो गए, तब मीर कासिम ने सब विपत्तियों के मूल कारण को उसके साथियों समेत मार डालने का निश्चय किया। उन अँगरेज़ कैदियों में सिर्फ डाक्टर फुलर्टन छोड़ दिए गए; क्योंकि मीर कासिम उनके अनुगृहीत थे। किंतु किसी हिंदुस्तानी ने यह हत्या करना स्वीकार नहीं किया। अंत में मीर कासिम ने समरू से कहा। समरू तत्काल राजी हो गया और उसने अपने कुछ साथियों की सहायता से उन सब का बध कर डाला। स्वयं उसने प्रायः डेढ़ सौ अँगरेज़ों का बध किया।" . . . .

में उस समय अँगरेज़ों की जो गोरी और काली सेनाएँ थीं, उनमें भयंकर विद्रोह उत्पन्न हो गया। ११ फरवरी सन् १७६५ को गोरी पल्टन के सिपाहियों ने शस्त्र उठा लिए। उन्होंने अपनी बन्दूकें भरकर और संगीनें चढ़ाकर तोपखाने के मैदान को अपने अधिकार में कर लिया और बनारस को कूच कर दिया। यद्यपि उनमें से अँगरेज़ सैनिकों को जैसे तैसे समझा बुझाकर जाने से रोक लिया और लौटा लिया गया, तथापि अन्य दो सौ से अधिक देशी विदेशी सैनिकों ने न माना और अपना कूंच जारी रक्खा। तब उनको समरू ने उपदेश देकर नवाब की सेना में नियुक्त कर लिया। अँगरेज़ों की दृष्टि में समरू का यह अपराध अक्षम्य था, जिससे वह उनका चिर-शत्रु हो गया; और इसके पीछे अँगरेज़ों ने देशीय शक्तियों से जो सन्धियाँ कीं, उनमें सब से पहली शर्त यही थी कि समरू को सौंप दो, अथवा पकड़वा दो। नवाब मीरकासिम और अँगरेज़ों के मध्य में जो जो संग्राम हुए, उनमें सदैव समरू की जीत हुई। परन्तु अंत में बक्सर* की जो अशुभ लड़ाई तारीख २३ अक्तूबर

* ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के लेखक ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है कि बक्सर वाले युद्ध के कुछ समय पहले समरू धोखा देकर कासिमअली खाँ के पास अपनी पलटन सहित चला गया था और नवाब शुजा उद्दौला की सेवा में प्रविष्ट हो गया था। नवाब शुजा उद्दौला ने उसे घूस देकर अपनी ओर कर लिया था। बक्सर में नवाब का पराजय होने पर बेगमों की रक्षा का कार्य उसको सौंपा

सन् १७६५ को हुई, उससे नवाब का बल टूट गया और समस्त बंगाल पर अँगरेजों का अधिकार हो गया।

अवध के नवाब शुजाउद्दौला का आश्रय

बक्सर में पराजय हो जाने से नवाब मीरकासिम के पाँव बंगाल से उखड़ गए और उसने इलाहाबाद का मार्ग पकड़ा। समरू भी अपनी पलटना को लेकर उसके साथ चला। जब वे वहाँ पहुँचे, तो उन्हें सम्राट् शाह आलम और वज़ीर (अवध का नवाब शुजाउद्दौला) छावनी डाले हुए मिले। इतने समय के लिये, जब कि शान्ति के निमित्त सन्धि की बात चलती रही, समरू को बुँदेलखंड के उन राजाओं को, जो बादशाह से फिर गए थे, दंड देने और भू-कर एकत्र करने के प्रयोजन से नियुक्त किया गया। बादशाह और वज़ीर ने अँगरेज़ों के साथ अहद पैमान तो कर लिए, परन्तु नवाब मीरकासिम को उन्होंने उसके भाग्य पर ही छोड़ दिया, जो लाचार रूहेलखंड के सरदार रहमतखाँ के पास भाग गया। समरू भी अपने गोरे साथियों को लेकर वहीं गया। नवाब के ज़िम्मे फौज का जो शेष वेतन था, वह उसने वहाँ से प्राप्त किया। तदनन्तर वे यह सोचने लगे कि किस प्रकार

गया। नवाब के यहाँ से समरू उस समय डर के मारे चला गया, जब कि उसने अँगरेजों से संधि कर ली। फारसी की "मिफ्ताह-उत्तवारीख" बक्सर उसकी लड़ाई की जो नवाब शुजा उद्दौला और अँगरेजों में हुई थी, पुष्टि करती है।

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के डाह भरे द्रोह से छुटकारा मिले, जो उनके रहने के स्थानों के नवाबों और राजाओं को बलपूर्वक दबा रही थी कि वे उन्हें पकड़कर हमें सौंप दें। इस विषम परिस्थिति में भिन्न भिन्न जातियों के उन तीन सौ मनुष्य ने समरू की आज्ञा से भरतपुर को कूच किया *; क्योंकि यह स्थान उस समय अँगरेज़ों के प्रभाव से बहुत दूर और अलग था। इस काल में मुगल साम्राज्य के अधिकार से बंगाल और दक्षिण के प्रदेश निकल चुके थे; और मराठे, जाट, रुहेले तथा सिख हिन्दुस्तान में भी उसको तोड़ फोड़ रहे थे और एक दूसरे के विरुद्ध अधिक भूमि दबाने के हेतु झगड़ रहे थे। समरू ने अपने लिये यह अच्छा अवसर देखा और अपने आप एक सेना दल खड़ा किया, जिसमें चार पलटनें, एक रिसाला और चार तोपें थीं। इस सेना की कवायद, परेड और सजावट युरोपियन ढंग पर की गई और इसके समस्त अफसर भी युरोपियन ही नियुक्त किए गए। समरू अपनी इस फौज को किराए पर चलाने लगा। कभी उसने अपनी फौज एक राजा को दे दी, कभी दूसरे राजा को दे दी। परन्तु सात आठ वर्ष तक वह अधिकतर भरतपुर या जयपुर के राजा से ही वेतन लेता रहा।

---

* फारसी मिफ्ताहुत्तवारीख में लिखा है कि समरू समस्त शस्त्रों अर्थात् तोप, बन्दूक, गोले-गोली और बारूद को, जो नवाब कासिम अली खाँ उसके अधिकार में दे गया था, लेकर आगरे की ओर चलता हुआ।

जाटों के राजा सूर्य्यमल का साहस

पिछले पृष्ठों में अब तक समरू के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, उसमें विशेषकर स्वयं उसके निजी विषय में ही अधिक वर्णन हुआ है। परन्तु जब उसने भरतपुर नरेश की सेवा ग्रहण कर ली, तब उसके उस समय के जीवन का वृत्तान्त जो कुछ प्राप्त होता है, वह उस राज्य के इतिहास में ही अधिक सन्निविष्ट है; इसी लिये अब उसका उल्लेख किया जाता है। इस दृष्टि से यह कदाचित् प्रसङ्गान्तर न समझा जायगा।

जब जाटों का राजा सूर्य्यमल पानीपत की विपदा से अपने मित्र हुलकर की भाँति बचकर चला गया, जिसका वर्णन पहले पृष्ठ ३८ में हुआ है, तब उसने शीघ्र ही वहाँ के मराठे शासक से आगरे के महत्त्वशाली दुर्ग को खाली कराने का प्रयत्न किया; और मेवाड़ देश में अनेक सुदृढ़ स्थान अपने अधिकार में कर लिए। प्रायः इसी समय के लगभग उस बुद्धिमान् और व्यवहार-कुशल राजा ने गाज़ी-उद्दीन के पराजित पक्ष को विसर्जन किया; क्योंकि उसकी नीति की रीति सूर्य्यमल को अति कठोर प्रतीत होती थी। इसी अवसर पर समरू अपने दल बल सहित आकर उससे मिल गया।

सूर्य्यमल को यह सहायता क्या प्राप्त हुई कि वह फूलकर कुप्पा हो गया, जिसके कारण उसकी दूरदर्शिता और कुशल

बुद्धि का ह्रास होने लगा। उसने बादशाह के सामने ऐसी माँग पेश की, जिससे रहे सहे मुग़ल साम्राज्य के छोटे छोटे टुकड़े भी नष्ट हो जायँ। परंतु नजीबउद्दौला ने ऐसी गहन परिस्थिति में बड़ी तत्परता और कार्य-कौशल का परिचय दिया। निकट-वर्त्ती मुसल्मान सरदारों के पास इस्लाम और सल्तनत के सहायतार्थ आने का निमंत्रण भेजकर वह स्वयं मुग़लों की एक छोटी सी, परंतु सुशिक्षित सेना अपनी अध्यक्षता में लेकर रण-क्षेत्र में उतर पड़ा; और उसे ऐसा अवसर भी प्राप्त हो गया कि लड़ाई को मार से ही निर्णय कर दे।

इस संग्राम में वजीर का फर्रुख़नगर और बहादुरगढ़ के बोलोची सरदारों से बड़ा मेल हो गया, जो यमुना के दोनों तटों पर उत्तर को ओर दूर तक, अर्थात् पूर्व में सहारनपुर तक और पश्चिम में हाँसी तक, उन दिनों सर्व शक्तिशाली थे। सूर्य्यमल और मुग़लों के बीच में वैर उत्पन्न होने का यह कारण था कि सूर्य्यमल ने फर्रुखनगर के छोटे ज़िले की फौजदारी (सैनिक अधिकार) माँगी थी। नजीबखाँ ने जाट राजा से शीघ्र ही बिगाड़ करना ठीक नहीं समझा; इसलिये उसने पहले अपना एक दूत सूर्य्यमल के पास यह समझाने के हेतु भेजा कि जिस भूमि का अधिकार वह चाहता है, उसमें वह भूमि सम्मिलित है, जो बिलोची सरदार के अधिकार में है; इसलिये पहले उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाय। मुग़ल दूत और जाटपति के बीच में जो अद्भुत वार्त्ता हुई, वह भी

उल्लेख योग्य है। एलची जब राजा के समीप गया, तब उसने प्रचलित प्रथा के अनुसार अपनी भेंट उपस्थित की, जिसमें एक सुंदर फूलदार छींट का थान भी था, जिसे देखकर गँवार नरेश इतना अधिक मग्न और मोहित हुआ कि तुरंत ही उसने उसके वस्त्र सिलवाने की आज्ञा दे दी। जाट महीपति ने उस समय जो कुछ वार्तालाप किया, वह केवल उस थान के विषय में ही किया; और दूसरी बात करने का दूत को अवसर ही नहीं दिया। इसलिये दूत ने अपने मन में यह सोचकर विदा माँगी कि संधि के संबंध में किसी दूसरे समय चर्चा करूँगा। चलते समय उसने कहा—"ठाकुर साहब, जल्दी में कुछ न कर बैठना। मैं कल तुम से फिर मिलूँगा।" परन्तु मुग्ध नरेश ने उत्तर दिया—"जो तुम्हें ऐसी ही बातचीत करनी है, तो फिर मुझ से मत मिलो।" अप्रसन्न दूत ने जान लिया कि जो यह कहता है, वही करेगा; इसलिये लौटकर नजीबउद्दौला के पास आ गया और भेंट की समस्त कथा उस से वर्णन की। मंत्री ने कहा—"अगर ऐसा मामला है, तो हम अवश्य काफ़िर से लड़ेंगे और उसे दंड देंगे।"

परंतु मुग़लों का प्रधान सेना दल अभी दिल्ली से बाहर निकलने भी न पाया था कि सूर्यमल ने शाहदरे के निकट हिंडन पर, जो दिल्ली से छः मील की दूरी पर ही है, आकर अपने चरण आरोपित किए। यदि उसमें पूर्व काल की सी दक्ष बुद्धि स्थिर रही होती, तो वह तुरंत ही शाही लश्कर

को दिल्ली की शहर-पनाह की दीवारों के अंदर घेरकर बंद कर देता। किंतु जिस स्थान पर वह आया था, वह पुरानी शाही शिकारगाह थी। उसका विशेषतया इस भूमि पर आने में अपने पराक्रम का यह कौतुक दिखाने का प्रयोजन था कि हमने शाही शिकारगाह का शिकार कर लिया। इस कारण उसके साथ केवल उसके शरीररक्षक अनुचर वर्ग ही आए थे। जब वे अचेत होकर टटोल और खोज कर रहे थे, तब मुग़ल रिसाले का एक दस्ता भागता हुआ आ पहुँचा। उसने राजा को पहचान लिया और अचानक जाटों पर टूटकर सब के सब को मार डाला और राजा की लाश उठाकर नजीब-खाँ के पास ले गया। पहले तो वजीर ने इस अकस्मात् सफलता पर विश्वास ही नहीं किया। पर जब उस दूत ने, जो थोड़े समय पहले जाटों के शिविर से लौटकर आया था, लाश के उन कपड़ों को देखकर अनुमोदन किया, जो उस छींट के थान के बने हुए थे जिसको उसने स्वयं भेंट किया था, तब उसे निश्चय हुआ।

इसी बीच में जाट सेना अपने मनमाने झूठे संरक्षण में सूर्य्यमल के पुत्र जवाहरसिंह के नीचे सिकन्द्राबाद से कूच कर रही थी कि उस पर अचानक मुगल सेना के हिरावल या अगले भाग ने छापा मारा जिसके एक सवार के बल्लम पर सूर्य्यमल का कटा सिर झंडे के स्थान में लगा हुआ था इस अमङ्गल दृश्य के देखने से जो हलचल मची, उसने सब

जाटों के पाँव उखाड़ दिए, जिससे वे हटकर अपने देश को आ गए * ।

राजा जवाहरसिंह की विफल चढ़ाई

जाटों को अपने प्रयत्नों में इस प्रकार विफलता होने पर एक और उलटी सूझ सूझी। उन्होंने मल्हारराव होलकर से मित्रता कर ली, जो गुप्त रूप में मुसलमानों से मिला हुआ था। पहले तो उनको बड़ी सफलता प्राप्त हुई और तीन मास तक मंत्री को दिल्ली में उन्होंने घेर रक्खा †; किन्तु होलकर उन्हें सहसा छोड़कर चलता फिरता बना। तब तो उनका घमंड

---

* वह स्त्री जो पीछे समरू की बेगम के नाम से प्रसिद्ध हुई, इसी समय दिल्ली में समरू के हाथ आई, जिसका सविस्तर वृत्तान्त आगे मिलेगा।

† उपर्युक्त वृत्तान्त अँगरेजी पुस्तक "मुगल एम्पायर" के अनुसार है। परन्तु इस घटना का वर्णन मुनशी ज्वालासहाय जी—भरतपुर राज्य के स्थानीय इतिहास-वेत्ता—अपनी पुस्तक "विकाये-राजपूताना" में इस भाँति करते हैं—

"नजीबखाँ ने जिसको नजीबउद्दौला भी कहते थे, याकूब अलीखाँ बिरादर वजीर शाह अब्दाली को मय राजा दिलेरसिंह खेतड़ी के सुलह के वास्ते महाराजा सूरजमल के पास भेजा। वह एक थान छींट मुलतान का लेकर हाजिर हुआ। महाराजा साहब उस तोहफे से इस कदर खुश हुए कि उसी वक्त पोशाक तैय्यार कराई; मगर सुलह मंजूर न की। करम अल्लहखाँ मौमिंद नजीबउद्दौला ने कि याकूबखाँ के साथ आया था, वापस जाकर नवाब नजीबउद्दौला को जंग पर आमादा किया। उसने अपने अज़ीज़ व अकारब मिस्ल अफ्ज़लखाँ व सुल्तानखाँ व जन्नतखाँ वगैरह व नीज़ अफ़सरान फौज शाही मिस्ल सआदतखाँ अफरीदी व सादिक मुहम्मदखाँ बंगश वगैरह को लड़ाई के वास्ते आँसूब दर्याय जमन भेजा। महाराजा सूरजमल साहिब ने

टूट गया और दबकर सन्धि करनी पड़ी और वे अपना सा मुँह लेकर घर लौट आए *।

मय लाला नाहरसिंह साहब उसी तरफ जाकर हिंदन नदी पर मोरचे लगाए। फौज शाही का कयाम शाहदरे में रहा। मनसाराम हिरावल फौज महाराजा साहब का अव्वल मुकाबला हुआ। अफज़ल खाँ उससे शिकस्त खाकर भागा। महाराजा साहब क़लील जमैय्यत के साथ एक तरफ़ मैदान जंग से अलहदा खड़े हुए तमाशा देख रहे थे। बावजूदे कि हकीम अल्लहखाँ व मिर्जा सैफ़अल्लाह ने अर्ज की कि इस मौक़े पर आपको मुख्तसर जमैयत से ठहरना मुनासिब नहीं है, मगर बदस्तूर खड़े रहे। इत्तफ़ाक़न् सेदूखाँ बिलोच पचास सवारों से मफरूर होकर उसी तरफ से लशकर-ए-नजीबउद्दौला को जाता था कि उसके राहियो में से किसी ने महाराजा साहिब को पहचान लिया और सब एक बारगी हमला-आवर हुए। उनके हरबे से महाराजा सूरजमल साहब ने ब मिति पूस वदी १२ संवत् १८२० इस जहान फानी से रहलत फरमाई। इस वाके से दिल शिकस्ता होकर लाला नाहरसिंह साहब ने कुम्हेर को मुराजअत की।"

* विकाये राजपूताना में इस युद्ध का उल्लेख इस रीति से किया गया है—लाला साहब मौसूफ़ (अर्थात् जवाहरसिंह) मय फ़ौज दीग को रवाना हुए और बाद अदाय मरासम मातमी मसनद नशीन रियासत हुए। संवत् १८२१ में महाराजा जवाहरसिंह साहब ने नवाब नजीबउद्दौला से इन्तक़ाम लेने की नीअत से देहली पर अज़ीमत की। चूँकि उस ज़माने में सिखों की फौज की बहादुरी व जवाँमर्दी की बहुत शोहरत थी, महाराजा साहब ने बघेलसिंह व जस्सासिंह व चरसासिंह सिख सरदारान को बजमैय्यत पैंतीस हज़ार सवारों के ब तक़र्रर फी सवार एक रुपिया यूमिया तलब किया, और उन्हीं अय्याम में समरू साहब फरासीस को नौकर रक्खा, और बक़रार दाद मुबलिग़ पाँच लाख रुपए महाराजा मल्हारराव होलकर व दीगर सरदारान दकन को शामिल किया। इस फ़ौज से महाराजा साहब ने देहली का महासरा किया और अर्सह दो साल तक हंगामह-ए-कारज़ार गरम रक्खा।

सन् १७६८ ई० में राजा जवाहरसिंह पुष्कर के स्नान के लिये गए। वहाँ जोधपुर के राज्याधिपति महाराज विजयसिंह से उनकी भेंट हुई। लौटती बार उनका विचार था कि जयपुर राज्य पर आक्रमण करें; किंतु जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह को उनके इस संकल्प की सूचना पहले ही राव राजा प्रतापसिंह* द्वारा मिल गई थी; और इसलिये उन्होंने सत्तर

आखिरकार नवाब नजीबखाँ मल्हारराव होलकर की मारफत महाराजा साहब ने आकर और शमशेर नज़र करके सुलह की।

*महाराव राजा प्रतापसिंह जी राव राजा मुहब्बतसिंह जी के पुत्र थे, जिनका जन्म मिती ज्येष्ठ कृष्ण ३ संवत् १७९७ को हुआ था। कहा जाता है कि महाराव राजा प्रतापसिंह के प्रताप उदय होने के विषय में एक सती ने उनके पूर्व पुरुष राव कल्याणसिंह से पहले ही सं० १७२८ में यह भविष्यवाणी की थी—

दोहा—जाओ बसो अब देश में राव कल्यान जी आप।
आगे कुल में होयँगे प्रतापीक प्रताप॥

राव प्रतापसिंह की जयपुर राज्य में ढाई गाँव की (अर्थात् राजगढ़, माचहड़ी और आधा रामपुर की) मौरूसी जागीर थी। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली लोकोक्ति के अनुसार वे बाल्यावस्था से ही बहुत चतुर और योग्य प्रतीत होते थे; और शीघ्र ही उन्होंने जयपुर राज्य में बड़ा सन्मान और उच्च आसन प्राप्त किया। संवत् १८२२ में ज्योतिषियों ने जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह जी से विनय की कि राव प्रतापसिंह जी माचहड़ीवाले की आँखों में चक्र है; और यह चिह्न प्रतापी और ऐश्वर्यवान् होने का है। निश्चय ही वे आपके राज्य में उपद्रव खड़ा करके स्वाधीन होंगे। यह सुनकर महाराजा माधवसिंह जी दुःखी हुए और राव राजा प्रतापसिंह जी से मन में ईर्ष्या रखने लगे। एक दिन साथ साथ दोनों आखेट करने गए थे। किसी ने महाराज की अनुमति से इस प्रकार गोली चलाई कि वह

हज़ार के लगभग सेना तैयार करके घाटे मानोडह और मँडोली में, जो जयपुर से चौदह कोस पर है, भेज दी थी जिसने अचानक जाट राजा पर आक्रमण किया। राजा जवाहरसिंह की ओर से जो सेना इस समय अपनी रक्षा के निमित्त लड़ी, उसमें समरू भी अपनी चार पल्टनें व आठ तोपें लिए उपस्थित था। इस युद्ध में भरतपुर को जयपुर ने बड़ी हानि

राव राजा महोदय के शरीर से लगती हुई गई, जिससे वे बाल बाल बच गए। तब उन पर वैर की समस्त वार्त्ता खुल गई और वे प्राणों के भय से जयपुर छोड़कर अपनी जागीर को चले गए। थोड़े दिन पीछे वे भरतपुर पहुँचे। भरतपुर नरेश महाराज जवाहरसिंह जी ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया और उनके लिये वेतन नियत करके दहड़ा ग्राम में, जो भरतपुर से सात कोस की दूरी पर पश्चिम में है, ठहराया। जब संवत् १८२४ में महाराज जवाहरसिंह जी ने पुष्कर जाना चाहा, तब उन्होंने बहाना करके विदा माँगी; क्योंकि उनको ज्ञात हो गया था कि पुष्कर जाने की चेष्टा जयपुर राज्य पर आक्रमण करने के हेतु है। यद्यपि महाराज माधवसिंह जी ने उनके प्रति असद् व्यवहार किया था, परन्तु कुल मर्यादा की ओर ध्यान देकर उन्होंने उसका कुछ विचार न किया और सीधे जयपुर पहुँचकर उक्त जयपुर नरेश को सूचित और सचेत किया। इस पर वे बड़े प्रसन्न हुए और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। जब मानोडह के मैदान में जयपुर और भरतपुर की सेनाओं से लड़ाई हुई, तब रावराजा प्रतापसिंह जी ने भी जयपुर के पक्ष में बड़ी वीरता से युद्ध किया। नरूका ठाकुर तो इस संबंध में यहाँ तक कहते हैं कि यदि उनकी सहायता न मिलती, तो जयपुरवालों को पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता, जो ठीक ही है। तदनन्तर राव राजा प्रतापसिंह जी ने अलवर राज्य की नींव डालना प्रारम्भ किया और जयपुर तथा भरतपुर राज्यों की भूमि दबाकर स्वाधीन नरेश हो गए।

पहुँचाई। राजा जवाहरसिंह जान बचाकर अलवर होता हुआ अपनी राजधानी भरतपुर को लौट गया।

इस समय समरू ने राजा जवाहरसिंह का साथ छोड़ दिया और विजयी जयपुराधिपति की सेवा में प्रविष्ट हो गया। परंतु जयपुर में रहते हुए उसे अधिक समय व्यतीत न होने पाया था कि अँगरेज जनरल के जोर देने पर महाराज जयपुर ने उसे जयपुर से विदा कर दिया और वह पुनः भरतपुर में लौट आया।

भरतपुर में राव नवलसिंह के अधीन सेवा

राजा जवाहरसिंह का मिती श्रावण शु० १५ सं० १८२५ को देहांत हो गया था, जिसका संवाद पाकर राव रत्नसिंह दीग में आकर गद्दी पर बैठा। परंतु वह कुछ योग्य मनुष्य नहीं था; उसका समय व्यर्थ के कार्यों में नष्ट होता था। उसको वृन्दावन में एक गुसाईं ने कपट से सं० १८२६ में मार डाला। तदनन्तर राजा जवाहरसिंह का दो वर्ष का दूध-पीता बालक कुम्हेरसिंह राजा हुआ। परंतु भरतपुर राज्य उन दिनों दोनों भ्राता राव नवलसिंह और राव रणजीतसिंह की लड़ाइयों का अखाड़ा बना हुआ था। पहले समरू राव नवल की ओर हुआ। राव रणजीतसिंह ने भी अपनी सहायता के लिये भारी पुरस्कार देकर मराठों और सिखों को बुला लिया। परंतु राव नवलसिंह के एक धावे ने सिखों की बीस हजार फौज को परास्त किया।

संवत् १८२८ में एक करोड़ रुपयों का वचन पाकर रामचंद्र गणेश ज़री टीका पेशवा, तुकोजी होलकर और महादजी सिंधिया की एक लाख सवारों की सेना ने लालसोट और बसोली के मार्ग से भरतपुर पर चढ़ाई की। यह समाचार पाकर राव नवलसिंह भी पचास हजार सवार और भारी तोपखाना समरू और मूसी की अध्यक्षता में और बीस हज़ार नागों की भीड़ लेकर उस स्थान पर शत्रु के संमुख आ डटा। पाँच छः दिन तक निरन्तर युद्ध होता रहा। बहुत से आदमी मारे गए। तदनन्तर राव नवलसिंह ने मराठों के अगुवों से यह कहला भेजा कि तुमको तो रुपए से प्रयोजन है; चाहे हम से लो अथवा राव रणजीतसिंह से। यदि यहाँ से कूच कर जाओगे, तो नियत रुपया तुमको हम मथुरा में दे देंगे। इस पर उन्होंने मथुरा को कूच किया। दानसहाय ने, जो गोवर्धन में स्थित था, मराठों की सेना पर आक्रमण किया। इसमें राव नवलसिंह का कपट समझकर मराठों ने धावा किया। राव नवलसिंह दोपहर तक लड़ाई करने के पश्चात् परास्त होकर भागा और अकेला दीग के दुर्ग में घुस गया। अंत में सत्तर लाख रुपए मराठों को देने ठहरे, जिसके बदले में उस ओर यमुना तट की भूमि का भू-कर उनको दिया गया।

सन् १७६९ ई० में समरू सुदृढ़ महान दुर्ग आगरे का अध्यक्ष नियुक्त हुआ*। आगरे में उस समय केथोलिक मिशन के

* यद्यपि अंगरेज इतिहास-लेखकों ने भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के नाम

अनुयायी देशी ईसाइयों की बड़ी संख्या थी; क्योंकि उसका प्रचार अकबर के दिनों से हो रहा था। समरू ने अपने पास से धन देकर नए सिरे से गिरजा बनवाया। वह पुराना गिरजा अब तक अच्छी दशा में स्थित है, जिसमें प्रति रविवार को देशी ईसाई निरन्तर ईश्वर की उपासना करते हैं। उस गिरजे के अंदर की महराब के ऊपर एक छोटे से पत्थर पर एक शिलालेख लैटिन भाषा में खुदा हुआ है, जिसमें वाल्टर रैनहार्ड का भी नाम है।

कुछ दिनों पीछे भरतपुर के सरदारों ने नवाब नजफखाँ से, जो अब वजीर हो गया था, निवेदन किया कि आप यहाँ आकर राव नवलसिंह से अधिकार छीन लें; और अपने अधिकृत देश में से जितना चाहें, राव रणजीतसिंह को देकर शेष अपने अधिकार में रक्खें। नजफखाँ ने आकर बहुत सी भूमि पर अपना आधिपत्य जमाया और पुनः नई सेना भरती करके चढ़ाई की। राव नवलसिंह ने समरू की अध्यक्षता में छः पल्टनें और तोपखाना मुक़ाबले के लिये भेजा। कोल और जलेसर के बीच में जन-पथ पर लड़ाई हुई। नजफ़खाँ की सेना अनाड़ीपन से पीछे को लौटी और नवाब नजफखाँ की बाँह

समरू के अधिकार में क़िले आगरे का होना लिखा है, परन्तु विकाये राजपूताना के अनुसार वे दोनों राव नवलसिंह के अधीन थे; इसलिये इस सम्बन्ध में इस कारण कि वह स्थानीय इतिहास है, उसके कथन को अन्य लेखकों की अपेक्षा विशेष प्रामाणिक समझा जाता है।

में गोली लगी। घायल होने पर नजफ़खाँ ने क्रोध में आकर सवारों के साथ आक्रमण करके समरू को सेना को परास्त किया। तदनन्तर वादशाह की सेवा में आगरे की सूवेदारी दिए जाने के निमित्त नजफ़खाँ ने अपना प्रार्थनापत्र भेजा। आगरे में वहुत दिनों से वादशाह का कुछ अधिकार न था; इसलिये वहाँ की सूवेदारी देने में मुफ़्त का एहसान था। इसके अतिरिक्त हिसामुद्दीन और अब्दुल्लाखाँ आदि शाही अधिकारियों को, जो नवाव नजफखाँ से मन में द्वेष-भाव रखते थे, यह आशा न थी कि आगरा विजय ही हो जायगा; इसलिये उन्होंने तुरंत स्वीकृति भेज दी। उसका भाग्य उदय हो रहा था। डेढ़ मास लड़ाई करके उसने आगरा खाली करा लिया। इस अवसर पर मिर्ज़ा नजफ़खाँ ने धन का तनिक भी लालच न करके उदारतापूर्वक लोगों को खूव रुपया वाँटा, इस कारण सहस्रों मनुष्य उसके साथ हो गए। आगरे के क़िले में तो उसने अपनी सेना मुग़ल सरदार मुहम्मद वेग हमदानी के अधीन रक्खी और प्रतिज्ञानुसार भरतपुर-राज्य की शेष भूमि पर राव रणजीतसिंह का अधिकार करा दिया; और वह स्वयं रुहेलखंड को चला गया।

इस पराजय से राव नवलसिंह का तनिक भी मन मैला न हुआ, वलिक उसने निर्भय होकर राजधानी दिल्ली पर चढ़ाई की। दस हजार सवारों से सिकंदरावाद को अपने अधिकार में कर लिया और आगे वह फरीदावाद तक वढ़ गया। परंतु

अपने ही सरदारों की ओर से षड्यंत्र होने के भय से उसे लौटना पड़ा। पुनः समरू की शिक्षित सेना और तोपखानों की कुमक अपने साथ लाकर उसने आक्रमण किया। अब मिर्ज़ा नजफ़खाँ वज़ीर रूहेलखंड से आ गया था, जो हरियाने के सरदार नजफ़कुली खाँ * की दस सहस्र से ऊपर सेना की कुमक लेकर मुकाबले को बढ़ा और शत्रु की सेना के पाँव उखाड़ दिए।

राव नवलसिंह और समरू ने भागकर कस्बा होडल में अपने मोरचे लगाए। जब वह भी खाली करा लिया गया, तब वे पीछे हट आए और कोटमन ग्राम में जम गए, जहाँ मिर्ज़ा नजफ़खाँ ने उनको घेरे में ले लिया। पंद्रह दिन के लगभग तो उनके साथ छोटी छोटी लड़ाइयाँ करके छेड़-छाड़ होती रही।

---

* वकाये राजपूताने के लेखक सरदार नजफ़कुलीखाँ के स्थान में राजा हीरासिंह वल्लभगढ़वाले और राव रणजीतसिंह की कुमक होना लिखते हैं। परन्तु मुगल साम्राज्य के संबंध में हम उसकी अपेक्षा मिस्टर कीनी साहब को अधिक प्रामाणिक मानते हैं, जिन्होंने विशेष अनुसन्धान और खोज करके इस विषय में लिखा है।

सरदार नजफकुलीखाँ पहले हिन्दू राठौर राजपूत बीकानेर राज्य का निवासी था। वह मुहम्मदकुलीखाँ के पिता की सेवा में इलाहाबाद को बदल गया, जो मिर्ज़ा नजफखाँ का नातेदार और संरक्षक था। मिर्ज़ा की संगत में रहकर वह मुसलमान हो गया और उसके गुरु ने उसे अपना दत्तक पुत्र भी बना लिया। पीछे वह सदैव मिर्ज़ा के साथ रहा, जिसने उसको बीस लाख की जागीर और सैफ़उद्दौला की उपाधि दी। वज़ीर नजीबउद्दौला के पुत्र जाब्ता खाँ की पुत्री से उसका विवाह हुआ।

तदनंतर राव नवलसिंह वहाँ से भी हटकर दीग के दृढ़ क़िले में आ घुसा। जब मिर्ज़ा ने देखा कि जाटों की ओर से प्रहार नहीं होता, तब वह शत्रु को धोखा देकर बरसाने में खींच लाया, जहाँ डेरे डालकर संग्राम होने लगा।

शाही दल का अग्र भाग नजफ़कुली खाँ की आज्ञा में था; मध्य में प्रधान सेना पर स्वयं मिर्ज़ा नजफ़खाँ की अध्यक्षता थी; और दोनों पार्श्वों पर सिपाहियों की पल्टनें और तोपखाने ऐसे अफसरों के नीचे थे, जिनको अंगरेजों द्वारा बंगाल में शिक्षा मिली थी। पीछे की ओर मुग़लों का रिसाला था। राव नवल-सिंह की ओर से पाँच सहस्र शिक्षित पैदल सैनिकों की प्रबल सेना समरू की आज्ञा में मुकाबले के लिये अग्रसर हुई, जो जाटों की लड़ाइयों की धूल से ढकी और भारी तोपखाने के गोलों की मार से पुष्ट थी। इसका मिर्ज़ा के तोपखाने की ओर से भी वेग के साथ उत्तर दिया जा रहा था। परंतु तो भी उसकी मार से मिर्ज़ा के कई सर्वोत्तम अफसर खेत रहे और वह आप भी घायल हुआ। क्षण भर तक तो हुल्लड़ मचा रहा, किंतु मिर्ज़ा उत्साहपूर्वक "अल्लाह अकबर" का उच्च घोष कर मुग़ल रिसाले को लेकर तुरंत जाटों के ऊपर टूट पड़ा, जो उसके निजी अनुचरों का दल था। नज़फकुलीखाँ शिक्षित पलटन को बड़ी तेज़ी से दौड़ाता हुआ पीछे से अपने साथ ला रहा था। इससे जाटों के छक्के छूट गए और धुर्रे उड़ गए। केवल समरू की पलटनों के हठपूर्वक मुक़ाबला करने

के कारण शेष सेना के मार्ग की रक्षा हो सकी; और जब वह धीमी चाल से दीग को लौटा, तब कुछ दृश्य अनुकूलता का प्रतीत हो सका। विजेताओं के हाथ बहुत सी लूट आई। उन्होंने शीघ्र ही खुले मैदान को जीत लिया और हारी सेना को क़िले में चहुँ ओर से दृढ़तापूर्वक घेरे में ले लिया। किंतु दीग के क़िले में इतनी अधिक रसद की मात्रा थी कि यह कड़ा घेरा बारह मास तक भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। वह क़िला मार्च सन् १७७८ के अंत तक जीता ही न जा सका। जब घिरे हुए जाटों को निकलने का उपाय मिल गया, तब वे ले जाने योग्य वस्तुओं को हाथियों पर लादकर निकटवर्ती कुम्हेर के महल में जा घुसे। राव की शेष सम्पत्ति अर्थात् उसके चाँदी के थाल, बढ़िया और बहुमूल्य नाना प्रकार के अनेक पदार्थ, और उसके संदूक, जिनमें छः लाख रुपए नगद थे, विजेताओं ने ले लिए।

इन सफलताओं के पश्चात् जब वह इस जीती हुई भूमि की व्यवस्था कर रहा था, तब मिर्ज़ा को दरबार से यह समाचार मिला कि ज़ाब्ताखाँ * ने मजीदउद्दौला पर सुगमता से विजय कर सिक्खों को नौकर रख लिया है; और वह अब उनको साथ लेकर राजपाली की ओर कूच करनेवाला है।

---

* यह पूर्व वज़ीर नजीबउद्दौला का पुत्र था और अपने पिता का पद प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के उपाय करता फिरता था।

पुरुषार्थी सचिव तुरंत दिल्ली को लौटा, जहाँ बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत हुआ। इस समय उसके साथ समरू भी था, जिसने अपनी पल्टनों को बरसाने की लड़ाई के पश्चात् शीघ्र ही प्रबल पक्ष की ओर मिला दिया था।

शाही सेवा

भरतपुर राज्य को छोड़कर मिर्ज़ा नजफ़खाँ के साथ चले आने के कारण समरू पर अँगरेज इतिहास-लेखकों ने यह कटाक्ष किया है कि वह सदैव हरी हरी चुग रहा था; जिधर जीत हुई, उधर ही हो गया। उनका यह कथन चाहे सत्य ही हो, परंतु इस बार इसका दूसरा हेतु भी था। मिर्ज़ा नजफ़खाँ, जो बंगाल में शाह आलम के साथ रहा था, वहाँ समरू के पराक्रम के कार्य्यों से परिचित हो गया था, जो उसने नवाब मीरक़ासिम की सेवा में रहकर दिखाए थे। इसके अतिरिक्त अब उसकी पल्टनों की धाक चहुँ ओर बँध गई थी। भरतपुर राज्य की बहुत सी भूमि मिर्जा नजफ़खाँ के हाथों में आ गई थी; इसलिये जब मिर्जा ने समरू को बुलाया, तब वह अपने दल बल सहित उसकी सेवा में उपस्थित हुआ।

भरतपुर से दिल्ली पहुँचने पर वज़ीर ने समरू को ज़ाब्ता-खाँ के साथ युद्ध करने के निमित्त भेजा। समरू की सेना को मुक़ाबले पर आते हुए देखकर ज़ाब्ताखाँ हटकर पहाड़ों में घुस गया। समरू ने सेवालिक की पहाड़ी में दृढ़ गोसगढ़ के दुर्ग को घेरे में ले लिया। जाब्ताखाँ ने अपना बचाव करने में

बड़ी वीरता का परिचय दिया। तिस पर भी वह उस सेना के सम्मुख, जो उससे लड़ने को आई थी, ठहरकर मुकाबला करने में असमर्थ था। इस कारण थोड़े से अनुचरों को अपने साथ लेकर वह भागा और गङ्गा पार करके अवध पहुँचकर उसने शरण ली। वह अपने कुटुंब और कोप को पहले ही पहिरगढ़ में छोड़ आया था। वे सब समरू के हाथ आ गए।

राव नवलसिंह मर गया। राव रणजीतसिंह ने रूहेलों को दीग के क़िले से निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। यह समाचार सुनकर मिर्ज़ा नजफ़खाँ दिल्ली से दीग को आया और चार मास तक लड़ाई लड़कर दीग को विजय किया।

नजफ़खाँ ने आगरे में शाही दरबार किया। उस महोत्सव के अवसर पर केवल भक्तिमान् मुग़लों और ईरानियों का दल ही उसकी सेवा में उपस्थित नहीं था, बल्कि दो ब्रिगेड सेना अर्थात् एक पल्टन समरू की अध्यक्षता में, और एक तोपखाना मेडौक (Medoc) या मूसी को अधीनता में विद्यमान था। उस समय मिर्ज़ा का मुख्य हिन्दुस्तानी सरदार अर्थात् उसका नौ मुसलिम दत्तक पुत्र नज़फकुली खाँ, मुहम्मद वेग हमदानी और उसका भतीजा मिर्ज़ा शफीअ इस दरबार को सुशोभित कर रहे थे।

अँगरेज़ों ने मिर्ज़ा नजफ़खाँ से मित्रता करनी चाही; परन्तु उनकी यह इच्छा इस कारण पूर्ण न हो सकी कि वे

सन्धि की प्रतिज्ञाओं में एक शर्त यह भी रखते थे कि समरू हमें दे दिया जाय। परंतु वजीर ने इसे स्वीकृत नहीं किया।

नवाब नजफ़खाँ ने बादशाह को यह सम्मति दी कि समरू की पल्टनों को नियमानुसार राजकीय सेवा में रख लिया जाय। उसका यह परामर्श स्वीकृत हुआ। समरू की सेना के व्यय के लिये विद्रोही नवाब ज़ाब्ताखाँ के इलाके की सब भूमि जागीर में दी गई, जिसकी वार्षिक आय छः लाख रूपए थी। समरू ने अपना निवास अपनी जागीर के केन्द्र सरधना ग्राम में किया। इस प्रकार सन् १७७२ ई० में उसकी नींव जमी, जो पीछे से राज्य सरधना विख्यात हुआ। इस राज्य की चौड़ाई गङ्गा से जमुना तक थी और लम्बाई मुज़फ्फरनगर के परे से लेकर अलीगढ़ के पड़ोस तक थी *।

मंत्री मिर्ज़ा नजफ़खाँ ने अपने मन में यह ठान लिया कि जो प्रदेश राजकीय अधिकार से बाहर निकल गए हैं, उनमें से जितने

---

* हकीम मुहम्मद उमरजी फसीह के पास मैंने उर्दू में यह लिखा देखा था कि जब समरू भरतपुर राज्य में राव नवलसिंह की सेवा में था, उस वक्त वह राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था। राव नवलसिंह ने समरू को झज्झर, झादसा आदि अनेक परगने दिए थे, जिनको पीछे नवाब नजफखाँ ने, जब समरू भरतपुर से आकर उसके अधीन हो गया था, उसके नाम बहाल रक्खा और जाब्ताखाँ के इलाके की निकटवर्ती भूमि और दी। कदाचित् यह विस्तार उस राज्य का है, जिसकी सीमा ऊपर दी गई है। उसी लिखावट में यह भी वर्णन है कि समरू को बादशाह ने जाब्ताखाँ का इलाका विजय करने पर जफरयाबखाँ की उपाधि के सहित यह जागीर बख्शी थी।

अधिक हो सकें, पुनः विजय किए जायँ। इस कारण समरू की पल्टनों को दीर्घकाल तक विश्राम में नहीं रहने दिया गया। उनकी नौकरी भरतपुर राज्य के विरुद्ध बोली गई, जिसकी सेवा में वे पहले रह चुकी थीं। समरू ने बरसाने की दृढ़ और कठोर लड़ाई लड़कर भरतपुर के राजा को पराधीन कर दिया। इसके उपरान्त मिर्ज़ा नजफ़खाँ ने मराठों से उसकी रक्षा करने को उसे आगरा भेजा, जहाँ का वह मुलकी और फौजी शासक नियत हुआ। इस नवीन सेवा को उसने अत्यन्त प्रशंसनीय निपुणता और साहस के साथ सम्पन्न किया।

मृत्यु

इस क्षणिक, अनित्य और नाशवान् जगत में जो वस्तु उत्पन्न हुई, वह अवश्य नाश को प्राप्त हुई और होगी, यह ईश्वर का चिरस्थायी और अभंग नियम है। इस संसार का प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक कार्य किसी न किसी रूप में स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि मैं परिवर्त्तशील हूँ—मैं नाशवान् हूँ। बिलकुल सत्य और संशय रहित है। एक विद्वान का कथन है—

"There is nothing more certain than the uncertainty of all Sublunary things."

अर्थात्, समस्त सांसारिक वस्तुओं के अनिश्चित होने की अपेक्षा और अधिक कोई बात निश्चित नहीं है। इसलिये सब को, जो इस जगत में पैदा हुए हैं, एक न एक दिन मृत्यु का कलेवा बनना पड़ेगा। कहा है—

"जो आया सो जायगा क्या राजा क्या रंक।"

अंत में तारीख ४ मई सन् १७७८ ई० को जब समरू आगरे में बादशाह की ओर से वहाँ का शासन कर रहा था, मृत्यु ने उसको ग्रस लिया। उसको आगरे में पुराने कैथोलिक ईसाई कब्रिस्तान में गाड़ा गया *। समरू के परिवार की

---

* ब्रिटिश जाति को समरू के प्रति कितनी अधिक घृणा और ईर्ष्या थी, इसका परिचय इस बात से मिलता है कि अँगरेज इतिहासवेत्ताओं ने जहाँ कहीं उसके संबंध में कुछ लिखा है, उसमें उन्होंने निरन्तर कटु और कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता मिस्टर थौमस विलियम बेल साहब ने उसकी मृत्यु के विषय में लिखा है—

He died or was murdered, in the year A. D. 1778. A. H. 1192 at Agra where his tomb is to be seen in the Roman Catholic burial ground with a Persian inscription in verses mentioning the year of his death and his name.

अर्थात् वह सन् १७७८ ईसवी तदनुसार सन् ११९२ हिजरी में आगरे में मरा या मारा गया, जहाँ उसकी कबर रोमन कैथोलिक कबरस्तान में दृष्टिगोचर होती है, जिस पर एक फारसी कुतबा शेरों में लिखा हुआ है और जिसमें कि उसकी मृत्यु के वर्ष और उसके नाम का वर्णन है"। इसके अतिरिक्त समरू के वध किए जाने का उल्लेख देखने में नहीं आया। वह फारसी कुतबा इस प्रकार है—

فوت شمرو صاحب آں سرکردہ نیکو سرشت*
سیلئہ آفاق را در آتش حیرت برشت*
سال تاریخش ز تشریف مسیحا بر فلک*
باد صبح گفت از "بوے گل باغ بہشت"*
سنہ ۱۷۷۸ع

सुन्दर समाधि अठ-पहलू बनी हुई है, जिसके ऊपर एक छोटा सा गुंबज है, जो कँगूरों से ऊपर निकल गया है। इसके साथ चिकने पत्थर का पानी से बचाने का एक ऊपरी द्वार

अर्थ—उस पुण्यात्मा नायक समरू साहब की मृत्यु ने संसार की छाती को पश्चात्ताप की अग्नि से भून डाला। मसीह के आकाश पर पधारने से अर्थात् सन् ईसवी के हिसाब से उसके मरने के वर्ष की तारीख इस फारसी वाक्य के अक्षरों के अंकों से, जिनको प्रातःकाल की वायु ने कथन किया है, अर्थात् "بوے گل باغ بہشت" बूए गुल बागे बिहिश्त—वैकुंठ के बाग के गुलाब की महक" से अबजद की रीति से सन् १७७८ के अंक निकलते हैं।

बे	ب	٢	२
वाव	و	٦	६
ये	ے	١٠	१०
गाफ़	گ	٢٠	२०
लाम	ل	٣٠	३०
बे	ب	٢	२
अलिफ	ا	١	१
गैन	غ	١٠٠٠	१०००
बे	ب	٢	२
हे	٥	٥	५
शीन	ش	٣٠٠	३००
ते	ت	٤٠٠	४००
		١٧٧٨	१७७८

फारसी की मिफ्ताह उत्तवारीख में समरू की मृत्यु के विषय में मिस्टर थामस बेल से भी अधिक स्पष्ट यह लिखा है—

"از ترغیب زوجہ خود کشتہ شد"

अर्थात्—"समरू का वध उसकी स्त्री के षड्यंत्र से हुआ।"

यदि वास्तव में यह कथन सत्य है, तो अपने पति की हत्या करानेवाली

कुस्तुंतुनिया के सोते के समान है। उस पर जो लेख है, वह पुर्तगाली भाषा में है, जिससे विशेषतः यह सिद्ध होता है कि उस के बनने के समय कोई फरांसीस वा अंगरेज़ आगरे में उपस्थित न था। लेख का आशय यह है—"यहाँ वाल्टर रैनहार्ड दफन है, जो तारीख ४ मई सन् १७७८ ई० को मरा था।" फ़ारसी में भी उस पर कुब्वा अंकित है।

आगरे के पेडरैटोला (Padretola) अर्थात् ईसाई धार्मिक इतिहास के मूल में समरू की समाधि का वर्णन है। उसमें कहा है कि यह एशिया के अत्यन्त प्राचीन ईसाई क़वरिस्तानों में उस भूमि के टुकड़े पर वना हुआ है, जो न्यालयों के पिछवाड़े स्थित है; और जो मूल रक्वा नि कटवर्ती क़स्वा लशकरपुर का है, उसके अन्तर्गत है। यह पृथवी रोमन केथलिक मिशन को सम्राट् अकवर अथवा उसके पुत्र और उत्तराधिकारी के शासन-काल के प्रारंभ में प्रदत्त हुई थी। इस कवरिस्तान में बहुत सी क़वरें दो सौ वर्षों से ऊपर की पुरानी हैं, जिन पर आरमेनी और पुर्तगाली भाषाओं में लेख लिखे हुए हैं। वायु और धर्ती के अधिक सूखेपन के कारण साधारण देख भाल करने से ही यह दीर्घ काल तक स्थिर रह सकता है।

और उसकी सेना तथा सम्पति को उसको कनिष्ट भार्या जेबुल्निसा हुई, जिसका सविस्तर चरित्र आगे दिया जायगा। क्योंकि समरू की बड़ी स्त्री अर्थात् जफरयाब-खाँ को माता तो पागल हो गई थी। किन्तु इस बात की स्लिमेन साहब और जार्ज थामस आदि समकालीन स्पष्टवादी इतिहास-लेखक पुष्टि नहीं करते।

चरित्र विषयक विचार

समरू के चरित्र और स्वभाव के विषय में विविध लेखकों ने विविध अच्छे और बुरे विचार प्रकट किए हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं।

पादरी डब्लू कीगन साहब की समझ में "समरू एक वीर, कर्कश, सैनिक, पुरुषार्थी पुरुष था, जिसको दिखावे से घृणा थी। उसकी प्रकृति सादा पहनने की और अपने सिपाहियों में वे रोक टोक आने जाने और उनसे सदैव मिलने जुलने की थी। उस में बहुत से ऐसे गुण भी थे, जिनसे सिपाही अपने नायकों के भक्त बन जाते हैं। उसका शासन दीर्घ काल तक आगरे के निवासियों को स्मरण रहा; क्योंकि उसके वक्त वे सब ओर से लड़ाई झगड़ों से घिरे हुए थे; परन्तु उनको उसके दृढ़ प्रबन्ध से शांति और सुख प्राप्त हुआ था।"

अँगरेजी पुस्तक मुग़ल एम्पायर के ग्रंथकार मिस्टर हेनरी जार्ज कीनी साहब ने समरू के संबंध में केवल अपनी ही सम्मति नहीं प्रकट की है, वरन् इस विषय में और सज्जनों के मत का भी उल्लेख इस भाँति किया है—

"वह एक ऐसा मनुष्य प्रतीत होता है, जिसमें कोई सद्गुण न था। कठोर और लहू का प्यासा, अपने स्वामी के निमित्त भक्ति या प्रेम का जिसमें लेश नहीं"। फ्री लैन्स (Free Lance)*

* उन शूर वीरों और शस्त्रधारियों की घूमनेवाली टोलियों के मनुष्य फ्री लैन्स के नाम से प्रसिद्ध थे, जो धार्मिक युद्ध के पश्चात् युरोप में इधर उधर जी चाहे

का यही एक आवश्यक लक्षण है। समरू का यह चरित्र स्किनर साहब के जीवन चरित्र से लिया गया है; परंतु उसमें इतना और लिखा है कि वह उन गुणों से शून्य न था, जिनसे सिपाही अपने अफसरों के भक्त हो जाते हैं। परंतु इसमें भी संदेह होता है, जब हम स्वर्गवासी सर डब्लू० स्लीमेन साहब के कथन में (जो दन्तकथा के विषय में देशियों के बीच में जाने आने के कारण एक उत्कृष्ट प्रमाण हैं) यह उल्लेख पाते हैं कि उसको सदैव अपने सिपाहियों के हाथों पकड़ धकड़ में, धमकी फट्कार सहते, यंत्रणा भोगते और भयभीत होते देखा गया *।

जिसके हाथ अपनी सेवा बेचते फिरते थे।

समरू और समरू की बेगम के विषय में हमारी दृष्टि में अब तक जो लेख आए हैं, उनमें उनके कुटुम्ब का वृत्तांत पति के विवरण में न देकर लेखकों ने उसे पत्नी की जीवनी में दिया है। अतः इस पुस्तक में हम भी इस नियम का भंग करने की चेष्टा नहीं करते; वरन् समरू परिवार का वर्णन आगे चल कर करेंगे, जहाँ समरू की बेगम का जीवन चरित्र लिखेंगे।

* पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी भी समरू की पल्टनों के सैनिकों के विषय में किसी आधार पर यह बात लिखते हैं—'इन बटालियनों के अफसर युरोपियन थे; किंतु भले मानस युरोपियन समरू जैसे आदमी के अधीन रहना पसंद न करते थे। इसलिये समरू को बहुत ही निम्न श्रेणी के, अपढ़ और असभ्य युरोपियन मिला करते थे। इन अफसरों ने उसकी सेना का शासन बिगाड़ रक्खा था। सिपाही बड़े उच्छृंखल और उद्दंड हो गए थे। उनको समय पर तनख्वाह नहीं मिलती थी। वेतन वसूल करने के लिये उन्हें अपने अफसर को तंग करना पड़ता था। कभी कभी वे उसे कैद कर लेते थे; और जब तक वह अपना गड़ा हुआ धन न निकालता या कर्ज लेकर उनका वेतन न चुकाता, तब तक उसे न छोड़ते थे। यदि अफसर बदमाश

वही विद्वान् लिखता है कि समरू अपने सैनिकों को अति सुरक्षित मार्ग से रणक्षेत्र में प्रवेश करने और एक बार छोड़ देने के अनंतर चतुर्भुज रूप में पैर जमाकर खड़े होने की शिक्षा दिया करता था। उसे इसकी परवाह न थी कि उनकी गोली शत्रु तक पहुँचेगी या नहीं। इसके बाद वह लड़ाई का ढंग देखता। यदि शत्रु की विजय होती, तो वह अपनी संपूर्ण सेना की शक्ति शत्रु के हाथ वेच देता। और यदि उसकी विजय होती, जिसके पक्ष में वह लड़ने आया था, तो वह शत्रु का माल असबाब लूटने में बड़ी सरगर्मी दिखलाता।

ओरिएंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी के लेखक मिस्टर थामस विलियम बेल साहब के मतानुसार समरू में कुछ सैनिक योग्यता तो थी, परंतु वह छली, कपटी और लहू के प्यासे होने की प्रकृति रखने के कारण सर्वथा कलुषित था।

इस प्रकार समरू का जीवन चरित्र समाप्त हुआ, जिसने अपने पुरुषार्थ, पराक्रम, तत्परता और समयानुसार कार्य कर के भारत के इतिहास में नाम पाया। अवश्य ही उसमें दोष भी थे, परंतु दोष किस मनुष्य में नहीं होते! प्रत्युत् उसके गुणों की ओर दृष्टि देनी चाहिए, जिसने परदेस में आकर अपने साहस तथा परिश्रम से एक लम्बा चौड़ा राज्य स्थापित कर दिया।

होता, और उन्हें रुपए की अधिक आवश्यकता होती, तो वे उसे नंगा करके गरम तोप के ऊपर जबरदस्ती बैठा देते।"

(३) समरू की बेगम ज़ेबउलूनिसा

स्त्री वर्ग का महत्त्व संसार में भली भाँति विदित है। वे रूप-लावण्य, मधुरता, नम्रता, कोमलता आदि अनेक उत्कृष्ट गुणों की खानि हैं। वे इस दुःखमय जगत में हर्ष और आनन्द प्रदान करनेवाली और मनुष्य को सुख तथा प्रसन्नता देनेवाली हैं। वे उन उत्तम लक्षणों और गुणों से भी सर्वथा वंचित नहीं हैं, जिनके प्राप्त करने और प्रयोग में लाने के कारण पुरुष को इतना गौरव और सम्मान प्राप्त है। प्रयाः प्रत्येक देश में नारियाँ विद्या, साहस, धैर्य्य, वीरता, शासन-योग्यता आदि गुणों के लिये सदा से विख्यात होती आई हैं और अब भी विख्यात हैं। अपने पवित्र भारत देश के प्राचीन इतिहास को ही देखिए। उससे पता चलता है कि यहाँ की वीर रमणियों ने कैसे अनुपम और अतुलित साहस तथा पराक्रम का परिचय दिया था। कौन नहीं जानता कि जब सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी ने महारानी पद्मावती के प्रेम में अन्धे होकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की और वीर राजपूतों पर अपना वश न चलता देखकर कपटपूर्ण उपाय द्वारा महाराणा भीमसिंह को कैद कर लिया, तब उस अति प्रवीण और चतुर महारानी ने उस कुटिल कुचाली के साथ वैसी ही कपटमय चाल चली और महाराणा को कैद से छुड़ाकर बादशाह को

नीचा दिखाया। ताराबाई भी वीरता और योग्यता के विचार से कुछ कम नहीं हुई। जब उसके पिता सूर्य्यसेन का टोडा राज्य, बादशाह अलाउद्दीन ने छीनकर अपने अधिकार में कर लिया, तब उस निपुण राजपूत कन्या ने वही उपाय किया, जो सूर्य्यसेन का कदाचित् कोई पुत्र होकर करता। उसने अपने बहुमूल्य रत्नजटित आभूषणों और रंग बिरंगे रेशमी वस्त्रों का परित्याग करके पुरुषों की भाँति पुरुषार्थ का परिचय दिया। उसने शस्त्र विद्या और घोड़े की सवारी सीखी। फिर उसने रण-कुशल और उत्साही राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज से यह प्रतिज्ञा करके विवाह किया कि तुम मेरे पिता का राज्य बादशाह के फंदे से निकलवा दो। मरदाना बाना पहन कर और घोड़े पर सवार होकर ताराबाई स्वयं संग्राम में अपने पति के साथ गई। और यह सब उसी के परिश्रम तथा पराक्रम का फल था कि उसके पिता की राजधानी टोडा पुनः उसके पिता को प्राप्त हुई।

जब प्रसिद्ध बादशाह अकबर ने विशाल सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब जयमल और सोलह वर्ष के बालक पुत्तू घोर लड़ाई लड़कर और अपना नाम चिरस्मरणीय करके इस असार संसार से चले गए। उस समय राजकुमार पुत्तू की माता कर्णदेवी, स्त्री कमलावती और बहन कर्णवती ने मुग़ल सेना पर निरंतर गोलियों की जो बाढ़ छोड़ी थी, उसे देखकर स्वयं अकबर भी दंग रह गया था।

प्रातःस्मरणीय नारीभूषण महारानी अहिल्याबाई का राज्य तो राम-राज्य था। वह आदर्श हिंदू महारानी थी, जिसके सुप्रबंध, उदारता, सुरक्षणता, उच्च धार्मिक भाव, प्रजा-पालन, सरल जीवन, अनंत पुण्य आदि गुण सर्वथा प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं।

भारतीय इतिहास के पृष्ठ केवल आर्य्य महिलाओं के वृत्तांत से ही प्रकाशमान् नहीं हैं, वरन् मुसलमान बेगमों की कीर्ति भी उनको इसी प्रकार प्रदीप्त करती है।

नूरजहाँ बेगम जैसी रूपवती और सुंदर स्त्री और बादशाह जहाँगीर की प्रणयिनी थी, वैसी ही वह बुद्धिमती और पराक्रमशालिनी भी थी। उसने एक बार अपने कौशल से अपने पति को शत्रु के फंदे से छुड़ाया था। जब उसने गोली से सिंह को मारा, तब तत्काल कवि ने उसकी इस प्रकार प्रशंसा की—

نور جہان گرچہ بظاہر زن است—

درصف مردان زن شیر افگن است—

अर्थात्—यद्यपि नूरजहाँ देखने में स्त्री है, तथापि पुरुषों की पंक्ति में वह स्त्री शेर को पछाड़नेवाली है *।

अहमदनगर के नव्वाब अली आदिल शाह की प्रसिद्ध बेगम चाँद बीबी भी अति सुंदरी होने के अतिरिक्त सर्वगुण सम्पन्न थी। सवारी, युद्ध और शिकार करना बहुत अच्छा

* इसका दूसरा अर्थ "शेर अफगन की स्त्री" भी है; क्योंकि नूरजहाँ का पहला पति शेर अफगन खाँ था।

जानती थी। अरबी, फारसी और तुर्की बोलियों से, जो उसकी सेना में सिपाही बोलते थे, वह परिचित थी। कनारी और मराठी भाषाओं का भी उसे ज्ञान था। वीणा बजाने और नाना प्रकार के गीत गाने का उसे अभ्यास था। उसने रणस्थल में शाही सेना के छक्के छुड़ा दिए और ऐसी विचित्र वीरता और विलक्षण निपुणता दिखलाई, जिसे देख कर लोग उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसी भाँति और भी बहुत सी स्त्रियों के उदाहरण हैं, जिनकी ज्वलन्त कीर्ति पर भारत भूमि उचित रीति से गर्व कर सकती है।

आगे जिस नारी का वर्णन किया जायगा, वह भी एक ऐसी ही रूपवती, चतुरा, नीतिज्ञा और सुशासिका अधिकारिणी हुई है, जिसने मुगल अधःपतन के समय में, जब कि चारों ओर घोर क्रान्ति और कोलाहल मचा हुआ था, अपने पति की सेना और राज्य को स्थिर रक्खा और ऐसी अपूर्व दक्षता तथा निपुणता दिखाई कि जिससे भारत के इतिहास में उसका नाम भी विख्यात हो गया। उस स्त्री का नाम जेबउल्निसा जॉना नोबिलिस है, जिसको सर्व साधारण समरू की बेगम या समरू बेगम के नाम से पुकारते थे।

इस समय में जब कि देश की स्त्रियों में जाग्रति के चिह्न उत्पन्न हो रहे हैं, बेगम समरू का जीवन चरित्र हिन्दी में पुस्तकाकार संग्रह किया जाना अनुपयुक्त न होगा। इस

पुस्तक में उसके गुणों के वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है।

पैतृक-गृह

यह प्रसिद्ध स्त्री अरब के लतीफ अलीखाँ* नामक एक मुसलमान की पुत्री थी, जो एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। लतीफ अलीखाँ ने अपना निवास कस्बा कुताना में (जो मेरठ से तीस मील की दूरी पर उत्तर पश्चिम की ओर है) स्थिर किया था। बेगम का जन्म सन् १७५० ई० के लगभग हुआ था। जब उसकी अवस्था छः वर्ष की हुई, तब उसके पिता लतीफ अली खाँ का देहान्त हो गया। पीछे उसके बड़े भाई ने, जो विमाता से पैदा हुआ था, उसकी माता को छोड़ दिया और उसको तंग करने लगा; इसलिये वह कुताने से अपनी कन्या सहित दिल्ली चली गई। दिल्ली में जब समरू भरतपुर के महा-

---

* पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने बेगम के पिता का नाम असदखाँ लिखा है। लाला चिरंजीलाल नायब रजिस्ट्रार कानूँगो तहसील बुढ़ाना, जिला मुजफ्फरनगर ने स्थानीय अनुसन्धान के आधार पर अपने पत्र में लिखा है कि बेगम मुगल खानदान से थी। किन्तु ऐतिहासिक ग्रंथों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। यह भी ठीक तरह से पता नहीं चलता कि बेगम का बाल्यावस्था में क्या नाम था। यद्यपि अनेक पोथियों में उसका नाम जेबउलनिसा लिखा है और आज्ञापत्रों पर भी फारसी में इसी नाम के उसके हस्ताक्षर होते थे, परन्तु यह भी निश्चित है कि इस बेगम को बादशाह शाह आलम ने सन् १७८८ ई० में गोकुलगढ़ के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पीछे प्रसन्नतापूर्वक यह उपाधि प्रदान की, जिसका वर्णन आगे उस प्रसंग में होगा।

राजा के साथ घेरा डाले पड़ा हुआ था, यह युवती उसको प्राप्त हुई, जिसको कुछ समय तक तो उसने वैसे ही अपने पास रखा; और तदनन्तर उसके साथ उस प्रकार विवाह कर लिया, जिस प्रकार मुसलमानी स्त्री का किसी विधर्मी के साथ होता है *।

आकृति और पति-सेवा

बेगम का कद छोटा बूटा सा था, परन्तु शरीर भरा हुआ था। रंग रूप गोरा चिट्टा और सुन्दर था। उसकी आँखें बड़ी कटीली और चमकीली थीं; मुख ललित और रूपवान् था। वह फारसी भाषा बहुत शुद्धतापूर्वक धड़ाके से बोलती थी और लिखती भी थी। उसकी बोल चाल मनभावनी और सुहावनी थी।

अपने विवाह से लेकर अपने पति समरू के मरने पर्यन्त बेगम सदैव उसके साथ उसके भ्रमण और समस्त लड़ाइयों में उपस्थित रही। खेद है कि उसको कोई बालक नहीं उत्पन्न

---

* बेगम के जन्म, दिल्ली आने और विवाह होने के विषय में भिन्न भिन्न इतिहास-वेत्ताओं के भिन्न भिन्न मत हैं। मुग़ल एम्पायर नामक अँगरेज़ी पुस्तक में उसका जन्म सन् १७५३ ई० में होना और दिल्ली को सन् १७६० ई० में जाना लिखा है। परन्तु दूसरी अँगरेज़ी पुस्तक "सर्धना और उसकी बेगम" नामक में जन्म का वर्ष सन् १७५० ई० और विवाह सन् १७६७ ई० में होना लिखा है। एक अन्य उर्दू लेख से सन् १७७० ई० में बेगम का कुताना से दिल्ली को प्रस्थान करना प्रकट होता है। ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता ने बेगम को ही रण्डी कहा है।

हुआ। परन्तु समरू का एक पुत्र ज़फ़रयाब खाँ नाम का दूसरी मुसलमानी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। पीछे वह स्त्री पागल हो गई और उसी दशा में सरधने में सन् १७८८ ई० में मर गई।

समरू की सपात का उतराधिकार और रोमन कैथोलिक धर्म-ग्रहण

सन् १७७८ में जब समरू की मृत्यु हुई, तब उसका पुत्र ज़फ़रयाब खाँ अबोध बालक था। अमीर उल् उमरा नवाब ज़फ़रखाँ ने बेगम समरू की असाधारण योग्यता देखकर, जिसने अपने मृतक पति की गोरी और काली सेना को बड़ी तत्परता और सावधानी के साथ सँभाल लिया था और जिसका समस्त प्रबन्ध वह अति साहसपूर्वक स्वयं करने लगी थी, उसको अपने पति की उत्तराधिकारिणी मान लिया, जो सर्वथा उचित ही हुआ।

समरू की मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात् न जाने किस प्रभाव अथवा कारण से तारीख ७ मई सन् १७८१ ई० को पादरी ग्रीगोरिओ साहब (Revd Fr. Gregario) द्वारा, जो एक कारमेलायट * (Cormellite) भिक्षु थे, बेगम ने रोमन कैथो-

---

* कारमेलायट ईसाइयों का वह सम्प्रदाय है जो प्रभु ईसा की माता बीबी मरियम के उपासकों के लिये शाम देश के कारमेल पर्वत के नाम से सन् ११५६ ई० मे स्थापित हुआ और सन् १२४७ ई० में भिक्षुओं में परिणत हुआ। वे भूरा रूप धारण करते हैं और श्वेत कफनी तथा कन्धों पर अँगोछा रखते हैं। इस कारण लोग विशेषतः उन्हें श्वेत साधु भी कहते हैं।

लिक सम्प्रदाय का ईसाई मत आगरे में धारण करके अपना नाम जोना (Joanna अथवा Johnna) रक्खा*। इसी अवसर पर समरू के पुत्र ज़फ़रयाव खाँ ने भी बपतिस्मा लिया और उसका नाम वाल्टर वालथज्ज़र रेनहर्ड (Walter (Balthazzar Keinhard) पड़ा।

जनरल पाउली

In the world's broad field of battle,
In the bivouac of life
Be not like dumb, driven cattle,
Be a hero in the strife.

अर्थात्—जग की विस्तृत रणस्थली में
जीवन के झगड़ों के बीच।
नायक बनकर करो काम सब
पशुओं के से बनो न नीच॥

बेगम समरू अबला नारी होने पर भी बहुत मनचली

---

* स्लीमेन साहब की पुस्तक 'भ्रमण और स्मृति' (Sleeman's "Rambles and Recollections" vol. II.) के अनुसार ईसाई होने के समय बेगम का वय ४० वर्ष के लगभग था। उस वक्त उसकी सेना में सिपाहियों की पाँच पलटनें, लगभग ३०० के गोरे अफसर और तोपची, ४० जोड़ी तोपों सहित और मुगलों का एक रिसाला था। उसने सरधने में ईसाई मिशन की स्थापना की, जिसने शनैः शनैः बढ़कर मठ (Convent), बड़ा गिर्जा (Cathedral) और महा विद्यालय (College) का रूप धारण किया। तब से सहस्रों गोरे और काले ईसाई सरधने में अब तक निरन्तर रहते चले आते हैं।

श्रौर जोड़ तोड़ लड़ानेवाली शासिका थी। उसकी दृष्टि केवल अपनी सेना या अपने राज्य की व्यवस्था करने तक ही परिमित नहीं थी, प्रत्युत् उससे परे वह बड़ी दूर दूर तक पहुँचती थी। वह सदैव निकटवर्ती राजाश्रों श्रौर नवाबों की चाल ढाल निरखती परखती रहती थी श्रौर मुग़ल साम्राज्य के कार्यों श्रौर उसके परिवर्तनों पर, जिनका उसके राज्य श्रौर अधिकार पर गहरा प्रभाव पड़ता था, श्रौर भी विशेष ध्यान रखती थी। उसका ससैन्य दूत राजधानी दिल्ली में रहा करता था श्रौर अवसर पड़ने पर राजकीय कामों में हस्तक्षेप भी करता था।

तारीख २६ अप्रैल सन् १७८२ ई० को जब मुगल सल्तनत की ढाल, शूर वीर, परम विचारशील श्रौर राजनीति-विशारद अमीर उल्उमरा मिर्ज़ा नजफ़खाँ की मृत्यु हो गई, तब उसके पद की प्राप्ति के हेतु उसके नातेदार मिर्ज़ा शफी खाँ श्रौर अफरासियाब खाँ के बीच में झगड़ा पैदा हुआ। सब प्रकार विद्वान् श्रौर बुद्धिमान् होने पर भी बादशाह शाह आलम मोम की नाक श्रौर बेपैंदे की हाँडी की भाँति बना हुआ था। जो उसे जिधर को खींचता था, उधर ही को वह खिच जाता था। कभी वह मिर्ज़ा शफी खाँ के पक्ष का समर्थन करता था, तो कभी अफरासियाब खाँ को विज़ारत की खिलअत से सुशोभित करता था। इस कारण झगड़ा बढ़ता ही जाता था श्रौर उसका अंत नहीं होने पाता था।

इसी खींचातानी में मिर्ज़ा शफी ने आकर अफरासियाव खाँ के मित्रों और सहायकों को घेर लिया और अवदुल अहिद खाँ को तारीख ११ सितम्वर १७८२ ई० और नज़फ कुली खाँ को उसके दूसरे दिन पकड़कर हवालात में क़ैद कर दिया। यद्यपि अफ़रासियाव खाँ दिल्ली से चला गया था, और उसके मुख्य मुख्य सरदार पकड़े गए थे, तथापि उसके अनेक हितचिन्तक दरवार में विद्यमान थे। उन्होंने कह सुनकर पावली साहव (Mr. Paoli) को, जो उस अवसर पर दिल्ली में वेग़म समरू की सेना का सेनानी था, और लताफत खाँ को, जो अवध के नवाव की शाही सेवा के लिये दिल्ली में रहनेवाली फौज का अध्यक्ष था, अपने पक्ष में कर लिया। मिर्ज़ा शफी ने यह निवेदन किया कि पावली साहव और लताफत खाँ को सन्धि करने के सम्वन्ध में अधिकार सौंपकर मेरे पास भेज दिया जाय। उसकी यह प्रार्थना स्वीकृत हुई। ये दोनों दूत वनकर गए, परन्तु फिर लौटकर न आए। पावली साहव की हत्या हुई और अवध के सेनापति को अन्धा करके क़ैद में डाल दिया गया।

ग़ुलाम क़ादिर के छक्के छुड़ाना

Heaven helps those who help themselves.

अर्थात्—कुछ कर लो कि उम्र बे वफ़ा है।
हिम्मत का हिमायती खुदा है॥

परमेश्वर परमात्मा सत्याधार है। इसलिये उसकी रचना अर्थात् इस जगत की भी प्रत्येक वस्तु, क्या बड़ी से बड़ी और क्या छोटी से छोटी, सत्य ही का उपदेश करती है। कपट, या छल-प्रपंच का दिव्य ईश्वरीय सृष्टि में कहीं नाम निशान नहीं है। इन दोषों का ग्रहण करना और उन्हें अपना अवलम्ब बनाना मिथ्या कल्पना और माया है। जो कोई इस माया का सहारा लेता है, वह सत्यरूप जगदीश से सर्वथा विमुख हो जाता है। झूठे का कहीं ठिकाना नहीं है। यदि कोई प्रपंची मायावी कुछ सफलता भी प्राप्त कर ले, तो वास्तविक और सच्चे अर्थ में वह सफलता सफलता कहलाने के योग्य नहीं। और यदि कोई भोला भाला मनुष्य उसे भूल से ऐसा समझ ले, तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह अति क्षणिक और अस्थायी है। संसार की लम्बी दौड़ में वह स्थिर नहीं रह सकती; ढोल की पोल अन्त में खुल ही जाती है।

यही बात ग़ुलाम क़ादिर को हुई। नजीबउद्दौला (जिसका वर्णन पिछले खण्डों में हो चुका है।) अमीर उल् उमरा अथवा प्रधान मंत्री का कार्य बड़ी योग्यता से अपने समय में चलाया था। उसकी मृत्यु के पीछे इस पद की प्राप्ति के निमित्त उसका पुत्र ज़ाबताखाँ सदा लड़ता और झगड़ता रहा, परन्तु कृत्कार्य न हो सका। ग़ुलाम क़ादिर ज़ाबता खाँ का पुत्र था।

सन् १७८७ ई० की वर्षा ऋतु के अंत में ग़ुलाम क़ादिर

दिल्ली के समीप पहुँच गया और यमुना नदी पर शाहदरे की ओर उसने अपना शिविर खड़ा किया। उसके इस प्रकार अब आने का अभिप्राय अपने मृत पिता के अपूर्ण प्रयत्न की पूर्ति अर्थात् अमीर उल् उमरा के पद के ग्रहण करने के अतिरिक्त और कुछ न था। गुलाम क़ादिर का प्रत्येक कार्य शाही नवाब नाजिम ड्योढ़ी मनज़ूर अली खाँ की अनुमति के अनुसार होता था, जिसका आशय यह था कि यदि युवक पठान को राज शासन में अधिकार मिल गया, तो इस्लाम को बहुमूल्य सहायता प्राप्त होगी। उस समय दिल्ली ' राठों का जो दल था, उसका अफसर पटेल का जमाई देशमुख और एक मुग़ल शहज़ादा ये दोनों थे। उन्होंने गुलाम क़ादिर की ओर नदी के पार तोपों का दागना शुरू किया जिनका, उत्तर युवा रुहेले ने सन्मुख के तट से दिया और मुगल लशकर के सिपाहियों को घूस देकर उनमें फूट पैदा कर दी। मराठों ने मामूली मुक़ाबला किया। गुलाम क़ादिर यमुना के पार उतर आया और शाही अफ़सर अपने शिविर और सामग्री छोड़ छोड़कर वल्लभगढ़ के जाट दुर्ग को भाग गए। गुलाम क़ादिर ने लाल किले की ओर गोली चलाकर अप्रतिष्ठा और विद्रोह करने में कोई कसर नहीं रक्खी थी। उधर कुटिलतापूर्वक दिखावे की खुशामद करना भी आरम्भ किया। अपने मित्र मंजूर अली को पत्र लिखा, जिसके द्वारा वह दीवान खास में प्रविष्ट हुआ और बादशाह को उसने पाँच

मोहरें भेंट कीं, जो सम्राट् ने अनुग्रहपूर्वक स्वीकृत कर लीं। पुनः गुलाम क़ादिर ने अपनी क्रूरता प्रकट करने के निमित्त यह प्रार्थना की कि मुझे श्रीमान् की सेवा करने के लिये अति उत्ताप था; इसलिये मुझसे यह अपराध हुआ। तदनन्तर उसने नियमपूर्वक अमीर उल् उमरा का फ़रमान प्रदान करने के लिये निवेदन किया और प्रतिज्ञा की कि मैं सदैव पूर्णतया आज्ञा पालन करता रहूँगा। फिर वह दरबारियों से परिचय करने के लिये चला गया और रात्रि को अपने शिविर में लौट गया। दो तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए। गुलाम क़ादिर के चित्त को इस कारण धैर्य नहीं हुआ कि इस बीच में कोई ऐसी वार्त्ता नहीं दिखाई दी जिससे उसका मनोरथ सिद्ध होता। वह अपने साथ सत्तर अस्सी सवार लेकर लाल क़िले में घुसा और अपना निवास उन महलों में किया, जिनमें अमीर उल उमरा रहा करता था।

इसी बीच में समरू की बेग़म, जो अपनी सेना समेत सतलज नदी के इधरवाले तट पर सिखों को आगे बढ़ने से रोके हुए पड़ी थी, पानीपत से झपटी और लाल क़िले में आ उपस्थित हुई। बेग़म और उसकी युरोपियन सेना से भयभीत होकर और यह समझकर कि बेगम के विरुद्ध होकर अब कोई मुग़ल दरबारी मुझ से मेल करने के लिये प्रस्तुत नहीं है, रुहेल निराश होकर यमुना पार चला गया और कुछ दिन अपने शिविर में चुपचाप बैठा रहा। बादशाह ने भी इस बार अपने

पुराने समय की सी हिम्मत दिखाई। ग़ुलाम क़ादिर की देख रेख के लिये अब उसने मुग़ल अफ़सर नियत किए और अपनी कौटुम्बिक सेना में ६००० घुड़सवार बढ़ाए, जिनके वेतनार्थ अपने निजी सोने चाँदी के पात्र गलवा डाले। नजफ़ कुली खाँ को भी उसकी जागीर रिवाड़ी से बुलवा भेजा, जो तुरन्त शाही बुलावे पर दिल्ली पहुँचा। उसने बेग़म समरू के निकट खास क़िले के राजद्वार के सन्मुख तारीख़ २७ नवम्बर सन् १७८७ ई० को अपने डेरे लगाए। समस्त बादशाही सेना सम्राट् के द्वितीय पुत्र मिर्ज़ा अकबर के अधीन हुई। तदनन्तर ग़ुलाम क़ादिर के शिविर पर गोले बरसाए गए*।

---

* ऊपर जो वृत्तान्त लिखा गया है, वह अंगरेज़ी पुस्तक "मुग़ल एम्पायर" के अनुसार है और एक उर्दू इतिहास-लेखक के वर्णन से मिलता जुलता है, जिसने इस प्रकार लिखा है—

"सन् १७८७ ई० में जब बरसात खतम होने को आई, तो ग़ुलाम क़ादिर ने दिल्ली के क़रीब शाहदरे में खेमा इस सबब से डाला कि अपने बाप का जाह व मनसब हासिल करे। इसी असनाय में शमरू की बेग़म जो सिखों से लड़ने गई हुई थी, पानीपत से जलदी करके किले में आ गई। अब ग़ुलाम कादिर इस खैरख्वाह बेगम और उसकी फिरंगस्तानी अफसरों की सिपाह से डरा। और कोई मुग़ल अफसर उसके साथ भी न हुआ। २७ नवम्बर सन् १७८७ ई० को किले के बड़े दरवाजे के सामने शमरू की बेगम के पास नजफ कुली खाँ खेमा-जन हुआ। दोनों के सिपह सालार मिर्ज़ा अकबर मुकर्रर हुए। गोला-जनी की। असनाय में मुखालिफ़ीन ने सुलह कर ली।"

समरू की बेगम के जीवन चरित्र के लेखक पादरी कीगन साहब ने इस घटना का वृत्तान्त इस भाँति लिखा है—

गुलाम क़ादिर ने भी उत्तर में ऐसी गोलियाँ चलाईं जो लाल किले में पहुँचकर दीवान ख़ास में पड़ीं।

"१७८७ ई. की वर्षा ऋतु के अंत में पुराने विद्रोही जाब्ता खाँ का पुत्र गुलाम कादिर इन प्रदेशों में हलचल फैलती हुई समझकर वैर भाव से दिल्ली के समीप आया । उसका अभिप्राय बलात् अपने पिता की अमीर उल् उमरा की पदवी प्राप्त करना था। अपने मनोरथ में सफल न होकर उसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और मराठों की सेना का मुँह घूँस से भरकर (क्योंकि वास्तव में सिंधिया ही दिल्ली का स्वामी था) लाल किले को अपने अधिकार में ले लिया और सम्राट् को कैद कर दिया। इस गहन परिस्थित में वेगम शीघ्रता के साथ पानीपत से आई जहाँ कि वह सिक्खों से लड़ रही थी; और उसने लाल किले के लाहौरी दरवाज़े के आगे अपने डेरे खड़े किए। गुलाम कादिर की इन प्रार्थनाओं और प्रस्तावों को कि मुगल साम्राज्य के टुकड़े करके हम आपस में बाँट लें, तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करके किले के आगे उसने अपना तोपखाना खड़ा किया और उससे गुलाम कादिर के भारी गोलों का उत्तर दिया। उस राजभक्त वेगम के इस व्यवहार और दृढ़ निश्चित प्रतिज्ञा पर कि बादशाह को छुड़ाकर ही रहूँगी, गुलाम कादिर पुनः नदी के पार जाने को विवश हुआ। उस दिन के पीछे बादशाह सदैव उसे "साम्राज्य की सबसे अधिक प्रिय पुत्री" (The most beloved daughter of the Empire) इन शब्दों द्वारा सम्बोधित करता था।"

परंतु एक फारसी इतिहास-लेखक ने इस विषय में जो लिखा है, वह बिलकुल भिन्न है; इसलिये उस यथार्थ लेख को अर्थ सहित नीचे उद्धृत किया जाता है।

هرگاه امیرالامرا بهادر از ریواڑی باراده عبور چنبل رفت
جناب همایون بے اتفاقی امرایان حضور ملاحظه فرموده شقه
خاص در طلب بیگم شمرو شرف اصدار یافت که زود آمده در
حضور حاضر گردد۔ بیگم رسیدن شقه حضور را تفاخر عظیم دانسته
و سعادت دوجهان انگاشته یلغار جاداد شتافته سعادت

इसी अवसर पर सेंधिया का अति विश्वसनीय सेनापति अम्बा जी इंगिया अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँचा।

قدمبوس فائز گردید-راجه همت بهادر که از امیرالامرا بهادر تیگ وقت روانه گردیدن بطرف الور جدا شده و رفاقت گزاشته رفته‌بود در جناب همایون آمده حاضر گردید-غلام قادر که دران طرف جمن تیره داشت ازرفتن امیرالامرا وقوف یافته وعبور جمن گرده درفضای قلعه کهنه خیمه کرد و هر روز در حضور انور حاضر میشد و خیال خیام داشت که اگر قابو فرصت یابد بندوبست قلعه نموده در حضور انور حاضر باشد-منظور علیخان و رام رتن مودی را به خان از ابله فریبی فریب داده که رائے آنها هم براین آمده بود که غلام قادر محیط گردد-جناب همایون نیز حرکات ناشایسته اینها دیده بمقتضائے وقت متحمل شده مهر سکوت برلب نهاده تماشاے قدرت ایزدی بودند-الغرض غلام قادر از اغوای این بد اندیشان بسیار خواست که در شهر و قلعه بندوبست نماید از بودن پلٹین بیگم دسترس یافته از راه تزویر بحضور همایون بعرض رسانید که غلام برای بندوبست میان دوآبه میرود-اگر بیگم مشرو از حضور اقدس همراه غلام گردد باسانی دران ضلع متصرف شده بطرف اکبرآباد میل نماید-حاضران حضور نیز که ازته دل رفیق او بودند به عجز والحاح در حضور عرض کردند که غلام قادر ازخانه زادان موروثی است-عرض او پذیرا گردد-آن حضرت بزمانه سازی قبول فرمودند-بیگم سمرو بر طبق همایون از قدسیه باغ کوچ نموده در باغ شاه نظام الدین ڈیره کرده به غلام قادر پیغام داد که بموجب حکم اقدس براے امداد حاضر است-غلام قادر از حضور انور خلعت رخصت گرفته

उसके आने पर मुख्य मुख्य शाही दरबारियों और ग़ुलाम कादिर के बीच में मिलाप हो गया। ग़ुलाम कादिर को बादशाह की

در فرود گاه رفته از بیگم سمرو براے عبور جمن تقید کرد-ان عاقله زنان که ازبد وانکشاف صبحِ اقبال گاهے دردام تذویر کسے نیامده گفته فرستاد که اول نواب صاحب گزاره فرمایند- بعد ازن گزاره فوج ما به آسانی خواهد شد-القصه غلام قادر عبورکرده و آن مُرغ زیرک در مکر و فریب اونیامده بال پرواز گشوده وزور بازوے شهیر خود وانموده برکنار دریا مورچه مستحکم گردانیده مستعد بکار گردید-دهم محرم الحرام غلام قادر را اراده عبورجمن کرده بیگم ازین معنی خبردار شده مستعد جنگ شد وچنان توپهاے رعد مثال غریدن گرفت که زمین و آسمان در لرزه افتاد-دران روز مردم شهریار بسبب هنگام و فساد راه درشاه مردان بردن صلاح ندیده بردریا جمن اوردند و نعره هاے وهوے اهل اسلام و خلایق که لاتعداد تحطاے بودند القدر بلند بود که گویا از رستخیر نمودار گشت-غلام قادر ازین غوغا خائف وهراسان گردید که از حضور همایون بهادر تیغ گزارنهنگان خونخوار باراده شناوری رسیدند سراسیمه از خیال باطل خود برگشت و درچند روز علیگڈه را بتصرف آورد و در محالات گرونواح تهانجات خود قائم کرده ازعذر وحیله درپے درستی اخلاص و ارتباط محمد اسمعیل خان گردید-خان که مرد سپاهی بود دوستی این افغان بے ایمان دریتوقت که آمد آمد فوج مرهته بود غنیمت پنداشته اساس دوستی محکم گردانید—

अर्थात् जिस समय प्रधान मन्त्री रेवाड़ी से यमुना पार करने के अभिप्राय से गया, उस समय बादशाह ने अपने सरदारों में फूट देखकर एक पत्र बेगम समरू-

सेवा में उपस्थित किया गया और उसको अमीरउल् अमरा की पदवी प्रदान की गई। शाह आलम ने उसके सिर पर निज करों से रत्नजटित डोरी अर्थात दस्तूर उल् गोश्वारा बाँधा।

के बुलाने को लिखा कि शीघ्र आकर उपस्थित हो। बेगम ने बादशाह के पत्र पहुँचने को अपना बड़ा सम्मान और सौभाग्य समझा। झटपट अपनी जागीर से प्रस्थान कर शुभ चरणों में पहुँची। राजा हिम्मत बहादुर, जो प्रधान मन्त्री से डीग में अलवर की ओर जाने के समय पृथक् होकर और साथ छोड़कर चला गया था, बादशाह की सेवा में आ गया। गुलाम कादिर को, जो यमुना के उस पार डेरा डाले पड़ा था, प्रधान मन्त्री के गमन की सूचना मिली। वह यमुना पार करके आया और पुराने किले के मैदान में उसने अपना डेरा डाला। वह प्रतिदिन बादशाह के पास आता था और इस ताक में रहता था कि यदि वश चले और अवकाश मिले, तो किले का प्रबन्ध करके बादशाह के पास चला आवे। मनजूर अली खाँ और रामरत्न मोदी को खान द्वारा कपट जाल में ऐसा फँसाया कि उनका मत भी यह हो गया कि गुलाम कादिर सफलता प्राप्त करे। बादशाह सलामत भी इनके दुराचार को देखकर समय के अधीन होकर धैर्य धारण कर और मौन साधन करके दैवी प्रकृति का कौतुक अवलोकन करने लगा। गुलाम कादिर ने इन अशुभ-चिन्तकों के बहकाने से बहुतेरा चाहा कि नगर और किले का प्रबन्ध करे। बेगम समरू की पलटनों के विद्यमान होने से उसे यह अवसर मिला कि छल से उसने बादशाह से यह प्रार्थना की कि दास दुआब का प्रबन्ध करने के हेतु जाता है। यदि बेगम समरू श्रीमान् की सेवा से दास के साथ चले, तो सुगमतापूर्वक उस प्रान्त को अधिकृत करके आगरे को चली जाय। उपस्थित जनों ने, जो हृदय से उसके हितचिन्तक थे, बड़ी नम्रता से बादशाह से निवेदन किया कि गुलाम कादिर इस घराने का पुराना पला हुआ है; अतः उसकी विनय स्वीकृत की जाय। बादशाह ने यह स्वीकार कर लिया। बेगम समरू ने बादशाह की अनुमति से कुदसिया बाग से कूच करके शाह निजाम उद्दीन के बाग में अपना डेरा लगाया और गुलाम कादिर के

गोकुलगढ़ की लड़ाई

रुस्तम रहा ज़मीं पै न कुछ साम रह गया।
मर्दों का आसमाँ के तले नाम रह गया॥

पास सँदेसा भेजा कि मैं वादशाह के आज्ञानुसार सहायतार्थ उपस्थित हूँ। गुलाम कादिर जब बादशाह से विदाई की खिलअत प्राप्त करके अपने स्थान पर आया, तब उसने यमुना पार उतरने के लिये बेगम समरू से अनुरोध किया। उस चतुर नारी ने, जो जब से उसके भाग्य का उदय हुआ था, कभी किसी के प्रपंच में नहीं फँसी थी, यह कहला भेजा कि पहले नवाब साहब ही पार उतरें। तदनन्तर मेरी सेना सुगमता से उतर जायगी। गुलाम कादिर अंत में पार उतर गया; और वह निपुण स्त्री उसके धोखे और कपट में न आई। पुनः उसने अपना साहस और बल प्रकट किया। यमुना-तट पर उसने अपने दृढ़ मोरचे लगाए और संग्राम की तैयारी कर ली। तारीख दसवीं मुहर्रम उल्‌हराम को गुलाम क़ादिर यमुना पार उतरा। बेगम को जब इसकी खबर हुई, तब वह लड़ाई करने को तैयार हो गई। उसकी तोपों की गर्जना का इतना घोर शब्द हुआ कि पृथ्वी और आकाश थरथराने लगा। उस दिन नगर के मनुष्यों ने उत्पात और उपद्रव के कारण शाह मरदान के मार्ग में बाहर जाना उचित न समझकर यमुना पर आगमन किया। अगणित मुसलमानों और प्रजा की चिल्लाहट और हाय हाय इतनी अधिक हुई कि मानो प्रलय आ गई। गुलाम कादिर इस से बहुत भयभीत और उदास हुआ और यह समझा कि बादशाह की आज्ञा से तलवार चलानेवाले योद्धा रक्त के प्यासे मगर-मच्छों की भाँति तैरने के हेतु आए हैं। अतः अपना मिथ्या विचार छोड़कर चल दिया। थोड़े दिनों के अंदर उसने अलीगढ़ पर अपना अधिपत्य जमाया और चारो ओर स्थानों में अपने थाने नियत किए। पुनः चाल चलकर और क्षमा माँगकर मुहम्मद इस्माईल खाँ से गहरी मित्रता करने की ठानी। खान एक सिपाही आदमी था। इसने उसने इस अफगान बेईमान की मित्रता को ऐसे समय पर जब कि मराठों की सेना आनेवाली थी, उचित समझकर उसके साथ मिलाप कर लिया।

पुरुष हो या स्त्री हो, यदि वह गुणवान् और योग्य है, तो उसका जीवन सार्थक है; और नहीं तो अगणित प्रकार के जीव जन्तु इस संसार में पैदा होकर मर जाते हैं। उनके जन्म, जीवन और मृत्यु का हाल इसी प्रकार लुप्त हो जाता है, जिस प्रकार वे आप इस जगत् में बे जाने पूछे रहकर मर जाते हैं। यदि यह संसार किसी की कुछ परवाह करता है, किसी को स्मरण रखने योग्य समझता है, प्रशंसा करता है, अपना आदर्श बनाकर अनुकरण करता है, तो वह केवल गुणवान् ही है।

वीरता स्त्री या पुरुष की बपौती नहीं है। जो उसे धारण और प्रकट करता है, वही वीर कहलाता है।

वीर राजपूत नौ मुसलिम नजफ़कुली खाँ और समरू की बेगम ने मिलकर अफ़गान गुलाम क़ादिर के छक्के छुड़ा दिए थे और बादशाह शाह आलम के मान की उससे रक्षा की थी। इसका वर्णन पीछे हो चुका है। परन्तु इस लेख में उन दोनों मित्रों को शत्रुओं के रूप में दिखाने का वर्णन आता है। इस वैर का यह कारण हुआ कि जो मंत्री मण्डल इस वक्त शक्तिशाली था और जिसके हाथ में साम्राज्य की बाग डोर थी, उसने वीर नजफ़ कुली खाँ को उसकी जागीर के कुछ भाग से वंचित कर दिया और उसके स्थान में मुराद बेग को नियुक्त किया। मुग़ल मुरादबेग उस जागीर को अपने अधिकार में लेने को आ रहा था। वीर नजफ़ कुली खाँ भले ही मुसल-

मान हो गया था, परन्तु फिर भी उसकी नाड़ियों में जो पवित्र राजपूती रक्त विद्यमान् था, वह क्रोध से उबल आया। उससे यह अपमान सहन न हो सका। यद्यपि उसकी जागीर का कुछ अंश ही छीना गया था, तथापि उसने इसमें अपनी सर्वथा अप्रतिष्ठा समझी। जब मुराद बेग जाने लगा, तब नजफ़ कुली ख़ाँ ने, जो उसकी घात में लगा हुआ था, उसको मार्ग में रोककर पकड़ लिया और रेवाड़ी में कैद कर दिया।

तारीख ५ जनवरी सन् १७८८ ई० को शाह आलम ने बहुत सी शाहज़ादियों और शाहजादों को अपने साथ लेकर जयपुर और जोधपुर जाने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। बादशाह ने सेंधिया से तोते की तरह आँखें फेर लीं। मार्ग में उसको यह उचित प्रतीत हुआ कि नजफ़ कुली ख़ाँ को, जिसका यह निश्चय है कि मेरा गोकुलगढ़ का दृढ़ दुर्ग टूट ही नहीं सकता और जो अपने मन में यह प्रण ठाने बैठा है कि बिना सचिव बनाए मैं अधीनता न स्वीकार करूँगा, दमन करने का अब अच्छा अवसर है। इस वक्त बादशाह के लशकर में नजीबों की पल्टनें, जो थोड़ी कवायद जानती थीं, शरीर-रक्षक सेना, जो लाल कुर्ती कहलाती थी, बहुत बड़ी संख्या मुगलों के रिसाले की, और तीन शिक्षित पल्टनें, जिनको स्वर्गीय समरू ने खड़ा करके कवायद परेड सिखाई थी और जो अब तोप-खाने और दो सौ के लगभग गोरे तोपचियों के साथ समरू की बेगम के अधीन थीं, सम्मिलित थीं। इसके अतिरिक्त

वादशाह के साथ वल्लभगढ़ का जाट राजा हीरासिंह और इस्माइल वेग की सेना की एक छोटी टोली राजा हिम्मत बहादुर की अध्यक्षता में भी थी *।

तारीख ५ अप्रैल †सन् १७८८ ई० को वड़े तड़के नजफ़ कुली खाँ की ओर के लोगों ने, जो घिर गए थे, वड़ा प्रवल प्रहार किया। शाही ख़रगाह उस समय इतनी अधूरी और अप्रस्तुत थी कि वादशाह के कुटुम्ब सहित मारे जाने या पकड़े जाने का वड़ा डर था। जव वेगम को इस वात का पता लगा, तव वह वादशाह के डेरों की ओर दौड़ी आई और शाह आलम को सपरिवार कुशलतापूर्वक अपने निजी शिविर में ले गई। शाही सेना में हलचल मच रही थी कि ऐसी विषम परिस्थित में जार्ज टामस के अधीन वेगम की तीनों पल्टनें और तोपें आतुरता से झपटीं और वड़े वेग से शत्रु पर गोलियाँ चलाईं कि धावे करनेवालों का वल टूट गया। उधर शाही लशकर को भी तैयार होने और सँभलने का अवसर प्राप्त हो

---

* सेना दल की उपर्युक्त संख्या "मुगल एम्पायर" के अनुसार है। किन्तु "सिरधना" में वेगम की साथी फौज की संख्या "केवल तीन शिक्षित रेजिमेंट और एक तोपखाना जार्ज टामस की अध्यक्षता में" लिखा है। एक उर्दू इतिहास में सेना का व्योरा यह है—नजीवों की पल्टन, लाल कुर्ती, कवायद फिरंगिस्तानी जाननेवाले मुगलों के दस्ते, सवारों के दो सौ फिरंगिस्तानी गोला-अन्दाज, तीन पल्टन समरू की कवायद सिखाई हुई। इस सेना की अफसर समरू की वेगम थी।

† उर्दू पुस्तक में तारीख १० अप्रैल सन् १७८८ ई० लिखा है।

गया, जिससे अब बादशाह की ओर की समस्त सेना लड़ने लगी। बेगम भी बादशाह को परिवार सहित अपने डेरों में पहुँचाकर रणस्थल में आ पहुँची और जब तक युद्ध होता रहा, वह निरंतर पालकी में उपस्थित रही। अंत में विद्रोही सेना के पाँव उखड़ गए और वह भाग निकली। दुर्ग पर शाही अधिकार हो गया *।

इस बात को सब ने क़बूल किया कि बादशाह तो इस लड़ाई में सर्वथा बेग़म की तत्परता और वीरता से ही बचा: और नहीं तो उसका बचना कठिन था।

विजय होने पर एक दरबार किया गया, जिसमें बादशाह ने खुल्लम खुल्ला सब के समक्ष बेगम की सेवाओं के लिये धन्यवाद दिया, उसको ख़िलअ़ते फ़ाखरा प्रदान किया, तथा बादशाहपुर का बड़ा परगना, जो यमुना के दाहिने तट पर दिल्ली के दक्षिण में है, जागीर में बख्शा। वह उसे अब तक अपनी पुत्री तो कहता ही था, इसके अतिरिक्त जेबउल्‌निसा (नारीभूषण) की उपाधि से और सुशोभित किया।

---

* "मुग़ल एम्पायर" के लेखक ने यह और अधिक लिखा है कि सरदार (नजफ़ कुली खाँ) का दत्तक पुत्र 'चेला' गोली से मारा गया। गुसाइयों के नायक हिम्मत बहादुर ने बड़े मतवाले-पन से धावा किया, जिसमें उसके २०० गुसाईं खेत रहे। नजफ़ कुली खाँ अपनी तोपें खोकर हट गया।

उर्दू तारीख में लिखा है कि बेगम का हुक्का-बरदार लड़ाई में पालकी के पास ही गोले से उड़ गया; बेगम की त्योरी पर ज़रा भी बल नहीं पड़ा; यह बराबर खड़ी रहीं।

नजफ़कुली खाँ ने भी मंजूर अली खाँ द्वारा क्षमा की प्रार्थना की। समरू की बेगम ने उसके पक्ष को पुष्ट किया, जिसका यह परिणाम हुआ कि उसको पूर्णतया क्षमा प्रदान की गई और वह पुनः बादशाह का कृपापात्र बन गया।

पिशाच-लीला

क्या एतबार दह्र का इबरत् की जा है यह।
इशरत् फ़िजा कभी कभी मातम्सरा है यह॥

दिल्ली! राजधानी दिल्ली! भारत के नगरों में तेरी शान, तेरा इतिहास भी अद्भुत, अनुपम और अपूर्व है। जैसे तेरे प्रताप, तेरे गौरव और तेरी उन्नति की कथा हर्षदायक और प्रशंसनीय है, वैसे ही तेरे अधःपतन, तेरे पाशविक अत्याचार का बखान भी अति भयंकर और विस्मयजनक है। कोई नहीं बता सकता कि कितनी बार तुझ पर उग्र आक्रमण हुए; कितने दफ़े तुझमें लूट खसोट, मार धाड़ और हत्याकांड हुए। जितना तेरा बिगाड़ सुधार हुआ है, कदाचित् भारतवर्ष के और दूसरे नगर का नहीं हुआ। तू बनकर बिगड़ती और बिगड़ बिगड़कर सँवरती रही है। तेरा ढंग ही निराला है, तेरी शान ही जुदा है। बहुत प्राचीन समय को जाने दो, मुगलों के उत्थान-पतन में ही, जिसका दिग्दर्शन इस पुस्तक में हुआ है, तेरे ऊपर जितने प्रहार हुए, जितनी बार रक्त की नदियाँ तुझ में बहाई गईं, उनका ही वृत्तान्त सुन कर मनुष्य का दिल दहलता है और शरीर के रोएँ खड़े हो

जाते हैं। तभी तो उर्दू के प्रसिद्ध प्राकृत शायर हाली पानीपती ने कहा है—

ज़िक्र दिल्लीये मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़।
न सुना जायगा हमसे यह फ़िसाना हरगिज़॥

मुग़ल बादशाहत के नष्ट भ्रष्ट होने पर उसके अंतिम नाम मात्र बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र ने सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह के पीछे तेरी दुःखमयी शोचनीय दशा देखकर जो एक करुणाजनक और दिल हिलानेवाली ग़ज़ल कही थी, उसके शेर अब भी हृदय को विदीर्ण करते हैं। वह गजल इस प्रकार है—

गई यकबयक यह हवा पलट मेरे दिल को अब न करार है।
करूँ ग़मे सितम का मैं क्या बयाँ मेरा ग़म से सीना फिगार है॥१॥
यह रिआया हिंद तबाह हुई कहूँ क्या जो इनपे जफ़ा हुई।
जिसे देखा हाकिमे वक्त ने कहा यह तो क़ाबिलेदार है॥२॥
यह सितम भी किसी ने है सुना जो दे फाँसी लाखों को बेगुनह
बले कलमा गोयों की तरफ़ से अभी उनके दिल पे ग़ुबार है॥३॥
न दबाया ज़ेरे चमन उन्हें न दी गोर और कफ़न उन्हें।
किया किसने यारो दफ़न उन्हें वे ठिकाने उनका मज़ार है॥४॥
जो सलूक करते थे औरों से कहूँ क्या वह जैसे हैं तौरों से।
वह हैं तेग़े चर्ख़ के ज़ोरों से रहा तन पे उनके न तार है॥५॥
न था शहर देहली यह था चमन बले सब तरह का था याँ अमन
जो ख़िताब इसका था मिट गया फ़क़त अब तो उजड़ा दयार है॥६॥

यह ज़माना वह है बुरा कि चलो बचके सबसे अलग अलग।
न रफ़ीक़ कोई किसी का अब न कोई किसी का यार है ॥७॥
तुझे क्या ज़फ़र है किसी का डर तू खुदा के फ़ज़्ल पे रख नज़र।
तुझे है वसीला रसूल का वही तेरा हामीकार है ॥८॥

दुर्भाग्यवश एक ऐसी ही दुर्घटना का उल्लेख इस अध्याय में किया जायगा। कदाचित् इसके संबंध में यह कहा जाय कि समरू की बेगम के जीवन चरित्र से इसका कुछ लगाव नहीं है, न किसी लेखक ने इस वृत्तान्त को उसकी जीवनी में पहले लिखा है। अतः इस विचार से इस वार्त्ता का यहाँ लिखना बिलकुल अप्रासंगिक है। किन्तु यदि यह कहना सत्य भी हो, तो इसके विषय में यह विदित करना अनुचित न होगा कि ऐसी दुःखदायी घटना अपने निरालेपन और दारुण कठोरता के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से इतनी महत्वशालिनी है कि बेगम के चरित्र में, जिसका संबंध मुग़ल साम्राज्य से बड़ा ही घनिष्ट था और जिसके समय में यह पिशाच-लीला हुई, इसका उल्लेख करना अनुचित न होगा। यदि इस विचार से इसे देखा जाय तो यह अप्रासंगिकता के दोष से रहित है।

गुलाम क़ादिर के वर्णन में यह प्रकट किया जा चुका है कि कभी बादशाह शाह आलम बेगम समरू और नज़फ कुली खाँ को बुलाकर गुलाम क़ादिर से युद्ध करता था, और कभी उसको अमीर उल्उमरा का उच्च पद देकर यहाँ तक सम्मानित करता था कि दस्तूर गोशवारह निज करों से उसके सिर पर

बाँध देता था। बादशाह का कर्त्तव्य इससे अधिक दृढ़ और स्पष्ट होना चाहिए था; क्योंकि कहा है—

जिनके रुतबे हैं सिवा उनकी सिवा मुशकिल है।

गुलाम क़ादिर ने भोले भाले इस्माइल बेग को दम दिलासे देकर अपनी ओर कर लिया था। इस्माइल बेग बड़ा वीर अफ-सर था और मुग़ल सेना पर उसका बड़ा आतंक और प्रभाव था। गुलाम क़ादिर को ऐसे ही मनुष्य की आवश्यकता थी। उसने न जाने क्यों अपने मन में यह ठान ली थी कि मैं वह पाशविक अत्याचार और दारुण अपराध करूँ, जिसके आगे तीस वर्ष पूर्व गाज़ीउद्दीन की प्रकट की हुई निर्दयता छिप जाय।

उसने इस्माईल बेग से कहा कि अपनी बिखरी हुई सेना को शीघ्र एकत्र कर लो। इस्माइलबेग तो यह काम करने को चला और गुलाम क़ादिर ने दिल्ली का मार्ग लिया। वहाँ पहुँचकर मंजूर अली खाँ के द्वारा राजभक्ति प्रकट करने की कुटिल नीति का अवलंबन किया। इस्माइलबेग भी अब पहुँच गया था; इसलिए गुलाम क़ादिर ने यह जतलाया कि इस्माइल बेग और मैं हृदय से साम्राज्य को मराठों के फंदे से निकालना चाहते हैं। वास्तव में इस्माइलबेग का तो यही आशय था। दोनों सरदार अर्थात् गुलाम क़ादिर और इस्माइलबेग ने इस समय बड़ी अधीनता और नरमी दिखाई। सिंधिया भी चुप न रहा। उसने थोड़ी सी सेना दिल्ली भेज दी, जिसने लाल क़िले में अपना डेरा जमाया। उसको देखकर कपटी गुलाम

क़ादिर और इस्माइलवेग ने शाहदरे में जाकर अपने डेरे खड़े किए; क्योंकि अभी इनका दल इकट्ठा नहीं हुआ था। अब जूलाई का मास था। खेती का समय व्यतीत हो चुका था। गुलाम क़ादिर के पठानों और रुहेलों के कठोर व्यवहार और कारण अन्न के व्यापारी लशकर में न ठहर सके। फिर क्या था; सिपाही भी भागने लगे। इसलिये यह सोचकर कि न जाने क्या कठिनाई उपस्थित हो, गुलाम क़ादिर ने अपने भारी और बोझल सामान गौसगढ़ को भेज दिए। उसने अपने साथियों सहित बादशाह से फिर यह कहना आरंभ किया कि सिंधिया की मित्रता छोड़ दी जाय। बादशाह ने अपनी परिस्थिति का विचार करके यह उत्तर दिया कि मुझे यह बात नहीं भाती। शाह आलम के इस समय इतनी दृढ़ता धारण करने का यह हेतु था कि एक तो मराठों की सेना हिम्मत बहादुर के नीचे उसके समीप विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त उसे गुल मुहम्मद, बादलवेग खाँ, सुलेमान बेग और दूसरे मुग़ल सरदारों से भी सहायता पाने की आशा थी, जिन्हें वह अपना हितकारी समझता था। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि गुलाम क़ादिर और इस्माइलवेग आदि का पक्ष अब सर्वथा गिर गया।

इधर इन षड्यंत्रकारियों पर जो यह दबाव पड़ा, तो उन्होंने अब तक राजभक्ति का जो मिथ्या स्वाँग रच रक्खा था, उसको त्याग कर प्रत्यक्ष में अपना असली स्वरूप दिखाया और वे

अपनी भारी भारी तोपों से लाल किले पर गोले बरसाने लगे। बादशाह ने भी अब खुल्लम खुल्ला मराठे सचिव से कुमक मँगाई, जो इस समय मथुरा में मौजूद था। परन्तु माधवजी सिंधिया ने, जिसको अनेक बार शाह आलम की दृढ़ता और शुद्ध भाव के अभाव का परिचय मिल चुका था, उससे बचना चाहा, जिससे बादशाह को भली भाँति शिक्षा मिल जाय। उसे मुसलमानों की झगड़ालू प्रकृति और लड़ाकेपन की रुचि का भी पूर्ण अनुभव था; इस कारण वह उनसे एक ऐसा युद्ध करने से, जिसमें वे सब सम्मिलित हो जायँ, यथा-साध्य किनारा करता था। क्योंकि यह बहुत सम्भव था कि जब मुसलमानों को बाहर लड़ने को कोई और न मिलेगा, तो वे आपस में ही लड़ झगड़कर कट मरेंगे।

इन गूढ़ रहस्यों को सिंधिया ने अपने मन में रखकर एक ऐसी दरमियानी चाल चली, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। उसने समरू की बेगम के पास दूत भेजा और उससे यह आग्रह किया कि तुम शीघ्र ही बादशाह के सहायतार्थ पहुँच जाओ। परन्तु बेगम भी उससे कुछ कम चतुर और कुशल न थी, जो उसकी इस चाल में आ जाती। वह तत्काल समझ गई कि दाल में कुछ काला है। इसलिये उसने सिंधिया के पास यह उत्तर भेजकर अपना पीछा छुड़ाया कि जब मेरी अपेक्षा आपकी सेना और शक्ति कहीं बढ़ चढ़कर है और फिर भी आप बचते हैं, तो मैं दीन हीन अबला क्या कर

सकती हूँ। अंत में सिंधिया ने अपना एक विश्वासपात्र ब्राह्मण भेजा, जो तारीख १० जुलाई को दिल्ली पहुँचा; और उसके पाँच दिन पीछे दो हज़ार घुड़सवार सेना सिंधिया के संबंधी राय जी की अध्यक्षता में आई। दूसरी ओर से वल्लभगढ़ के जाटों ने भी कुछ सेना भेजकर पुष्टि की।

अपने लिये ऐसे अशुभ सगुन देखकर गुलाम क़ादिर घबराया और उसने भी अपना समस्त दल बल तुरन्त ग़ौस-गढ़ से बुला लिया और खूब ही लूट खसोट पाने के भर्रे देकर उन्हें उभारा। तदनन्तर उसने इस्माइल बेग को यमुना पार जाने के लिये उस्काया जिसमें वहाँ पहुँचकर दिल्ली में रहने-वाली सेना को बहका कर बादशाह की ओर से विमुख करे। उस पर इस्माइल बेग का इतना प्रभाव था कि शाही लशकर का मुग़ल भाग तो तत्काल उसके पक्ष में हो गया। जो शेष सेना, अभागे बादशाह के रक्षार्थ रही, वह सब हिन्दुओं की थी, जिसका सेनापति गुसाईं हिम्मत बहादुर था। हिम्मत बहादुर का मन कदाचित् बादशाह के हित में न था; अथवा वह गुलाम क़ादिर की धमकियों से डर गया। और कदाचित् ऐसा हुआ हो, जो बहुत सम्भव था, कि इन शठों ने उसे कुछ दे दिलाकर बादशाह की ओर से फेर दिया हो। गुसाईं हिम्मत बहादुर बादशाह को शीघ्र छोड़कर चल दिया; और प्रपंचियों ने यमुना के उत्तर ओर इस पार आकर दिल्ली को अपने अधिकार में करा लिया।

बादशाह को बड़ी चिन्ता हुई और उसने अपने अनुचरों से सम्मति करके यह निश्चय किया कि मंज़ूर अली खाँ को भेजा जाय, जो स्वयं ग़ुलाम क़ादिर और इस्माइल बेग के पास जाकर उनके मन की बात पूछे। मंज़ूर अली खाँ बादशाह की आज्ञा पाकर उनके पास गया और उसने यह प्रश्न किया कि अब तुम्हारे क्या विचार हैं? उन्होंने यह उत्तर दिया कि दास तो अपने शरीर से केवल राज राजेश्वर की सेवा करने के लिये आया है। मंज़ूर अली ने कहा कि अच्छा, ऐसा ही करो; परन्तु लाल किले में अपने साथ अपनी सेना न लाओ; कुछ अर्दली लेकर चले आओ। और नहीं तो तुम्हें देखकर राजद्वाराध्यक्ष द्वार बन्द कर देगा। इसी आदेश का दोनों सरदारों ने पालन किया और दूसरे दिन तारीख १८ जुलाई सन् १७८८ को उन्होंने आम खास में प्रवेश किया। प्रत्येक को तलवार और अन्य पारितोषिकों के समेत सात मोहरों की ख़िलअत प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त ग़ुलाम क़ादिर को एक रत्न-जटित ढाल अधिक मिली। इसके उपरान्त वे नगर में अपने निवासस्थान को आ गए, जहाँ इस्माइल बेग ने शेष दिन नगर-वासियों की रक्षा और विश्वास के हित प्रबन्ध करने में बिताया। अगले दिन उसने अपना निवास तो उस हवेली में किया, जिसमें पहले मुहम्मद शाह का मंत्री कमर उद्दीन खाँ रहता था; और अपनी सेना का डेरा उसने दो मील पर प्रसिद्ध निज़ाम उद्दीन औलिया के मकबरे के

समीप कराया, जो नगर के दक्षिण ओर है। गुलाम क़ादिर की सेना पास ही दरियावगंज में रही और उसके अफसरों ने उन विशाल मन्दिरों में अपने डेरे लगाए, जिनमें पहले गाज़ी उद्दीन और पीछे मिर्ज़ा नजफ खाँ रहते थे। इस समय में दिल्ली की राजनीतिक परिस्थिति यह थी कि गुलाम क़ादिर तो प्रधान मंत्री बना, जिसने कुरान की शपथ खाई कि मैं इस पद के कर्तव्यों को ठीक ठीक पालन करूँगा; और उसके पूर्व पटेल माधव जी सिंधिया का नाम उड़ा दिया; और इन सब की सम्मिलित सेना का नाम साम्राज्य की सेना रक्खा गया, जिसका सेनापति इसमाइल बेग था।

अब गुलाम क़ादिर ने बिलैया दण्डवत् करना छोड़ दिया और अपना वास्तविक भयंकर रूप प्रकट किया। तारीख २६ जूलाई को फिर वह किले में आया और दीवान खास में बादशाह से भेंट की। उसने इसमाइल बेग का नाम लेकर, जो उसके निकट ही खड़ा हुआ था, यह विदित किया कि लश्कर मथुरा को कूच करने और मराठों को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने को तैयार है। परन्तु सिपाही लोग पहले अपना पिछला वेतन माँगते हैं, जिसका शाही खजाना ही उत्तरदाता है; और केवल वही उसे चुका सकता है।

इस कथन का अंत में नवाब नाजिम, उप-नाजिम और रामरत्न मोदी ने समर्थन किया। लाला सीतलप्रसाद खजांची ने, (जो तत्काल वहाँ पर बुलाया गया था) कहा

कि चाहे खजाने को उस सेना के लिये, जिसके खड़े करने में उसने कुछ योग नहीं दिया और जिसकी सेवा से उसने अब तक लेश मात्र भी लाभ नहीं उठाया, कुछ भी उत्तरदायित्व हो, परन्तु कम से कम इस कोश में ऐसे व्यय के हेतु कुछ नहीं है। उसने इस पर प्रत्यक्ष रूप से ज़ोर दिया कि जिस प्रकार बने, इस माँग का प्रतिवाद किया जाय।

इस खरी बात को सुनकर गुलाम क़ादिर तो फिर आपे में न रहा और उसको क्रोध का इतना अधिक आवेश हो आया कि जिस को वह सहन न कर सका। उसने तुरन्त वह पत्र निकाला, जो शाह आलम ने सहायतार्थ सिंधिया के पास भेजा था और जो उसके हाथ पड़ गया था। पुनः गुलाम क़ादिर ने आज्ञा दी कि बादशाह के सिपाही उसके शरीररक्षक पहरे के समेत छीन लिए जायँ और उसे अलग करके कड़ी कैद में रक्खा जाय। इसके उपरान्त सलीमगढ़ के किसी छिपे हुए कोने से तैमूर के घराने का एक दीन हीन गुप्त बालक निकाला गया और उसे राजसिंहासन पर आरूढ़ किया गया। बेदार बख्त की उपाधि देकर उसके बादशाह होने की घोषणा कराई गई और समस्त दरबारियों और सेवकों से उसकी भेंट कराई गई। कहा जाता है कि नवाब नाजिम मंजूर अली ने उस अवसर पर बड़ी समझ और हिम्मत का परिचय दिया; क्योंकि जब बेदार बख्त प्रथम बार बुलाया गया था, तब शाह आलम अभी तख्त पर विराजमान था; और जब उससे कहा गया कि इससे

उतरो, तो उसने इसका कुछ विरोध करना चाहा। इस पर ग़ुलाम क़ादिर उसको मारने के लिये अपनी तलवार खींच रहा था कि मंजूर अली ने बीच में पड़कर बादशाह को समझाया कि आपत्ति का विचार करके समयानुसार कार्य करना उचित है। यह सुनकर वह शान्तिपूर्वक उठ खड़ा हुआ। तीन दिन और तीन रात बादशाह और उसका कुटुम्ब बराबर कड़ी हवालात में निराहार और निर्जल बड़े कष्ट में पड़ा रहा। ग़ुलाम क़ादिर ने इस्माइल बेग को तो कह सुनकर शिविर में भेज दिया और मेरी अनुपस्थिति में इसने खूब लूट खसोट मचाई। इस्माइल बेग को भी इसकी शंका हुई, तो उसने अपना एक मनुष्य ग़ुलाम क़ादिर के पास भेजकर स्मरण कराया कि प्रतिज्ञानुसार पारिश्रमिक स्वरूप मुझको या मेरे सिपाहियों को अब तक लूट में से कुछ नहीं मिला। किंतु विश्वासघाती रुहेले ने स्पष्ट अस्वीकार किया कि हमने कोई ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की थी; और वह क़िले तथा समस्त वस्तुओं को मनमानी रीति से अपने प्रयोग में लाने लगा।

अब इस्माइल बेग की आँखें खुलीं और उसे अपनी मूर्खता का बोध हुआ। उसने तुरंत नगर की प्रजा के मुखियाओं को बुलाया और उनको बहुत समझाया कि अपनी अपनी रक्षा का प्रबन्ध करें। उधर अपने सेनानियों पर यह दबाव डाला कि यदि रुहेले नगर में लूट मचावें, तो यथा संभव उनसे जितना प्रयत्न हो सके, उसमें वे अपनी ओर से कुछ कसर न

रहने दें। इस समय तो ग़ुलाम क़ादिर का ध्यान शाही परिवार को लूटने में अधिक लगा हुआ था; इसलिये नगर के विध्वंस करने का उसको अवकाश नहीं था। जब वह उन आभूषणों से तृप्त न हुआ, जो नवीन बादशाह ने बेगमों से लिए थे, जिसको कि पहले ही पहले ग़ुलाम क़ादिर ने उनके समस्त गहने छीनने की सेवा पर नियुक्त किया था, तब उसको फिर यह सूझ पड़ी कि शाह आलम अपने कुटुम्ब का स्वामी है; उसको अवश्य उस स्थान का पता होगा, जहाँ कहीं गुप्त धन रक्खा हुआ है। अनंतर जो अपराध और भयंकर अत्याचार हुए, उनका मूल कारण केवल यही भ्रम था। २९ वीं तारीख को उसने बेदार बख्त से कहा कि वृद्ध शाह आलम को शारीरिक कष्ट दो। इसके अनुसार ३० तारीख को यह घोर पाप हुआ कि शाह आलम के परिवार की कई एक बेगमों को पीटा गया, जिनके रुदन और विलाप के नाद से समस्त राजभवन गूँज उठा। ३१ तारीख को उस दुष्ट ने यह सोचा कि मुझे अब इतना पर्याप्त धन मिल गया है कि पाँच लाख रुपए का पारितोषिक इस्माइल बेग और उसके सिपाहियों के पास भेजकर उनसे फिर मेल कर लिया जाय। इसका फल यह हुआ कि दोनों ने मिलकर नगर के हिन्दू साहूकारों से फिर रुपए वसूल किए।

तारीख १ अगस्त को बादशाह से कल्पित दफ़ीने बताने के निमित्त कहा गया, जिसने उसके जानने से सर्वथा अपनी

अनभिज्ञता प्रकट की। बेचारे बुड्ढे ने हारकर उस निर्दय से कहा—"यदि तुम समझते हो कि मेरे पास कोई दफ़ीना है, तो वह मेरे शरीर के अंदर होगा। मेरी अँतड़ियों को चीर डालो और अपनी तृप्ति कर लो।"

पुनः पूर्ववत् बादशाहों की वृद्ध विधवाओं का नाना भाँति से अपमान किया गया और उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया गया। पहले तो उनके साथ अच्छा व्यवहार हुआ; क्योंकि उसका यह विचार था कि वे इम्तियाज महल की बेगमों को लुटवाने में सहायता देंगी। परंतु जब उन्होंने ऐसा न किया, तब फिर स्वयं उन्हीं को लूटा गया और उन्हें क़िले से बाहर निकाल दिया गया। जब ये सब अत्याचार हो चुके, तब गुलाम क़ादिर ने मंजूर अली खाँ को डाँटा, जिसका वह अब तक स्वयं प्रतिपालक था और उससे सात लाख रुपए माँगे। तारीख ३ अगस्त को गुलाम क़ादिर ने यह दुष्कर्म करके अपनी नीचता का परिचय दिया कि दीवान खास में वह तख्त पर नाम मात्र बादशाह के बराबर बैठकर उसके आगे हुक्का पीता रहा और सब प्रकार से उसका उपहास करता रहा। तारीख ६ अगस्त को उसने शाहीतख्त को तुड़वाकर और उसके ऊपर जो जो सोने चाँदी के पत्तर लगे हुए थे, उन्हें उखड़वाकर गलवा डाला; और अगले तीन दिन पृथ्वी के खुदवाने और अन्य अनेक मनमाने उपाय करने में, जिनसे दफ़ीने का पता चले, बिताए।

अंत में चिरस्मरणीय तारीख १० अगस्त आ गई जो मुग़ल साम्राज्य की राजकीय स्थिति की कदाचित् सब से प्रसिद्ध तारीख है। ग़ुलाम क़ादिर, जिसके पीछे नायब नाज़िम याक़ूब अली और उसके चार पाँच दुर्दान्त पठान थे, दीवान खास में दाखिल हुआ और उसने शाह आलम को अपने सन्मुख बुलाया। जब बादशाह वहाँ आ गया, तब फिर उसको यह झिड़की मिली कि दफ़ीने का सब भेद बता दो। बेचारे बादशाह ने—जिसने अभी थोड़े ही दिन पहले अपने सोने चाँदी के पात्र, घुड़ सवार सेना के व्ययार्थ गलवाए थे—यह सच्चा और सीधा उत्तर दिया कि यदि कोई दफ़ीना होगा, तो वह कहीं होगा; किंतु मैं उसका पता बिलकुल नहीं जानता। इस पर दुष्ट रुहेला बोला—"इस संसार में अब तुम किसी काम के नहीं रहे हो; अतः तुम्हारी आँखें फोड़ दी जायँ।" वृद्ध पुरुष ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"खुदा के लिये ऐसा न करो। तुम मेरे इन बूढ़े नेत्रों को छोड़ दो, जो साठ वर्ष तक रोज़ाना कलाम अल्लाह की तिलावत करके धुँधले हो चुके हैं।" परंतु उस पिशाच ने अपने अनुचरों को यह आज्ञा दी कि बादशाह के पुत्रों और पौत्रों को, जो उसके पीछे पीछे लगे हुए चले आए थे और उस वक्त उसके समीप इधर उधर खड़े थे, पीड़ा पहुँचाई जाय। इस अंतिम अत्याचार ने बादशाह को अधीर कर दिया, जिससे उसने कहा कि बाबा, ऐसा और दृश्य दिखाने के बदले तो मेरी आँखें ही फोड़ डालो ग़ुलाम।

क़ादिर तत्काल तख़्त से झपटा और उसने बुड्ढे को पछाड़कर भूमि पर गिरा दिया। वह आप उसकी छाती पर चढ़ बैठा और अपनी कटार से उसकी एक आँख निकाल ली। तदनंतर आप तो उठ खड़ा हुआ और उस समय जो मनुष्य उसके पास खड़ा हुआ था—कदाचित् वह शाही घराने का याक़ूब अली था—उसको उसकी दूसरी आँख भी निकालने की आज्ञा दी। जब उसने नाहीं की, तब उसे भी गुलाम क़ादिर ने मार डाला। पुनः पठानों ने बादशाह को बिलकुल अंधा कर दिया और स्त्रियों के विलाप तथा पुरुषों की धिक्कार के कोलाहल के बीच, जो बड़ी कठिनाई से पीछे शान्त हुआ, वे उसे सलीमगढ़ में पहुँचा आए। बादशाह ने इस घोर विपत्ति के समय जो धैर्य और दृढ़ता दिखाई, वह वास्तव में बहुत ही सराहने योग्य है।

यद्यपि नगर-निवासियों को तुरंत ही इस दुर्घटना का समाचार नहीं मिला, तथापि शीघ्र ही उनके पास गप्पें पहुँचने लगीं कि लाल किले में बड़े बड़े अन्याय हो रहे हैं।

तारीख़ ११ अगस्त को पवित्र राज-मंदिर में स्त्रियाँ और बालक बालिकाओं का निर्दयतापूर्वक वध करके गुलाम क़ादिर ने अपना मुँह काला किया।

तारीख़ १२ अगस्त को दूसरी बार इस्माइल बेग की मुट्ठी गरम की गई, जिससे उत्तेजित होकर फिर उसने प्रजा से धन बटोरा और उसका कुछ अंश गुलाम क़ादिर के पास भेजकर

अपनी मित्रता का परिचय दिया। ऐसी लूट से तंग आकर बहुधा लोग अन्यत्र भाग गए।

तारीख १४ अगस्त को दक्षिण से मराठों की कुछ सेना आई जिससे दुखी जनता को थोड़ा ढारस बँध गया। इस्माइल बेग का ग़ुलाम क़ादिर पर सच्चा विश्वास तो पहले ही नहीं रहा था, परंतु अपने सखा के पाशविक अत्याचारों से उसको और भी अधिक ग्लानि हो गई। इस कारण उसने मराठे सेनापति राणा खाँ से सन्धि की बातचीत करने का श्री गणेश किया। १८ तारीख को मराठों का विशाल दल यमुना के बाएँ तट पर आ गया, जहाँ उन्होंने गौसगढ़ से खाद्य पदार्थ लानेवाली सैनिक टोली (Convoy) को बीच में ही छिन्न भिन्न कर दिया; और उसकी रक्षा के लिये जो रुहेले पहरेवाले उसके साथ आए थे, उनमें से कई एक को यमपुर पहुँचा दिया। फिर क्या था; लाल किले में लोग भूखों मरने लगे। जब ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित हुई, तब ग़ुलाम क़ादिर की सेना ने उससे लूटमार का अपना भाग माँगने के लिये चिल्लाना शुरू किया। इसी झगड़े में सन् १७८८ का अगस्त महीना समाप्त हुआ।

ऐसी ऐसी आपत्तियों के सिर पर आने से भी ग़ुलाम क़ादिर सहसा चलायमान न हुआ। उसने बुर्ज-इ-तिला भवन की संगवालियों और अपने अफसरों के साथ डटकर मदिरा पान की। उन शठों के समक्ष शाही घराने की युवा शाह-

जादियाँ और शाहजादे नाच और गाकर इस प्रकार रिझाते थे, जैसे बाजारी रंडियाँ और भाँड़ किया करते हैं। उसने अपने सिपाहियों को अशान्ति का दमन किया और इसकी कुछ परवाह न की कि मेरी जान जोखिम में है। तारीख ७ सितम्बर को यह जानकर कि मराठों की संख्या और शक्ति की वृद्धि हो रही है; कहीं ऐसा न हो कि मुझको घेरे में डाल कर चहुँ ओर से मेरा मार्ग रोक दिया जाय, गुलाम कादिर अपनी सेना को यमुना पार उतारकर अपनी पुरानी छावनी में ले गया। जो लूट उसने मन खोलकर संचय की थी, उसका भाग गौसगढ़ को भेज दिया और ऐसी ऐसी भारी वस्तुएँ, जैसे बहुमूल्य डेरे और सिंगार की सामिग्री, अपने सेवकों को देकर उनको प्रसन्न कर लिया। १४ तारीख को वह पुनः अपने शिविर में आया; क्योंकि उसको इस्माइल बेग की ओर से खटका था। परंतु शीघ्र ही वह लाल किले को लौट गया ताकि वह फिर एक बार शाह आलम का, अपने विचार से, हठ तोड़कर गुप्त खजाने का रहस्य पूछे। जब वह अपने इस उद्देश्य में विफल हुआ और जिधर देखो, उधर विपत्ति से घिर गया, तब उसका हृदय उन भीषण यन्त्रणाओं से काँपने लगा, जो उसके घोर पापों के बदले में उसको आगे झेलनी पड़ीं।

नष्ट देव की भ्रष्ट पूजा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

परम पूज्य पिता सर्वाधार सर्वशक्तिमान् घट घट व्यापी न्यायकारी जगदीश्वर के न्याय और नियम के बिलकुल विरुद्ध है कि उसकी इस पवित्र मानवी सृष्टि में कोई सबल किसी दुर्बल पर अन्याय और अत्याचार करे। मनुष्य पाशविक आवेशों का जिस प्रकार दास बन जाता है, उसी प्रकार उसमें उच्च और उत्कृष्ट दिव्य भाव भी समय समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। यदि मनुष्य कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक विकारों के वशीभूत हो जाता है, तो कभी उसमें ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर-उपासना, सेवा, अहिंसा, आत्मत्याग आदि विविध पवित्र और श्रेष्ठ भाव भी—मानुषी स्वभाव के उत्तम गुण—भी उत्पन्न होते हैं। विद्या ग्रहण करने की शक्ति, बुरे भले का ज्ञान, ईश्वर-भक्ति, पाप से भय करना आदि नाना अलौकिक गुणों और योग्यताओं की प्राप्ति का भागी इस स्थावर और जंगम रचना में केवल मनुष्य है। यही कारण मनुष्य के सभ्य और सुशील कहलाने के हैं; इन्हीं भावों के वृद्धि पाने और उन्नति करने के कारण मनुष्य को अंत में दुर्लभ से दुर्लभ गति प्राप्त होती है।

यही कसौटी मनुष्य के खरे और खोटे परखने की है और इसी तराजू से उसकी न्यूनता या अधिकता का पता लगता है। गुलाम कादिर के कुकर्मों पर दृष्टि डालने से यह बोध होता है कि मनुष्य गिरते गिरते कितना गिर जाता है।

शाह आलम मनुष्य था, मुसलमान बादशाह था। गुलाम क़ादिर के पितामह नजीब उद्दौला ने उसकी सेवा में ही अपना जीवन योग्यता से व्यतीत करके उच्च पद प्राप्त किया था। फिर पीछे उसका पुत्र और गुलाम कादिर का पिता जाब्ता खाँ इसी बादशाह की सेवा में मान पाने के लिये इतना उत्कंठित हुआ कि उसने अपनी बहिन को मिर्जा नजफ खाँ के साथ और अपनी बेटी को उसके दत्तक पुत्र राजपूत नौ-मुसलिम नजफ कुली खाँ के साथ ब्याह दिया। इसी गौरव को प्राप्त करने के लिये स्वयं गुलाम क़ादिर ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी। फिर ऐसी कौन सी नवीन और विचित्र वार्ता हुई कि जिसके कारण वही शाह आलम सपरिवार ऐसी दुर्गति का पात्र बनाया गया, जिसका स्मरण करके अब भी शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं? यह केवल गुलाम क़ादिर की दुष्ट प्रकृति और नीचता के कारण हुआ, जिसका उचित और यथार्थ दंड उसको ईश्वर ने उसी के पाप के अनुसार तुरंत दिया।

मुहर्रम का मास आ गया था जिसमें मुसलमानों का दस दिन का धार्मिक त्योहार होता है। मुसलमानों के सुन्नी

और शिया दोनों सम्प्रदाय अपने अपने ढंग से पैगम्बर मुहम्मद साहब के नवासे अर्थात् हज़रत अली के पुत्र हुसैन और उनके साथियों के करबला की लड़ाई में मारे जाने का शोक मनाते हैं। पर उस वर्ष इस उत्सव मनाने के लिये दिल्लीवालों के चित्तों में शान्ति, उत्साह और उमंग कहाँ थी। एक ओर तो वे सेनाओं के द्वारा पीसे जाते थे, दूसरी ओर वे लाल किले का हत्याकाण्ड हो जाने से अत्यंत विस्मित और भयभीत हो गए थे। अंत में तारीख ११ अक्तूबर का दिवस आया जो मुसलमानों के त्योहार का अखीर दिन था। उस दिन लोगों के मन को कुछ शान्ति और धीरज प्रतीत हुआ। यह बात प्रसिद्ध होने लगी कि अब इस्माइलबेग का राणा खाँ के साथ मेल मिलाप हो गया, और विशेष दल दक्षिण से आ रहा है। लैस्टोनिक्स (Lestonneaux) और डी बौगनी (De Bolgne) अपनी प्रबल तिलंगी पलटनों समेत आ गए। शाहदरे में पठानों के डेरों में पूर्ण रूप से हुल्लड़ और हलचल मच गई। ज्यों ही तारीख ३१ अक्तूबर की रात हुई कि लाल किले की ऊँची भीतों ने अपना भेद उन पर खोल दिया, जो बहुत दिनों से उसे टटोल रहे थे। भारी धमाके के शब्द से बारूद का ढेर फटकर वायु में उड़ा, जिसकी चिंगारियाँ उड़कर तत्काल सफीलों के ऊपर चहुँ ओर फैल गईं। दर्शक उसी समय यमुना की ओर मुँह किए शहर पनाह की ओर दौड़े। उजाले में उन्होंने नावों को नदी में उस पार जाते

देखा। एक हाथी तेज चाल से रेती में द्रोही गुलाम क़ादिर को लिए जा रहा था। गुलाम क़ादिर सलीमगढ़ से चोर घाट के मार्ग से भाग आया था और अपने चलने से पहले उसने वेदार वख्त (अर्थात् अपने बनाए बादशाह), नवाब नाजिम मंजूर अली खाँ और शाही घराने के समस्त मुख्य मुख्य लोगों को निकालकर भेज दिया था।

ठीक ठीक सच्ची घटनाएँ जो उस दिन लाल किले में हुई थीं, सदैव के लिये अविदित रहेंगी *।

मराठे सेनापति ने तुरंत किले को अपने अधिकार में

---

* उपर्युक्त वृत्तांत लिखते हुए अँगरेजी पुस्तक 'मुगल एम्पायर' के रचयिता मिस्टर हेनरी जार्ज कीनी प्रकट करते हैं—

"सब का यह विचार है कि गुलाम कादिर ने किले में इस कारण आग लगा दी थी जिससे शाह आलम का नाश हो जाय और उसके पैतृक भवन के जलते हुए खँडहरों में होकर उसके दीर्घ अपराध रूपी हवन में पूर्ण आहुति पड़ जाय; अथवा तारीख मुजफ्फरी के लेखक के कथनानुसार गुलाम क़ादिर चाहता था कि वह अखीर दम तक मराठों के घेरे का मुकाबला करे; किंतु बारूद के फट जाने के शब्द से वह भाग निकला और मराठों ने सुरंग लगाकर बारूद को उड़ाया था।" मेरे विचार से जनता के अनुमान की ही विशेष संभावना प्रतीत होती है। यदि गुलाम क़ादिर का लड़ने का उद्देश्य होता, तो वह पहले से ही अपनी सेना को क्यों यमुना पार भेज देता? और क्यों वह सुरंग को देखते ही—जो उसे विदित होगा कि अधिक करके घेरे की लड़ाई की एक रीति है—शाही कुटुंब को तो निकालकर ले गया और केवल शाह आलम को छोड़ गया? और फिर वह उसको जीता क्यों छोड़ गया? इन बातों से यही प्रतीत होता है कि गुलाम क़ादिर ने ही शाह आलम को भस्म करने के लिये चलते समय आग लगा दी थी।

ले लिया। उसके सिपाहियों के प्रयत्न से आग शीघ्र बुझा दी गई, इस कारण अधिक हानि नहीं होने पाई। शाह आलम और उसके कुटुंब को जो बेगमें रह गई थीं, उनको मौत के मुँह में से छुड़ाया और जो कुछ सुविधाएँ उस समय संभव थीं, वे उनको पहुँचाई गईं और आगे के लिये उनको पूरा धीरज बँधाया गया। इसके अनंतर राणा खाँ तो सिंधिया के पास से और कुमक आने की बाट जोहने लगा और पठान लोग अपने अपने घरों को चल दिए।

पूने के दरबार ने अपना हित पटेल की पुष्टि करने में देखा; इसलिये तुकोजी होलकर की अध्यक्षता में एक प्रबल सेना उसके पास भेजी और यह प्रतिज्ञा की कि लड़ाई में जो लाभ प्राप्त होगा, उसे दोनों आपस में बाँट लेंगे। इस सेना के आगमन का राणा खाँ ने और बहुत दिनों से कष्ट सहते हुए दिल्ली-निवासियों ने स्वागत किया। जब किले की रक्षा का प्रबन्ध हो गया, तब जो शेष सेना बची, उसे लेकर राणा खाँ, अप्पू खाँडे-राव और अन्य सेना भी गुलाम क़ादिर के पीछे चली। जब उस पर बहुत उग्र दबाव पड़ा, तब वह कूच करके मेरठ के किले में घुस गया। वहाँ अभी कुछ दिन ही रहा था कि उसको चारों ओर से घेरे में ले लिया गया। शत्रु की सेना बहुत बड़ी थी और उसके बचाव का मार्ग रुक गया था; इसलिये उसका घमंड टूट गया और उसने अति पराधीनता और नम्रता की शर्तें उपस्थित करके संधि करनी चाही; परंतु वह अस्वीकृत हुई।

तब लाचार होकर उसने मरने पर कमर बाँधी। तारीख २१ दिसम्बर को राणा खाँ और डी बोगनी ने सब ओर से धावा कर दिया; परंतु गुलाम कादिर और उसके सिपाहियों ने जाड़े के छोटे दिन में उससे बहुत साहसपूर्वक अपनी रक्षा की। तो भी अब गुलाम कादिर के सिर पर विपदा के काले काले बादल छा रहे थे। उसके सिपाही सब प्रकार से इस समय हारे थके हो गए थे, इससे गुलाम क़ादिर ने उसी रात को उन्हें छोड़कर जाने की चेष्टा की। वह चुपके से किले से खिसक आया और अपने घोड़े पर सवार हो गया। उसने अपनी काठी के खीसों में बहुमूल्य रत्न और मणियों के आभूषण ठूँस ठूँसकर भर लिए, जो लाल क़िले की लूट में उसके हाथ लगे थे, और जिन्हें वह अपने पास ही इस अभिप्राय से रखता था कि आड़े वक्त में मेरे काम आवेंगे।

वह गुलाम क़ादिर जो अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि बुर्ज-ए-तिला में अपने अफसरों के साथ बैठा हुआ रंग रलियाँ मना रहा था और घमंड के नशे में चूर हुआ किसी को अपने आगे कुछ नहीं समझता था, इस समय ऐसी घोर कठिनाई में पड़ा था कि अकेला शीत ऋतु की रात्रि को मनुष्यों के आने जाने के स्थानों से बचता हुआ और अपने मन में यह आशा करता हुआ कि यमुना उतरकर सिखों की शरण में किसी तरह जा पहुँ, बारह मील से ऊपर चला गया। अभी प्रातः काल की पौ न फटी थी और आकाश में धुंध छा रहा था

कि उसका थका माँदा घोड़ा खेतों के बीहड़ मार्ग पर चक्कर लगाता हुआ अचानक एक कूएँ के पास के पौदर* में गिर गया। घोड़ा तो अभागे सवार को पटककर अपनी पीठ के हलके हो जाने से उठकर बैलों की चढ़ाई पर कूदता हुआ दौड़ गया। परन्तु उसके सवार को कुचले जाने के कारण चोट आ गई थी जिसके सदमे से वह अचेत हो गया और जहाँ गिरा था, वहीं पड़ा रहा। जब दिन निकला और उजाला हुआ, तब किसान† अपना कूआँ चलाने को गया, जिससे उसके गेहूँ के खेत में पानी दिया जाता था। उसने देखा कि एक मनुष्य बढ़िया ज़री के वस्त्र पहने पौदर में पड़ा हुआ है। उसने उसे तुरंत पहचान लिया; क्योंकि थोड़ा ही काल हुआ था, जब गुलाम क़ादिर के पठान सिपाहियों ने उस को लूटा था; उस समय उसने गुलाम क़ादिर के आगे जाकर पुकार की थी; परन्तु उसने उसे फटकार दिया था। गुलाम क़ादिर का मुँह देखते ही उसे वह अत्याचार स्मरण हो आया, जो उसके ऊपर उस समय हुआ था। इससे उसने अपने मन में जल भुनकर मुँह बनाकर उसे चिढ़ाने के लिये कहा—"सलाम नवाब साहब !" दुरात्मा

* पौदर = कुएँ के पास की वह नीचे ढलुवाँ भूमि जिस पर से पुरवट चलने के समय बैल बराबर आया जाया करते हैं।

† वह जाति का ब्राह्मण था। उसका नाम भीखा था और वह जानी ग्राम का रहनेवाला था, जो बेगम समरू की जन्मभूमि सुधाने के समीप है। बादशाह शाह आलम ने भीखा की इस सेवा से प्रसन्न होकर उसे माफी भूमि प्रदान की थी, जो अब तक उनके वंशजों के पास चली आती है।

गुलाम क़ादिर, जो हारा थका और भूख प्यास से चूर चूर हो रहा था, यह सुनकर डरके मारे चौंक पड़ा। वह उठकर बैठ गया और इधर उधर देखने लगा। उसने कहा—"तुम मुझे क्यों नवाब कहते हो! मैं तो एक दीन सिपाही हूँ जो घायल होकर अपने घर को जाता हूँ। मेरे पास जो कुछ था, वह सब जाता रहा। तुम मुझे गौसगढ़ को जानेवाली सड़क बता दो। मैं तुमको पीछे से इसका पारितोषिक दूँगा।" यदि भीखा के मन में गुलाम कादिर के संबंध में कुछ संदेह भी था, तो वह गौस-गढ़ का नाम सुनकर तत्काल दूर हो गया। उसने लोगों को बुलाने के लिये तुरंत पुकार मचाई और शीघ्र ही अपने शिकार को राणाखाँ के शिविर में ले गया। वहाँ से गुलाम क़ादिर कैद होकर मथुरा में सिंधिया के पास भेजा गया।

गुलाम क़ादिर के चले जाने के पीछे मेरठके किले में पठान विना सरदार के रह गए; इसलिये उसे छोड़ कर उन्होंने अपने अपने घर का मार्ग लिया। नाम मात्र के बादशाह बेदार बख्त को दिल्ली भेजा गया, जहाँ पहले तो उसे कारागार में रक्खा गया, फिर उसकी हत्या की गई। अभागे नवाब नाजिम मंजूर अली ने गुलाम क़ादिर की लाल किले वाली पाशविक लीलाओं में बहुत कुछ योग दिया था, जिससे सब के हृदय में उसके विषय में विश्वासघात करके आना कानी करने का सन्देह हो गया था। उसको हाथी के पाँव से बाँधकर तब तक बुरी तरह से गलियों में घसीटा गया, जब तक कि वह न मर गया।

रुहेलों के नवाब गुलाम क़ादिर के दुर्भाग्य की कथा इससे और भी कहीं बढ़कर भयंकर है। जब वह मथुरा में पहुँच गया, तब सिंधिया ने उसको तशहीर कराने का दंड दिया। उसे काले गधे पर चढ़ाकर पूँछ की ओर उसका मुँह करके बाजार में फिराया गया; और उसके साथ जो पहरेवाले थे, उनको यह आज्ञा हुई कि बड़ी बड़ी दूकानों के आगे उसे ठहराया जाय और बावनी * के नवाब के नाम से प्रत्येक दूकान से एक एक कौड़ी की भीख माँगी जाय। वह अधम मनुष्य इस घृणित व्यवहार से सब की दृष्टि में निंदनीय हो गया। इसके पीछे उसकी जीभ काट ली गई। तदनन्तर और और अंगों से भी उसे शनैः शनैः विहीन किया गया। अर्थात् पहले तो उसको बादशाह के बदले में अंधा किया और पीछे से उसकी नाक, कान, हाथ, और पाँव भी काट दिए गए; और इसके अनन्तर उसको दिल्ली भेज दिया गया। मार्ग में मौत ने आकर उसकी पीड़ा का

---

* बावनी महल के इलाके में बावन परगने थे जो अब सहारनपुर और मुज़फ़्फ़रनगर के जिलों में सम्मिलित हो गए हैं। इसमें तीन गढ़ थे—पथरगढ़ बाएँ को, सुक्करताल गंगा के दाहिने ओर और गौसगढ़ मुज़फ़्फ़रनगर के समीप। पहले दोनों दुर्ग तो नजीब नजीब उद्दौला ने उस मार्ग की रक्षार्थ बनाए थे, जो रुहेलखंड के उत्तर पश्चिम के कोने में उसकी जागीर की ओर को जाता था; क्योंकि गंगा यहाँ प्रायः सदैव पायाब रहती है, उस समय के अतिरिक्त जब कि उसमें रौ आ जाता है। तीसरा किला ज़ाबता ख़ाँ ने बनाया जहाँ अब तक एक बहुत बड़ी सुंदर मसजिद विद्यमान है।

निवारण किया। उसकी मौत का कारण यह बतलाया जाता है कि तारीख ३ मार्च को उसको एक पेड़ पर लटका दिया गया। अब उसका कटा धड़ रह गया जो दिल्ली पहुँचाया गया और नेत्रहीन बादशाह के आगे रक्खा गया। इससे पूर्व इससे अधिक वीभत्स दृश्य दीवान खास में कभी उपस्थित नहीं हुआ था।

गुलाम क़ादिर का जो निवासस्थान गौसगढ़ था, उसको भी खोदकर पृथ्वी के बराबर ऐसा कर दिया गया कि मसजिद के अतिरिक्त उसका और कोई चिह्न नहीं रहा। उसका भाई डरकर पंजाब को भाग गया।

जो लोग धन की प्राप्ति के लिये अंधे बने फिरते हैं, उसका संचय करने में धर्म या अधर्म का विचार नहीं करते हैं और जिन्होंने लाभ के वश होकर अपना यह अन्ध विश्वास बना रक्खा है कि—

اے زر تو خدا نئی ولے بخدا*

ستار عیوب و قاضي الحاجاتی*

अर्थात् हे धन! तू ईश्वर तो नहीं है, परंतु ईश्वर की शपथ खाकर कहता हूँ कि तू सर्व दोष-निवारक और समस्त इच्छाओं का पूर्णकर्ता है। (अर्थात् ईश्वर के सब गुण तुझ में वर्त्तमान हैं।)

उनके लिये गुलाम क़ादिर के जीवन का जीता जागता उदाहरण बहुत ही शिक्षाप्रद है।

आश्चर्य नहीं कि हमारे पाठकगण यह बात जानने के लिये परम उत्सुक हों कि वह मणियों से लदा घोड़ा गुलाम क़ादिर को जानी ग्राम के खेतों के कूएँ के पोदर में गिराकर किधर चला गया और वह अगणित तथा बहुमूल्य धन किसके हाथ पड़ा। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहीं कुछ पता नहीं चलता; परंतु स्किनर साहिब के जीवन चरित्र (Skinner's Life) में यह अटकल लगाई गई है कि वह फरासीसी जनरल लैस्टोनिक्स के हाथ पड़ा, जिसको पाते ही उसने झटपट सिंधिया की सेवा का परित्याग किया। इस प्रकार भारत के शाही मुगल घराने के उत्तम रत्न फ्रांस देश में पहुँच गए।

अतिशय कठोर दंड

नावक-अन्दाज़ जिधर अवश्य जाना होंगे।
नीम बिस्मिल् कई होंगे कई बेजाँ होंगे॥

समरू की बेगम का जीवन चरित्र लिखते लिखते पिछले दो अध्यायों में उसकी समकालीन ऐसी कठोर घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें मुख्य नायिका की जीवनी के क्रम का तार टूट गया है; इसलिये पुनः उसे ग्रहण किया जाता है। उन वार्त्ताओं का यदि और कुछ संबंध न हो, तो भी एक बात तो यह अवश्य प्रकट होती है कि उस युग के शासकों के हृदय कैसे कठोर और निर्दय थे। बेगम भी उसी रंग में रंगी

दिखाई देती है, यद्यपि उसमें और और अनेक उत्तम तथा श्रेष्ठ गुण भी विद्यमान थे। पादरी हियर साहब ने बेगम के विषय में बहुत सी प्रशंसनीय बातें कही थीं, जिनका वर्णन आगे होगा; किंतु वह भी यह कहने से न चूके कि "बेगम का मिजाज आग बगूला था।"

सन् १७६० में बेगम प्रधान मंत्री (सिंधिया) के पास अपने दल बल सहित मथुरा में डेरे डाले पड़ी हुई थी कि एक दिन यह संवाद मिला कि दो कनीज़ों (दासियाँ) ने उसके आगरे के घरों में आग लगा दी। वे घर बड़े थे और उनकी छतें छप्परों की थीं। उनमें बेगम के समस्त बहुमूल्य पदार्थ रक्खे हुए थे, तथा उसके मुख्य मुख्य अफसरों की विधवा पत्नियाँ और उनके बाल-बच्चे रहते थे। इससे बहुत धन की हानि हुई। यदि आग न बुझाई जाती, तो बहुत सी जानें चली जातीं। बहुत से बुड्ढे और छोटे बच्चे ऐसे थे जो नहीं बच सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसी कुलीन स्त्रियाँ भी थीं जो आग में जलकर अपने प्राण दे देना तो स्वीकार करतीं, किंतु उस भीड़ के समक्ष कदापि न आतीं जो आग का तमाशा देखने के लिये वहाँ जमा हो गई थी। वे दोनों दासियाँ आगरे के बाजार में मिल गई और मथुरा में बेगम के शिविर में भेजी गई। मुकदमा अनुसंधानार्थ बेगम के युरोपियन और ईसाई अफसरों को सौंपा गया। दासियों का अपराध सर्वथा सिद्ध हुआ, जिस पर उनको कोड़े मारकर उन्हें जीवित गाड़ने

का दंड दिया गया * ।

---

* हमारे पास बेगम के संबंध की जो सामग्री है, उसमें केवल पादरी कीगन साहब की अँगरेजी पुस्तक "सरधना" नामक में ही उपर्युक्त घटना का वर्णन आया है। वह बेगम के गिरजे की सेवा में था; इसलिये जो कुछ उसने लिखा है, उसमें अधिकतर उसने बेगम के गुण ही गुण विदित किए हैं; और उसकी लेख शैली का ऐसा ढंग प्रतीत होता है कि जिसमें वह बुराई के रूप में न दृष्टिगोचर हो, प्रत्युत वह उचित और समयानुसार आवश्यक कार्य ही जान पड़े। उस समय के लेखकों ने इस कठोरता की कड़ी आलोचना की होगी, तभी उक्त पादरी साहब ने इसके लिखने से पूर्व यह भूमिका लिखी है—

"१७९०. इसी समय के लगभग एक ऐसी बात हुई जिसको कुछ अचम्भे के प्रेमी यात्रियों ने नाना रूपों में बिगाड़कर लिखा है; और इस कारण उन्होंने बेगम पर निर्दयता का आरोप किया है। इस कहानी को विविध भाँति से कहा गया है, परंतु मिथ्या कल्पनाओं को दूर करके यह उसका यथार्थ वृत्तान्त है।"

इस घटना का उक्त वर्णन प्रायः "सरधना" नामक पुस्तक के वाक्यों में लिखा गया है। निस्सन्देह ये दासियाँ न जाने किस कारण से एक घोर और भयंकर अपराध करने पर उतारू हुईं और उससे कुछ हानि भी अवश्य हुई; परंतु वास्तव में इतनी अधिक क्षति नहीं हुई, जितनी कि बढ़ाकर उसकी सम्भावना प्रकट की गई है। तो भी इन अभागिनियों को बेगम के युरोपियन और हिंदुस्तानी ईसाई अफसरों ने जो दंड दिया, वह न केवल दारुण, भीषण और अमानुषी ही है, वरन् ईसाई धर्म की उत्तम शिक्षा के बिलकुल विपरीत भी है, जिसमें दया और क्षमा धारण करने के लिये प्रबल आज्ञा है। पादरी कीगन को इस निष्ठुरता पर लज्जा और खेद तो नहीं होगा, पर धृष्टतापूर्वक "जले पर नमक छिड़कने" की कहावत के अनुसार वह इसका समर्थन इस तरह करता है—

"यह ध्यान में रखने की बात है कि भारतवासियों में इन अपराधियों के

पुनर्विवाह

दुनिया के जो मजे हैं हरगिज़ वह कम न होंगे।
चरचे यही रहेंगे अफ़सोस हम न होंगे॥

इस जगत् के अति वृद्ध होने पर भी इसमें नित्य नवीन उभार और उत्साह उत्पन्न होता है। यह ज्यों ज्यों जीर्ण होता और मुरझाता जाता है, त्यों त्यों पुनः नए रूप में इसकी विलक्षण उठान होती है। इसका बुढ़ापा सदैव तरुणाई में परिणत होता रहता है। इसमें नवीन इच्छाएँ और विलक्षण कामनाएँ पैदा होती हैं। इसका मन अद्भुत तरंगों और हर्षित उमंगों से प्रफुल्लित और उत्साहित होता रहता है। फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि समरू की बेगम को, जिसका वय सन् १७९२ में चालीस वर्ष के लगभग था और जिसको समस्त प्रकार का राजसी सुख प्राप्त था, उस काम की बाधा हुई हो, जिसके तीक्ष्ण बाण योगियों के मन को भी छेदकर विचलित कर देते हैं, और जिसके कारण उसे भी फिर अपना विवाह करने की आवश्यकता हुई।

निमित्त, जिनको मृत्यु का दंड दिया जाता हो, फाँसी देने की किसी मुख्य रीति का विधान नहीं है। चूँकि इस अभियोग में स्त्रियाँ दोषी थीं, अतएव इस विचार के पालन की उपयुक्त रीति यही प्रतीत हुई कि उनको जीता ही गाड़ दिया जाय। जितनी कि अपराध के योग्य चाहिए थी और जैसी कि अवसर के अनुसार आवश्यकता थी, उससे विशेष उनको सज़ा नहीं मिली।"

इसके अतिरिक्त उसे अपनी सेना को वश में करने और आगे को उसका ठीक प्रबन्ध करने की चेष्टा ने भी पति की सहायता प्राप्त करने के लिये विशेष रूप से विवश किया। जब से समरू की मृत्यु हुई थी, उसकी फौज, कुछ तो अपना वेतन रुक जाने और अधिकतर स्वयं अफसरों के उत्तेजित करने के कारण, जो अपने अपने उत्तम कुल के अभिमान में उच्च अधिकार पाने के लिये दरबार में परस्पर लाग डाँट और झगड़े बखेड़े करते थे, कई बार आज्ञा भंग करने को उतारू हो गई। इस दशा में उसको यह सम्मति दी गई कि वह अपना पुनर्विवाह कर ले, ताकि पति के दबाव और सहारे से वह उन सैनिकों का दमन कर सके।

बेगम के जनरलों में आयरलैंड देशनिवासी जार्ज थामस * (George Thom ·) नामक एक युवा चोटी का जनरल था, जिसने अपने धावे और पराक्रम से सन् १७८८ में गोकुलगढ़ के युद्ध में बड़ा नाम पाया था और जिसका बेगम के स्वभाव पर बड़ा अधिकार और प्रभाव हो गया था। देखने में यह कबूल सूरत और लंबे कद का था। दूसरा ली वैस्यू (Le Vassen or Le Vasseul) था जो कुलीन, सुशिक्षित और सुशील था। दोनों ही बेगम पर मोहित हो गए। दोनों में से

* जार्ज थामस का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे दिया जायगा।

प्रत्येक जी जान से यह चाहता था कि बेगम मेरे दिल की मालिक हो जाय। दोनों ही बहादुर जनरल थे; अतएव उसको प्रसन्न करने के हेतु वे नाना प्रकार से अपनी वीरता प्रकट करने लगे। उनमें शनैः शनैः परस्पर वैर और प्रतिद्वन्द्विता इतनी अधिक बढ़ गई कि वे एक दूसरे की जान के दुशमन हो गए। प्रत्येक अपने शत्रु के लहू का प्यासा बन गया। यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि वे आपस में अपने प्रतिद्वन्द्वी को नीचा दिखाने और नष्ट करने के निमित्त विविध भाँति के षड्यंत्र रचने और नीच कर्म करने पर उतारू हो गए। अंत में ली वैस्यू की मधुर मूर्ति और आकर्षक प्रकृति काम कर गई। बेगम भी उसी को चाहने और उसी का दम भरने लगी; और उसको निश्चित रूप से जार्ज थामस की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा। एक तो उस समय अँगरेजों और फरासीसों में द्वेष होने के कारण पहले ही ली वैस्यू से जार्ज थामस घृणा किया करता था। दूसरे अब जो बेगम ने ली वैस्यू का पक्ष करके उसे अस्वीकार किया, तो उसे बहुत लज्जा आई और नीचा देखना पड़ा। वह और भी बिगड़ बैठा।

परस्पर के इस वैर भाव ने सिपाहियों में भी फूट डाल दी। यहाँ तक नौबत पहुँची कि जार्ज थामस ने बेगम की सेवा का ही परित्याग कर दिया। चलती बार उसने अपने जी के फफोले इस प्रकार फोड़े कि वह बेगम के दो तीन गाँव लूटकर धन माल जो उसके पल्ले पड़ा, अपने

साथ लेता गया*। जार्ज थामस पहले थोड़े दिन अनूप शहर की छावनी में अंगरेजों के अधीन रहा। तदनंतर मराठों की सेना में अप्पू खंडेराव के यहाँ जा नियुक्त हुआ। जब जार्ज थामस इस प्रकार निकल गया, तब लो बैस्रू को धैर्य्य बँधा। फिर तो उसे मन माना मौक़ा मिला और उसने

---

* जार्ज थॉमस के बेगम की सेवा त्यागने के बाबू ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने प्रमाणों सहित निम्नलिखित दो कारण और भी बताए हैं—

(१) मराठे दूत ने, जो दिल्ली में रहा करता था, अपने अप्रैल सन् १७९४ के एक पत्र में, जो अपने स्वामी की सेवा में पूना को भेजा था, यह लिखा था कि जार्ज थामस के दुराचारों से विवश होकर बेगम ने इसे जबरदस्ती अपने इलाके से निकाल दिया।

(२) परंतु लखनऊ का एक संवाददाता अपने "जार्ज थामस का विश्वसनीय वर्णन" नामक लेख में एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर (Asiatic Annual Register) नामक अंगरेजी पत्र में प्रकाशित करता है कि जार्ज थामस के निकाले जाने का यह कारण था कि वह बेगम के यहाँ से फरासीसियों की संख्या घटाना चाहता था; क्योंकि बेगम का व्यय अधिक था। इससे फरासीसी उसके विरुद्ध हो गए। जब जार्ज थामस सिक्खों से लड़ने गया, तब उन्होंने उसके विरुद्ध बेगम के कान भरने शुरू किए कि वह तुम्हारा राज्य छीनना चाहता है और इसी लिये वह हमें निकालने का आग्रह करता है। बेगम ने तत्काल थामस की बातों पर अपनी असमर्थता प्रकट की। ये बातें सुनकर थामस भी तुरंत लौट आया और अपनी स्त्री को लेकर बेगम की सेवा छोड़कर चला गया।

परंतु दूसरा कारण तो हमें नितांत मिथ्या प्रतीत होता है; क्योंकि उस समय उसके स्त्री ही कहाँ थी।

बेगम पर अपनी हार्दिक अभिलाषा प्रकट की। निस्सन्देह वह बड़ी बुद्धिमान् और दूरदर्शी थी; किंतु उस समय काम के वशीभूत होने के कारण उसे ऊँच नीच और आगा पीछा कुछ न सूझा और उसने अपनी रज़ामंदी जाहिर कर दी। सन् १७९३ में दुर्भाग्यवश बेगम का विवाह ली वैस्यू के साथ एकान्त में पादरी ग्रेगोरिओ साहब ने कराया, जिन्होंने पहले उसे बप्तस्मा देकर ईसाई बनाया था। इस विवाह के केवल दो साक्षी हुए, जो दूल्हा के मित्र सैलूर (M. M. Saleur) और बर्निअर (Bernier) थे। इस कारण बेगम की कीर्ति और ली वैस्यू के आतंक को क्षति पहुँची। इस अवसर पर बेगम ने अपने ईसाई नाम जोना (Joanna) के साथ नोबिलिस (Nobilis) उपनाम और बढ़ा लिया। बेगम ने दूसरा विवाह तो कर लिया, परंतु अब वह भयभीत रहने लगी।

हानिकारक छेड़ छाड़

विनाश काले विपरीत बुद्धिः

जब किसी पर कोई विपत्ति आती है, तब उसकी बुद्धि पहले से ही बिगड़ जाती है, और उसको उलटी सूझ सूझने लगती है। बुद्धि को विमल और शुद्ध रखना मनुष्य का सब से बड़ा और आवश्यक कर्तव्य है। यही उत्तम प्रयत्न वास्तव में मनुष्य को मनुष्य बनाता है और उसे महान् से महान् तथा उच्च से उच्च सद्गति का लाभ कराकर परम

अलौकिक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त कराता है। इसके विपरीत जब मनुष्य की बुद्धि इस पवित्र भाव से विमुख होकर विकार-ग्रस्त हो जाती है, तब उसे यथार्थ और सत्य मार्ग से हटा-कर उससे नाना प्रकार के अपराध कराती है, जिनका परि-णाम दुःख होता है।

यद्यपि जार्ज थामस बेगम की सेवा छोड़कर सरधने से चला गया था, तथापि बेगम और उसके पति के मन को इससे शांति प्राप्ति नहीं हुई। वह दूर रहते हुए भी उनकी दृष्टि में काँटे की तरह खटकता था और वे उसे चैन से रहने देना नहीं चाहते थे।

इसी बीच में सेंधिया माधव जी की मृत्यु हो गई। इसके सम्वाद और इस दुविधा ने, कि अब उसका उत्तरा-धिकारी कौन होगा, दिल्ली में कुछ थोड़ी सी हलचल मचा दी। इस कारण अप्पू खांडेराव को दिल्ली आना पड़ा। थामस भी उसके साथ साथ आया था। यहाँ उन्होंने अपनी कई जागीरों में सिंधिया के स्थानीय प्रतिनिधि गोपालराव भाऊ से अभिषेक कराया। परंतु थोड़े दिन पीछे गोपालराव भाऊ ने बेगम और उसके पति के उस्काने और बहकाने पर अप्पू खांडेराव के सिपाहियों को भड़काना आरंभ किया, जिन्होंने विद्रोह करके अपने स्वामी को कैद कर लिया। इसके बदले में थामस ने बेगम की उस जागीर में लूट मार मचाई, जो दिल्ली के दक्खिन की ओर थी। पुनः वह अपने स्वामी को

छुड़ाकर अपने साथ कानोड़ को लिवा ले गया। अप्पू खांडेराव थामस की इस स्वामि-भक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कृतज्ञता तथा उदारता का यह परिचय दिया कि उसने थामस को अपना दत्तक पुत्र बना लिया और उसे अनेक भारी भारी पारितोषिक प्रदान करने के अतिरिक्त निकटवर्ती कई एक गाँवों का अनुशासन भी दिया, जिनकी वार्षिक आय कुल मिलाकर डेढ़ लाख रुपए थी।

जब थामस अपनी भूमि के प्रबन्ध में व्यग्र था, तब समरू की बेगम ने अपने पति के प्रभाव में आकर पुनः उस पर आक्रमण किया। वह कूच करके उसकी नई जागीर में घुस गई। उस समय उसके अधीन चार पलटनें, बीस तोपें और चार दस्ते रिसाले के थे। उसने झज्झर से तीन पड़ाव के लगभग दक्षिण पूर्व की ओर कुछ दूरी पर अपना कैम्प खड़ा किया। थामस ने तत्काल इस सेना से मुकाबला करने की तैयारियाँ कीं और बेगम को सहसा इस प्रकार बाहर निकाल दिया कि जिसे सुनकर अचंभा होता है।

चेतावनी

रहिमन वह बिपता भली जो थोरे दिन होय।
इष्ट मित्र अरु बंधु सुत जानि परैं सब कोय॥

इस जगत में ऐसे माई के लाल बहुत कम होते हैं जिनके जीवन में सदैव एक से अच्छे दिन बने रहें; और नहीं तो सभी

को इस कराल काल की टक्करें झेलनी पड़ती हैं, सभी को कभी सुखी और कभी दुःखी होना पड़ता है। किसी मनुष्य के सब दिन एक समान नहीं रहते। यदि मनुष्य अपने दुष्काल को धैर्य और चतुराई से व्यतीत करके उससे उपदेश ग्रहण करे और अपने सौभाग्य के समय में पुनः उन्मत्त तथा असावधान न हो जाय, तो वह अवश्य अपने जीवन की बाजी जीत लेगा। जो विपत्ति हमको ऐसी बुरी और असह्य प्रतीत होती है और जिससे हम दूर भागना चाहते हैं, वह अकारण ही नहीं आती, वरन् हमें चेताने और सावधान करने के लिये आती है।

अपने पूर्व पति समरू की मृत्यु हो जाने के पश्चात् चौदह वर्ष तक बेगम ने भली भाँति अपने राज्य और सेना की व्यवस्था की थी। अब जो उसने अपना दूसरा विवाह रचाया, तो इससे नई नई बाधाएँ खड़ी होने लगीं। उसकी सेना में महाद्वीप युरोप के भिन्न भिन्न देशों से आए हुए भिन्न प्रकृति के अफसर थे। उनमें से एक दो को छोड़कर शेष सब अपढ़ और उजड्ड थे। कौन सा दोष है जो उनमें न था! वे लुच्चे, लम्पट और ढीठ थे। उनके अवगुणों की और अधिक वृद्धि इसलिये होने लगी कि वे ऐसे बड़े बड़े अधिकार पाने के लिये खींचा तानी करते थे, जिनके योग्य वे वास्तव में न थे। इधर बेगम ने चुपके से अपना विवाह कर लिया। यद्यपि उसे गुप्त रखने का उसने बहुतेरा प्रयत्न किया, परंतु स्त्री पुरुष का संबंध क्या

छिपा रह सकता है! अंत में भंडा फूट ही गया। वह बड़ा ही अप्रिय सिद्ध हुआ। क्या अफसर और क्या सिपाही, सभी यह समझने लगे कि हमारे पुराने सेनापति की विधवा ने अपना पुनर्विवाह करके उसकी इज्जत में बट्टा लगा दिया। ली वैस्यू उनकी आँखों में इसलिये काँटे के समान खटकने लगा कि वे सोचते थे कि सरधने की जो जागीर हमारे खर्च के लिये मिली थी, उसके अब उस अजनबी के हाथों में चले जाने का भय है। दुर्भाग्यवश बेगम और उसके पति ने अपनी अनेक करतूतों से जार्ज थामस को चिढ़ाकर अपना भारी शत्रु बना लिया था। अब वह दिल्ली में आ गया था। उसने एक ओर तो उस पल्टन को भड़काया, जो बेगम की ओर से समरू के पुत्र नवाब मुजफ्फर-उद्दौला जफरयाब खाँ के अधीन बादशाह की नौकरी पर दिल्ली में उपस्थित थी। दूसरी ओर उसने अपने पक्ष के दृढ़ अनुयायी और परम मित्र लाईगुइस (Li guois) से, जो शायद जरमनी अथवा बेलजियम देश का निवासी था, लिखा पढ़ी करके उसके द्वारा अपने पूर्व परिचित सिपाहियों में वैर भाव की प्रचंड अग्नि प्रज्वलित कर दी। यद्यपि ली वैस्यू भी बिलकुल गुणहीन तो न था, तथापि वह घमंडी और अप्रवीण अवश्य था। जब से बेगम के साथ उसका विवाह हुआ, तब से उसने अपनी सेना के अफसरों से मिलना जुलना और उनके साथ भोजन करना बिलकुल छोड़ दिया। बेगम भी पहले अपने सैनिकों के साथ बड़ी शिष्टता और प्रेम

के साथ पेश आती थी; और उनमें से मुख्य मुख्य अफसरों को बुलाकर अपने साथ खाना खिलाती थी; क्योंकि उन्हीं की कृपा और शक्ति के कारण उसके राज्य और अधिकार की पुष्टि थी। ली वैस्यू ने उसे भी उनके साथ ऐसा उत्तम व्यवहार करने से यह कहकर रोका कि वे अपढ़, असभ्य और उजड्ड हैं; उन्हें इस प्रकार सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए। यद्यपि बेगम ने उसे बहुतेरा समझाया, परंतु उसने न माना। अतएव वे दिन प्रति दिन रुष्ट होते गए। उनमें से बहुतेरे सिपाहियों को यह भी विदित न था कि वास्तव में ली वैस्यू का बेगम के साथ विवाह हो गया है। वे उसे बेगम का आशना ही जानते थे। इसलिये वह उनकी आँखों में और भी खटकता था; क्योंकि एक तो उसके घृणित व्यवहार से वे अप्रसन्न थे। दूसरे उन्हें खुल खेलने का यह बहाना मिल गया; इसलिये शीघ्र ही उससे सब अफसर और सिपाही बिगड़ बैठे। उन लोगों ने यह प्रपंच रचा कि बेगम को सरधने की जागीर से हटाकर उसके स्थान में समरू के पुत्र नवाब मुजफ्फरउद्दौला जफरयाब खाँ को बैठा दिया जाय। ऐसी विषम परिस्थिति में रहना बेगम और ली वैस्यू दोनों के लिये असह्य हो गया। अतएव बेगम ने अपने राज्य को इन शर्तों के साथ सिंधिया के हाथों में सौंपने का विचार किया कि (१) उसे अपनी निजी सम्पत्ति ले जाने की आज्ञा दे दी जाय; (२) जागीर बदस्तूर सेना के व्ययार्थ बनी रहे; और (३) समरू के पुत्र

नवाब मुजफ्फर उद्दौला जफरयाब खाँ को दो सहस्र रुपए मासिक वेतन जीवन भर दिया जाय। उसी समय ली वैस्यू ने सर जान शोर साहब गवर्नर जनरल को इस आशय की चिट्ठी लिखकर भेजी कि हमको अँगरेजी इलाके में से होकर चंद्र-नगर को बिना महसूल दिए जाने का पास प्रदान किया जाय। परंतु अभी उन्होंने कुछ निश्चय नहीं किया था और न अब तक वहाँ से कुछ उत्तर आया था कि सिपाहियों को पहले ही किसी प्रकार पता चल गया कि ये ऐसी लिखा पढ़ी कर रहे हैं। अतः वे लाईगुइस * को अपना सेनापति बनाकर उसकी

---

* लाईगुइस के विद्रोह मचाने का कारण जार्ज थामस की जीवनी में यह लिखा है कि बेगम ने जो अपने नवीन पति के बहकाने से जार्ज थामस के साथ छेड़ छाड़ आरम्भ कर दी, इससे लाईगुइस और बेगम की सेना के अन्य अनुभवी अफसरों ने बहुत मना किया जिससे ली वैस्यू चिढ़ गया। उसने बेगम के कान भरकर लाईगुइस को उसके पद से नीचे उतरवा दिया और उसके घाव पर यह और नमक छिड़का कि किसी मातहत को उस पद पर आसीन किया। यह बात जो वास्तव में अति घृणित और अन्यायपूर्ण थी, सिपाहियों को बहुत बुरी लगी; क्योंकि वे बहुत वर्षों तक लाईगुइस के अधीन रहकर उसकी आज्ञा का पालन करते रहे थे। उसके साथ रहकर उन्होंने बहुधा युद्ध किए थे और विजय प्राप्त की थी। उन्होंने बहुत कुछ समझाया, किंतु कुछ फल न हुआ। बेगम से उन्हें इस विषय में न्याय करने की कुछ आशा न रही। हताश होकर वे खुद खेले और प्रत्यक्ष में विद्रोह मचा दिया। उन्होंने समरू की बड़ी स्त्री के पुत्र जफरयाब खाँ को, जो दिल्ली में रहता था, अपना सेनापति बनाने के लिये वहाँ से बुलाया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे उसे मसनद पर आरूढ़ कर देंगे। इस हेतु से सेना के प्रतिनिधियों की एक मंडली बेगम के बहुत रोकने पर भी दिल्ली भेजी गई और उसे नियमानुसार उस का अध्यक्ष

अधीनता में विद्रोह करने को खड़े हो गए। पहले उन्होंने यह ढँढोरा पीटा कि अब बेगम हमारी स्वामिनी नहीं रही; और फिर समरू के पुत्र को दिल्ली से सरधने बुलाया। बेगम और ली वैस्यू चुपके से रात में निकल गए। वे अभी सरधने से तीन मील किर्वा तक ही पहुँचे थे कि फौज के एक दस्ते ने उन्हें आ पकड़ा, जो उनके पीछे दौड़ाया गया था। उस समय बेगम तो पालकी में बैठी हुई थी और ली वैस्यू घोड़े पर सवार था। फौज के आने पर जो हुल्लड़ मचा, तो उस गड़बड़ी में पति और पत्नी एक दूसरे से बिछुड़ गए और विद्रोहियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। गोलियाँ चलीं और कुछ मनुष्य घायल हो गए। बेगम ने यह समझा कि मेरा पति मारा गया और न जाने वैरियों के हाथों अब मेरी कैसी कैसी दुर्गति होगी; इसलिये उसने अपनी छाती में छुरी भोंक ली। कनीज़ें चीखने और चिल्लाने लगीं। ली वैस्यू ने, जो कुछ दूरी पर भीड़ से घिरा हुआ खड़ा था, पूछा कि क्या हुआ? उसे यह सूचना मिली कि बेगम ने आत्महत्या कर ली। दो बार उसने यह प्रश्न किया और दोनों बार उसे यही उत्तर मिला।

बनाया। जफ़रयाब खाँ अपनी विमाता की आँखों और दाँतों से डरता था; परंतु उन्हों-ने उसे राजा बना ही दिया। उसके भय के निवारणार्थ मंडली के प्रतिनिधियों ने उसको अपनी सेना की ओर से उसके आज्ञाकारी भक्त होने की शपथ खाई। जब बेगम को षड्यंत्र का पता लगा, तब उसने अपने पति और कुछ पुराने सेवकों को लेकर भागने का दृढ़ संकल्प किया।

जब एक दासी ने बेगम की चादर उठाकर उसे दिखाई तो वह खून से सनी हुई थी। इस पर उसने आहिस्ता से अपनी पिस्तोल निकाली और उसकी नली अपने मुँह पर रखकर उसे चला दिया, जिससे उस का सिर उड़ गया। बेगम ने सचमुच अपने कलेजे में छुरी भोंकी थी और वह मूर्च्छित अवस्था को प्राप्त हो गई थी; परन्तु छुरी छाती की हड्डी में लगकर फिसल गई थी; इस कारण उसे भारी चोट नहीं लगी थी। दुष्टों ने ली वैस्यू की लाश का अपमान और अनादर किया। बेगम को वे सरधने को लौटा लाए और तोप के मुँह से उसे बाँधकर कई दिन तक उसी दशा में रखा। परन्तु अंत में सेलूर के बहुत प्रयत्न करने और कहने सुनने पर उसे इससे छुटकारा देकर कारागार में रखा गया*।

---

* इस घटना के विषय में इतिहास-लेखकों में बड़ा मतभेद है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसमें अधिक मुख्य जीवन-चरित्र लेखक पादरी कीगन साहब का मत है। परंतु अँगरेजी पुस्तक 'मुगल एम्पायर' के रचयिता हेनरी जार्ज कीनी साहब और पीछे से महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने जो सविस्तर वृत्तांत अपनी पुस्तक में लिखा है, वह इससे भिन्न है। उसका उल्लेख करना भी अति आवश्यक है। कीनी साहब यह विदित करते हुए कि थामस ने लाईगुरस द्वारा बेगम की सरधनेवाली सेना में बगावत की आग फैला दी और बेगम के गुप्त विवाह और उसके पति ली वैस्यू की अपकीर्ति ने उसमें और घृत डाल दिया, आगे लिखते हैं—

पत्नी और पति यह सुनकर कि अफसर मृतक समरू के पुत्र नवाब फाफरयाब खाँ से, जो दिल्ली में रहता था, मिल गए हैं, आतुरतापूर्वक सरधने को लौट आए (कदाचित् जार्ज थामस की जागीर से)। उस समय परिस्थिति बड़ी नाजुक हो

शान्ति-स्थापना

जगत् की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु का निरन्तर उत्थान और पतन होता रहता है। बेगम का प्रताप

गई थी और अब उनके वश की बात नहीं रही थी; इसलिये उन्होंने सरधने को छोड़ने और दो लाख रुपए मूल्य के लगभग का ले जाने योग्य अपना सम्पत्ति साथ लेकर अँगरेजी राज्य में चले जाने का विचार किया। इस अभिप्राय से उन्होंने कर्नल मैक ग्वान (Colonel Mc Gowan) कमांडिंग अनूपशहर ब्रिगेड को चिट्ठी लिखी और उसका कर्नल मैक् ग्वान के पास से उत्तर भी आ गया। ली वेस्यू ने फिर निम्नलिखित पत्र अनूपशहर के कर्नल मैक् ग्वान के पास भेजा—

सरधना

२ अप्रैल सन् १७९५।

श्रीमन्,

आपने अनुग्रहपूर्वक मेरे पास जो पत्र भेजा है, वह आज मुझे मिला। बेगम के आदेश और इच्छा के अनुसार मैं फिर इस विषय में कष्ट देने का साहस करता हूँ। बेगम की प्रबल इच्छा और उद्देश्य यह है कि वह यहाँ से चली जाय। यदि यूरोप का सा हाल इस देश का भी होता, तो उनका इस्तीफा केवल इस विषय की प्रार्थना करने पर ही स्वीकृत हो जाता और उसका कोई अशुभ फल न निकलता। परंतु आप तो भली भाँति जानते हैं कि भारतवर्ष में उस सरदार को कोनी [illegible] है जिसके साथ सिपाही और अनुचर न हों। इस कारण उनके छोड़कर चले जाने और आगे को सेवा न करने का समाचार प्रकाशित करने में भय है।

मराठों के साथ अँगरेजों की मित्रता है। इससे यदि बेगम को अँगरेजी इलाके में ले जाया जाय, तो उसमें कोई क्लेश नहीं हो सकता। यह आवश्यक है कि इस प्रस्थान से न्यायपूर्वक और कानून के विरुद्ध उनकी सम्पत्ति लूटने का कोई प्रबंध न रचा जाय। हाथी, तोपें, असबाब लगभग और ५०५० सिपाहियों के [illegible]

अब तक दिन दिन बढ़ता ही रहा था। वह अब तक किसी विपत्ति के फेर में नहीं आई थी। अब जो उसने वे सोचे समझे

बेगम की सम्पत्ति है, वहकुछ सरकार की नहीं हैं। सिंधिया ने एक पत्र के प्रतिनिधि रूप में उनका मूल्य ५००००) मासिक अथवा छः लाख रुपए वार्षिक कूता है, जिसके भुगतान के निमित्त आठ परगने दिए गए हैं।

शुद्ध भाव से दूसरी जगह चले जाने से बेगम अपने अधिकार अथवा सम्पत्ति में से, जो मराठों के राज्य की है, कुछ नहीं घटाती है। उसका राजस्व प्रति मास निरंतर प्राप्त होता है। उसकी पल्टनें नौकरी पर लगी हैं। सब प्रबंध ठीक है।

नकदी की दृष्टि से तो उसकी सम्पत्ति एक भले मानस द्वारा कदाचित् एक लाख रुपए की कूती जाय। उसके पास आभूषण तो इतने थोड़े हैं, जो न होने के तुल्य हैं। रहे सिपाही; न वे साथ लिए जा सकते हैं और न बेचे जा सकते हैं। अतएव तनिक आप ही विचार कीजिए कि क्या अठारह वर्ष पर्यन्त सेना की नायक होने पर राजधानी रखते हुए जिसकी आय इतनी कम है, जिससे सरकार या कोई मनुष्य व्यय की पूर्ति करने में असमर्थ है, बेगम धनी कही जा सकती है!

वह अठारह वर्ष के दीर्घ काल तक सैनिक जागीर के कर्तव्यों और चिंताओं से जिसमें रात दिन लवलीन रहना ही उसके जीवन का उद्देश्य रहा है, बिलकुल थक गई है। अब आप की मित्रता के शरण-गत है; क्योंकि बिना अपने आपको जोखों में डाले वह न उस शासन को, जिसके वह अधीन है और न अपने सैनिकों पर अपना संकल्प प्रकाशित कर सकती है। यही कारण है कि वह किसी मुनशी को इस काम के लिये नियत नहीं करती है। किंतु यदि आप उत्सुक हैं कि यह विषय विशेष स्पष्टता के साथ आप पर प्रकट किया जाय, तो वह आप की सेवा में ऐसा सज्जन भेजेगी कि उससे जो बात आप पूछेंगे, उसका संतोष-जनक उत्तर वह आपको देगा। मैं तो इस कार्य के लिये इस कारण नहीं आ सकता कि जिस स्थान पर मैं नियुक्त हूँ, उससे मेरा छुटकारा नहीं है। यद्यपि मैं ऐसी टूटी फूटी अँगरेजी लिख तो लेता हूँ, किंतु बातचीत करने में मैं न अँगरेजी का एक शब्द बोल सकता हूँ

कामातुर होकर दूसरे मनुष्य से विवाह कर लिया था, वास्तव में वही बेगम के दुःख सहन करने का मूल कारण हुआ।

और न समझ ही सकता हूँ; क्योंकि उसके उच्चारण से नितांत अनभिज्ञ हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो उपर्युक्त सज्जन टप्पल से आप की सेवा में भिजवा दिए जायँ जहाँ कि वे नौकरी पर हैं। आपकी मित्रता से बेगम को आशा है कि वह मार्ग निकल आवेगा जिससे उसके यहाँ से निकल भागने की इच्छा पूरी हो। वह अनुगृहीत होगा यदि उसे मार्ग बताने की आप सूचना देंगे; तथा उन सज्जनों के पते से भी सूचित करेंगे जिनके साथ आपके द्वारा उनके सम्बन्ध में लिखा पढ़ी की जाय। प्रणाम।

आपका सेवक—

ए० ली वैसौल्ट।

परंतु जब उन्होंने देखा कि कर्नल मैक् ग्वान शाही जागीरदार को भगाने में सहायता देने में आनाकानी करता है, तब फिर ली वैस्यू ने अप्रैल सन् १७९५ में सीधे गवरनर जनरल को लिखा और उसके साथ बेगम का फारसी खरीता भी भेजा, जिसका यह अनुवाद है—

(तारीख २२ अप्रैल सन् १७९५ को मिला)

मृतक शमरू की विधवा सेवडफिसा बेगम की ओर से

मैं अँगरेजी गवर्नमेंट की रक्षा में, ऐसे किसी स्थान में जो बंगाल अथवा बिहार में नियत किया जाय, रहना चाहती हूँ। मैं कौंसिल के सदस्यों की आज्ञा के अनुसार पूर्णतया कार्य करूँगी और अपने आप को प्रजा समझूँगी। मेरा जीवन अब तक कठिनाइयों और विपत्तियों का केंद्र बना रहा है; और अब उनकी समाप्ति होनेवाली है। मैं अधिक समय तक इन कठिनाइयों को सहन करने में असमर्थ हूँ। अतएव मैं यहाँ से चली जाना और अपना शेष जीवन अँगरेजी गवर्नमेंट की कौंसिल की छत्रछाया में व्यतीत करना चाहती हूँ। मैं भगवान से सदैव प्रार्थना करती हूँ कि वह अँगरेजी गवर्नमेंट की उन्नति करे और उनकी संख्या अधिक करे जो केवल मेरे आश्रय की आशा है।

अथवा यों कहो कि इस यन्त्रणा द्वारा आगे के लिये उसको भली भाँति सावधान और सचेत रहने की पूर्ण शिक्षा मिल

कौंसिल का निश्चय

निश्चय हुआ कि गवर्नर जनरल से प्रार्थना की जाय कि उसके पत्र के उत्तर में समरू की विधवा को सूचना दें कि यदि वह उचित समझे तो उसे अपने कुटुंब और आत्मिक अनुचरों के सहित पटने में रहने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। किंतु कोई अपनी अथवा सैनिक सामग्री साथ लाना इस अनुशासन के विरुद्ध है।

इस निश्चय के अनुसार भारत के गवरनर जनरल सर जान शोर महोदय ने मेसर पामर को, जो अँगरेजों के विश्वासनीय एजंट के रूप में दौलतराव सिंधिया के साथ था, जिनके पास सलतनत की विजारत की मोहर रहती थी और जो उस समय दिल्ली के समीप शिविर में थे, लिखा कि वह बीच में पड़कर सिंधिया से बेगम का अर्थ सिद्ध करा दे। सिंधिया ने इस काम के लिये बारह लाख रुपए माँगे। परंतु बेगम ने उलटे अपना सैनिक भार सौंपने के बदले में चार लाख रुपए शस्त्रों और वर्दी आदि सामग्री के मूल्य के और माँगे।

इसका यह परिणाम हुआ कि गुप्त रूप से भाग जाने के निमित्त सिंधिया की आज्ञा मिल गई। उस समय इङ्गलैंड और फ्रांस के मध्य लड़ाई होने के कारण ली-वेस्यू के साथ युद्ध के कैदी का सा व्यवहार किया जाना निश्चित हुआ; और उसको यह भी आज्ञा हो गई कि अपनी स्त्री को भी अपने पास चंद्रनगर में रक्खे।

मई सन् १७९५ के अंत में जफरयाब खाँ विद्रोही सेना को अपनी अध्यक्षता में लेकर दिल्ली से बाहर निकल पड़ा और न जाने मूर्खतावश क्यों उसने अपने वैरी के भागकर निकल जाने के मार्ग में रोड़े खड़े करना ठीक समझा। उसको तो चाहिए था कि खुशी मनाता कि मेरा शत्रु राजपाट छोड़कर अपने आप भागा जाता है और उसको चले जाने का सर्व प्रकार अवकाश और अवसर देता। उधर ली वेस्यू को जो खबर मिली कि जफरयाब खाँ हमारे ऊपर चढ़कर आ रहा है, तो उसने झटपट जाने की तैयारी की और अपनी स्त्री को साथ लेकर निकल

भागा। बेगम पालकी में सवार थी और उसका पति शस्त्र धारण किए घोड़े पर था। दोनों में यह निश्चय हो गया था कि यदि उनमें से कोई एक मर जाय, तो उसकी मृत्यु की नज़दीक होनेपर दूसरा भी अपने प्राण त्याग देगा और कदापि जीता न रहेगा। सरधने में जो सेना थी, या तो उसका कुछ दिल्ली के विद्रोहियों ने कुछ दे दिलाकर भर दिया था, अथवा इस विचार से कि दिल्लीवालों के आने से पहले इन्हीं लूट से अपने जेब भर लें, तुरंत बेगम और उसके पति के पीछे दौड़ पड़ी। स्लीमेन साहब ने आँख से देखनेवाले साक्षियों से पूछ पूछकर इस घटना का वर्णन लिखा है। उन्होंने अपने अनुसन्धान का फल इन शब्दों में दिया है—

"ये मेरठ को जानेवाली सड़क पर तीन मील पहुँचे थे कि जब उन्होंने देखा कि पल्टन पालकी पर झपट रही है। ली वैस्सू ने अपनी पिस्तौल निकाली और पालकी के कहारों पर उसको ताक लगाई। वह सुगमतापूर्वक घोड़े को दौड़ाकर अपनी जान बचा लेता, परंतु उसने अपनी प्राणप्यारी को अकेली छोड़ना न चाहा। यहाँ तक कि सिपाही पीछे समीप आ गए। दासियों ने रोना और चिल्लाना आरंभ किया। ली वैस्सू ने जब डोली के भीतर देखा तो उसे यह दृष्टिगोचर हुआ कि जिस श्वेत चादर से बेगम की छाती ढकी हुई थी, वह खून से सनी हुई है। बेगम ने अपने कलेजे में छुरी मारी थी; परंतु छुरी छाती की एक हड्डी में लगी और फिर उसे मारने का साहस न हुआ। उसके पति ने अपनी पिस्तौल अपनी कनपटी पर रखकर चला दी। गोली सिर से पार निकल गई और वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।"

इन शोकजनक बातों का इससे कुछ भिन्न वृत्तान्त मानस ने अपने जीवन-चरित्र लेखक को बताया है। उसके विचार में बेगम ने अपने पति को जान बूझकर इस प्रकार धोखा दिया जिससे उसने अपनी आत्महत्या कर ली। मानस का कथन है कि ली वैस्सू सवारी में सब से आगे सिरे पर घोड़े पर चला हुआ था और उसने पीछे से यह सन्देश पाने पर कि बेगम ने छुरी मारकर अपने प्राण दे दिए और

के पथ से उसके पाँव नहीं डगमगाए। नवाब मुजफ़्फ़र उद्दौला जफ़रयाब खाँ दिल्ली में आकर अपने पिता समरू की गद्दी

उसके खून से सने वस्त्र देखकर अपनी जान अपने आप दे दी। परंतु यह कठिन प्रतीत होता है कि उस जैसे स्वभाव का मनुष्य ऐसे विषम अवसर पर अपनी स्त्री के पास से पृथक् हो गया हो। थामस के लिये तो स्वाभाविक है कि वह बेगम के विषय में अशुभ भावना करे; किन्तु इस घटना के पीछे जो बातें हुई, उनसे इसके मिथ्या होने में लेशमात्र शंका नहीं रहती कि बेगम ने विद्रोहियों से मिलकर ऐसा अनर्थ कराया था। बेगम को किले में वापस लाया गया, उससे सब सम्पति छीन ली गई और तोप के नीचे उसे बाँध दिया गया। उसी दशा में वह कई दिनों तक रही। वह भूख प्यास के मारे मर जाती, यदि उसकी हितकारी आया ऐसे समय में उसकी सुधि न लेती।

"ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी" नामक अँगरेजी पुस्तक के लेखक बेल साहब ने इस सम्बन्ध में अपनी पुस्तक में जो लिखा है, वह उससे कहीं बढ़चढ़ कर है जो थामस ने अपनी जीवनी में लिखाया है। बेल साहिब लिखते हैं—

"बेगम का दूसरा पति एक फरासीसी धनी योद्धा लीवैस्यूल्ट (Le Vassault) नामक था जो उसकी एक छोटी टुकड़ी का सेनापति था। इस मनुष्य के विषय में एक विलक्षण बात कही जाती है जो यदि सत्य हो तो बहुत ही आश्चर्यजनक है। स्किनर कहा करता था कि बेगम का पति धनी, शक्तिशाली और बड़ी सेना का स्वामी बन गया था और उसके अधिकार का बेगम को इतना लोभ था कि वह इसमें किसी को अपना साझी करना नहीं चाहती थी; इसलिये अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये उसने यह कार्य किया। जब उसके पति के बाडी गार्ड (शरीर-रक्षक सेना) में वेतन न मिलने से विद्रोह के चिह्न प्रकट हुए थे, तब बेगम ने जिसका वय लगभग पचीस वर्ष के था, अपने पति को उसका बढ़ा चढ़ाकर डर दिखलाया तथा यह सम्वाद उसके पास पहुँचवा दिया कि बागियों ने यह प्रपंच रचा है कि तुम्हें पकड़कर कैद कर देंगे और मुझ को अपमानित करेंगे। अतएव

पर बैठा, जिसको उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी विमाता बैठकर सुशोभित किए हुए थी और जो इस समय कारागार में पड़ी पड़ी अपनी आपत्ति के दिन काट रही थी। यह सब उत्पात और उपद्रव अक्टूबर सन् १७९५ में हुआ था। बेगम के दुर्भाग्य का समय व्यतीत होने पर आया और उसके अच्छे दिन फिर आए। उसे ऐसे उपाय शीघ्र प्राप्त हुए कि उसने सिंधिया और दिल्ली के मराठे शासक तथा जार्ज थामस को जो इस समय दिल्ली के मराठा अधिकारी के अधीन था, अपने कष्टों की कथा लिखी। जार्ज थामस पर बेगम ने यह भी प्रकट किया था कि मुझे

दम्पती ने सिपाहियों के कोप से बचने का प्रबंध किया और रात को पालकियों में गुप्त रूप से अपने महल से भाग निकले। प्रातःकाल के लगभग अनुचरों ने बड़ा डर दिखाकर पुकार मचाई कि हमारा पीछा किया जा रहा है; और बेगम ने झूठमूठ अपनी रोनी सूरत बनाकर प्रतिज्ञा की कि यदि हमारे साथ के पहरेवालों की हार हो जायगी, तो मैं अपने कलेजे में कटारी मार लूँगी। उसके प्रेमी पति ने, जिसकी ओर से आशा थी कि वह अवश्य इकरार कर बैठेगा, यह शपथ खाई कि यदि तुम मर जाओगी, तो फिर मैं भी नहीं जीऊँगा। थोड़ी देर पीछे कपटी बागी आ गए और लड़ाई होने पर नौकरों को पीछे हटाया गया और कहारों से पालकी नीचे रखवा दी गई। उसी समय ली वैसू ने एक चीख सुनी और उसकी स्त्री की दासी उसके पास चिल्लाती हुई दौड़ी आई कि मेरी स्वामिनी कटारी मारकर मर गई। पति ने अपने वचनानुसार तत्काल अपनी पिस्तौल निकाली और अपना सिर उड़ा दिया।"

बेल साहब ने जो वृत्तांत लिखा है, वह सच हो अथवा झूठ, इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु सन् १७९५ में बेगम की अवस्था चालीस वर्ष से ऊपर थी। फिर उन्होंने न जाने पचीस वर्ष क्यों लिखी है।

अपने जीवन की आशा नहीं। किसी के विष देने अथवा और तरह से मरवा डालने का भय रहता है। आप सहायतार्थ यहाँ पधारें। यदि फिर मुझे अपनी जागीर पर अधिकार दिला दिया जाय, तो मराठे इसके बदले में मुझसे जितना माँगेंगे, उतना ही रुपया मैं उनकी भेंट करूँगी। जार्ज थामस ने जो बेगम का पत्र पढ़ा, तो उस में दारुण कठोरता और अन्याय होने का जो ब्योरेवार वर्णन लिखा था, उसको पढ़कर उसके हृदय पर बड़ी चोट लगी। निस्संदेह बेगम की आपदा में उसका भी हाथ था और बेगम ने पहले उसके साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं किया था; तो भी वह उसकी पुरानी स्वामिनी थी। वह एक बार उसे अपनी प्राण प्यारी भार्या बनाने का भी इच्छुक हुआ था। उसने बागियों को स्पष्ट लिखा कि तुमने जो बेगम को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाए हैं, यदि उनके कारण उसकी मृत्यु हो गई अथवा तुम इसी प्रकार झगड़ा करते रहे, तो फिर समझ लेना कि बादशाह पटेल अर्थात् सिंधिया तुमसे अप्रसन्न हो जायँगे, तुम्हारी सेना को तोड़ देंगे; और वह भूमि जो तुम्हें व्ययार्थ दे रखी है, वह सब फिर खालसा हो जायगी। फिर उसने १,२०,०००) रुपए ऊपरी दुआब के मराठा शासक बापूराव सिंधिया को देने का वचन देकर सरधने को कुछ सेना भिजवाई। दूसरी ओर से इसी प्रकार की धमकियाँ सिंधिया के अधिकारियों ने उनके पास भेजीं। अतः उनकी आँखें खुल गईं और बुद्धि ठिकाने आ गई।

उधर थोड़े ही दिनों में अफसर और सिपाही ज़फ़रयाब खाँ की ओर से उकता गए और हताश हो गए; क्योंकि वह मनुष्य सर्वथा निकम्मा, निर्बुद्धि और दुराचारी था। थोड़े दिनों में ही अधिकार मिलने के पश्चात् भोग विलास में फँस गया। अफसरों में सेलूर और कुछ ऐसे सज्जन भी थे जो बेगम के मित्र और शुभचिन्तक थे और जिन्होंने विद्रोह में योग नहीं दिया था। उन्होंने अपने साथी अफसरों को समझाने बुझाने और उन्हें सीधे मार्ग पर लाने का बहुत प्रयत्न किया। इससे सरधने की जागीर में सुगमतापूर्वक जो परिवर्तन हुआ था, वह मिट गया और पूर्व की सी परिस्थिति के चिह्न दिखाई देने लगे। दिल्ली के मराठा शासक की आज्ञा के अनुसार जार्ज थामस ने सरधने को कूच किया। जब यह समाचार पहुँचा कि वह खतौली तक आ पहुँचा है, तब सेना के बड़े भाग ने तो उसी वक्त सुनकर यह प्रकट कर दिया कि हम तो अब बेगम के पक्ष में हैं। थामस भी शीघ्र ही आ पहुँचा। उसके साथ उसकी अर्दली के ५० विश्वसनीय सवार थे। इन थोड़े से मनुष्यों को तो ज़फ़रयाब खाँ के सिपाही मार डालते; परन्तु ४०० पल्टन के सिपाही परे बाँधे जार्ज थामस की कुमक को पहुँच गए, जिससे उनके छक्के छूट गए और उन्होंने यह जाना कि मराठों की समस्त सेना बेगम की सहायता के लिये आ रही है। पुनः जफ़रयाब खाँ को पकड़कर कैद किया गया*।

* कीनी साहिब ने इसका वृत्तांत इस प्रकार लिखा है—

सेना से राजभक्त होने की शपथ खिलाई गई तथा एक शपथपत्र लिखाया गया, जिस पर तीस युरोपियनों ने यह प्रतिज्ञा करके हस्ताक्षर किया कि हम ईश्वर और ईसा मसीह को अपना साक्षी करके इकरार करते हैं कि इससे आगे हम अपने मन और आत्मा से बेगम के आज्ञाकारी बने रहेंगे; और उसके अतिरिक्त और किसी को अपना सेनापति नहीं समझेंगे। इस पुनराभिषेक के उत्सव के समय सिंधिया का भी एक अफ़सर उपस्थित हुआ था जिसको डेढ़ लाख रुपए जुर्माने के बेगम को देने पड़े। अब सेलूर को सेना का अध्यक्ष बनाया गया। जार्ज थामस को बेगम ने एक युवती सुकुमारी मेरिया (Marla) जो फरासीसी जाति की उसकी मुख्य खवास थी, ब्याह दी और उसे दुलहन के साथ बहुत सा दहेज भी दिया। अपनी तनिक सी चूक से नाना प्रकार के कष्ट और अपमान सहने पर जब बेगम ईश्वर की कृपा से अपने पुराने मित्र जार्ज थामस की सहायता से फिर बहाल हो गई, तब उसने यह बात गाँठ बाँध ली और पुनः मरने के समय तक नारी

जार्ज थामस धावा करके सरधने आया जहाँ उसने अपने अर्दली के रिसाले के साथ, जो उन दिनों प्रत्येक नायक की सवारी का अंग होता था, नवाब जफरयाब खाँ पर अचानक टूट पड़ा। सिपाहियों को जो अपने अफसरों से तंग आ गए थे और जिन्हें जफ़रयाब खाँ की ओर से अब कुछ आशा नहीं थी, कुछ घूस देकर और कुछ डाँट डपटकर जफरयाब को बेगम को कैद में दे दिया; और जो कुछ उसके पास था, वह सब छीन लिया और हिरासत में करके दिल्ली भेज दिया।

होने पर भी कदापि अपनी दुर्बलता का परिचय नहीं दिया और अपने राज्य तथा अधिकार को जोखों में नहीं डाला। और न इसके पीछे कभी उसके आधिपत्य में फिर कुछ क्षति ही हुई। इसके उपरान्त निरन्तर उसका ध्यान विशेषतः अपनी लम्बी चौड़ी रियासत के प्रबन्ध करने में लगा रहा।

मराठों की सेवा

सन् १८०० में बेगम सिंधिया से भेंट करने के आशय से आगरे गई। सिंधिया वजीर तो कहलाता ही था, परंतु अब वास्तव में वही हिंदुस्तान का सर्वमान्य शासक था। सिंधिया ने बहुत सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और उसकी योग्यता के विषय में अपना उत्कृष्ट मत निश्चित किया। अतः उसका सत्व और अधिकार समस्त वस्तुओं पर, जो उसके वश में थीं, निर्धारित किया। सिंधिया ने उसको पश्चिमी सीमा की सिक्खों की चढ़ाइयों से रक्षा करने का भार सौंपा; क्योंकि उस समय सिक्खों का बड़ा भय था और वे चारो ओर धावे मारते फिरते थे।

जब सन् १८०२ में अँगरेजों ने मराठों के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा की, तब उसकी तीन पल्टनों ने सेलूर की अधीनता में सिंधिया के सहायतार्थ दक्षिण को गमन किया; क्योंकि उस निश्चय के अनुसार, जो बेगम का सिंधिया से हुआ था, तीन पल्टनें और १२ तोपें अपने व्यय पर लड़ाई में भेजने का वच-

थी। उनके चंबल पार करने पर सिंधिया की ओर से विशेष वृत्ति मिलती थी। बेगम ने दो पल्टनें पीछे और भेजीं जो असाई की लड़ाई में सम्मिलित हुईं, जिसमें अँगरेजी सेना कर्नल वैलेजली (Colonel Wellesley) के अधीन लड़ी थी जो पीछे प्रसिद्ध ड्यूक आफ वैलिंगटन (Duke of Wellington) कहलाया। यह बात प्रशंसनीय है कि सिंधिया की ओर की सेना में केवल अकेली बेगम की वाहिनी ही ऐसी निकली जो युद्ध क्षेत्र से पूर्ण और अखण्डित रूप में बची, यद्यपि उस पर बहुत कुछ ज़ोर पड़ा था; क्योंकि कई बार अँगरेजी रिसाले ने उस पर धावा किया, परन्तु उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। बेगम की इन्हीं पल्टनों के वेतन चुकाने के लिये सिंधाने, पहामऊ और मुर्थल के परगने उसको दिए गए।

अंगरेजी गवर्नमेंट से मित्रता।

ब्रिटिश गवर्नमेंट और समरू तथा बेगम समरू के बीच में बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। पटने की घटना के कारण अंगरेज समरू की जान के सदैव दुशमन बने रहे और उन्होंने उसको पकड़ने और दंड देने के लिये बड़ा प्रयत्न किया। चाहे उसे कोई तोता चशम कहे, परंतु इसमें संदेह नहीं कि वह अपनी परिस्थिति समझने और अपनी रक्षा करने में बड़ा सावधान और चौकस रहा और अंतकाल तक वह अपने शत्रुओं के हाथ न आया।

वेगम भी अपने हित और अनहित के समझने में अपने पति से कुछ कम कुशल न थी। समरू के समय की कुछ और दशा थी। परंतु वेगम के काल में पहली सी स्थिति नहीं रही थी; उससे भिन्न हो गई थी, इसके अतिरिक्त अँगरेजों की समरू पर जैसे तीव्र दृष्टि थी, वैसी वेगम पर नहीं थी।

पहले कहा जा चुका है कि अँगरेजों और सिंधिया के बीच जो असाई की लड़ाई हुई थी, उसमें वेगम की सेना सिंधिया की ओर से अँगरेजों के साथ लड़ी थी। अँगरेजों को उसमें विजय प्राप्त हुई। इसके अनन्तर उत्तरीय भारत की राजनीतिक परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया। मुगल साम्राज्य नष्टप्राय हो चुका था। शासन की बागडोर सिंधिया के हाथ में थी। परंतु असाई युद्ध में पराजय होने से मराठों की शक्ति टूट गई और अँगरेजों के अधिकार की वृद्धि होने लगी।

वेगम हवा का रुख़ पहचानती थी। उसने सब प्रकार सोच विचार करके समझ लिया कि अब अंगरेजों की राजशक्ति का पलड़ा बहुत भारी हो गया है। इनसे मेल मिलाप किए बिना मेरा निर्वाह नहीं हो सकता; इसलिये सन् १८०८ में उसने ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ सन्धि कर ली, जिसके अनुसार उसका राज्य और अधिकार उसके जीवनपर्य्यन्त बदस्तूर उसी के लिये बहाल और बरकरार रक्खा गया। इस सन्धि की प्रतिज्ञाओं का वेगम ने सदैव पूर्ण रूप से पालन किया। वेगम की योग्यता और बुद्धिमत्ता से ही

उसकी जागीर बची रही; और नहीं तो वह समय ऐसी हलचल और उपद्रवों का था कि जिसमें बड़ी बड़ी शक्तिशालिनी पुरानी रियासतें नष्ट हो गईं। अब उसकी सेना को अधिकतर बाहर जाने का काम नहीं रहता था। उसकी सेवा का सरधने के राज्य के भीतर ही शान्ति-स्थापन करने में उपयोग किया जाता था। बेगम के पति समरू ने भरतपुर के जाटों की नौकरी राजा सूर्य्यमल, राजा जवाहरसिंह और राजा नवलसिंह के शासनकाल में की थी। पीछे जब वह नवाब नजफ़खाँ की सेवा में गया, तब उसने भरतपुर पर भी चढ़ाई की थी।

सन् १८२५ में जब भरतपुर के राजा के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई हुई, तब बेगम की पल्टनें भी सहायतार्थ बुलाई गईं। बेगम स्वयं अपनी सेना लेकर गई। जब लार्ड लेक (Lord Lake) ने किले पर गोले बरसाकर उस पर घेरा डाला, तब बेगम उस लड़ाई में उपस्थित थीं। ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से उसे तुरन्त कुमक पहुँचाने, उत्तम सेवा करने, और दीर्घ कठिन युद्ध में आप शिविर में उपस्थित रहकर आदर्श राजभक्ति प्रकट करने के लिये धन्यवाद मिला था।

समरू की सन्तति

पहले लिखा जा चुका है कि बेगम के दो पतियों (अर्थात् समरू और ली वैस्यू) से विवाह हुए; परंतु उसकी

कोख नहीं खुली। समरू की जेठी स्त्री से ज़फरयाब खाँ नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसके कलंकित चरित्र का वर्णन अन्यत्र हो चुका है कि किस प्रकार उसने अपनी विमाता के साथ असद्व्यवहार और अनर्थ किया। इतने पर भी बेगम ने उसे मन से नहीं त्यागा। उसको उसके अपराध का दंड अवश्य दिया गया, जो क्या राजकीय शासन की दृष्टि से और क्या मातृ कर्तव्य के विचार से, अपने पुत्र को आगे को सुधारने के लिये सर्वथा उचित और शिक्षादायक था। जफरयाब खाँ को क्रान्ति के मिटने के पीछे क़ैद करके दिल्ली भेज दिया गया था जहाँ उसकी क़ैद तो नाम मात्र ही थी और वह खुल्लमखुल्ला बेगम की कोठी में निवास करता था। सन् १८०३ के आरम्भ में हैजे ने उसे ग्रस लिया जिससे उसके प्राण पखेरू शरीर के पिंजरे से उड़ गए। उसकी लाश आगरे में पहुँचाई गई और उसके पिता के बराबर दफन की गई। ज़फरयाब खाँ का कप्तान ली फेवरे (Captain Le Fevre) की पुत्री, जूलिया एनी (Julia Anne) नामक से विवाह हुआ था जिससे एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम एेलासिअस (Alcsius) था और पुत्री का नाम जूलिया ऐनी था और यही नाम उसकी माता का भी था। एेलासिअस अपने पिता जफरयाब खाँ के जीते तारीख ३० अक्तूबर सन् १८०२ को मर गया जो आगरे के पुराने रोमन केथलिक गिरजा में दफन हुआ, जैसा कि उसकी समाधि

के लेख से प्रतीत होता है। ज़फरयाब खाँ की पुत्री जूलिया ऐनी का जन्म तारीख १६ नवम्बर १७८६ को हुआ था और उसका विवाह तारीख ८ अक्तूबर सन् १८०६ को कर्नल डायस (Col. Dyce) से हुआ जिसने सेलूर के सेवा परित्याग करने पर बेगम की सेना की अध्यक्षता ग्रहण की। जूलिया ऐनी के गर्भ से बहुत से बालक पैदा हुए जिनमें से कितने ही बाल्यावस्था में मर गए। तारीख १३ जून सन् १८२० को जब श्रीमती डायस (जूलिया ऐनी) की मृत्यु हुई, तो उस समय उसका एक पुत्र और दो पुत्रियाँ जीती थीं। बेगम ने इन तीनों का अपने पेट से उत्पन्न हुए बालकों के समान लालन पालन किया। पुत्रियाँ जिनका नाम जार्जियाना और ऐना मेरया (Georgiana and Anna Maria) था, जब बड़ी हो गईं, तब उनका विवाह तारीख ३ अक्तूबर सन् १८३१ को सोलरोली और ट्रोप (Messrs Solaroli and Troup) के साथ कर दिया गया। ये दोनों युरोपियन अफसर बेगम की सेना के ही थे। रहा पुत्र; उसका नाम डेविड ओक्टरलोनी डायस सोम्बरे (David Octerlony Dyce Sombre) रक्खा गया जो वाल्टर रेन्हार्ड अर्थात् समरू का पड़पोता हुआ, और जिसका जन्म तारीख १८ दिसम्बर १८०८ को हुआ था। उसे बेगम ने आप गोद ले लिया और उसे अपना उत्तराधिकारी नियत किया*।

---

* बेगम की मृत्यु के पीछे डायस सोम्बरे यूरोप को गया। जब बेगम की

धार्मिक भावना

बेगम समरू का एक मुसलमान के घर में जन्म हुआ था और लगभग पंद्रह सोलह वर्ष तक पैतृक गृह में इसलाम की रीति के अनुसार वह पली और बड़ी हुई थी। यद्यपि उसका पति समरू विदेशी और विधर्मी था, तथापि बेगम का विवाह उसके साथ ईसाई धर्म की मर्यादा के अनुसार नहीं हुआ और न उसके जीवन में कभी बेगम के धर्म बदलने का प्रश्न उठा। समरू स्वयं रोमन केथलिक सम्प्रदाय के ईसाई

मृत्यु की तीसरी बर्सी ता० २७ जनवरी सन् १८३९ को मनाई गई, तो उस समय डायस सोम्बरे रोम में था। उसने वहाँ सब कृत्य (प्रेतकर्म) ऐसी भाँति से किए जो उसकी उच्च पदवी के योग्य और अपने स्नेह के अनुसार थे। कार्सो (Corso) स्थान का आलीशान गिरजा इस कार्य के लिये चुना गया और उसे सब प्रकार सजाया गया। गिरजा के केन्द्र में एक बहुत बड़ा स्मारक स्तम्भ बनाया गया। हाई मास (High Mass) का महोत्सव भी हुआ जिसमें बहुत ही उत्कृष्ट ढंग का गाना बजाना उत्तम रीति से हुआ।

फिर मि० डायस सोम्बरे इंगलैण्ड गया। वहाँ उसने ता० २६ सितम्बर १८४० को माननीय मेरी ऐना जेरविस (Honourable Mary Anna Jervis) से विवाह किया, परन्तु उनसे कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई। मि० डायस सोम्बरे की मृत्यु ता० १ जुलाई १८५१ को लंदन में हुई और उनका शव सरधने लाकर उसकी संरक्षिका के पास दफन किया गया। पुराने मैं किस्से सुनकर ला० चिरंजीलाल ने अपने ग्र० में यह लिखा है—"बेगम साहबा ने अपने लड़के को जिसका नाम डेविड डायस था, बदचलनी का दिखावा करने पर तोप से उड़ा दिया था।"

धर्म का अनुयायी था और यथासम्भव वह उसकी विधि के अनुसार अपनी उपासना करता था। आश्चर्य्य नहीं कि बेगम के चित्त का झुकाव भी पीछे इधर हो गया: और शनैः शनैः बढ़कर उसमें इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि वह अपने सौतेले पुत्र ज़फरयाब ख़ाँ सहित सन् १७८१ में ईसाई हो गई। इस धर्म में प्रवेश होने के पश्चात् तो वह ऐसी उसकी भक्त और उपासक बनी और उसने अपने शेष जीवन पर्यन्त तन, मन और धन से निरन्तर उसकी ऐसी पूर्ण सेवा की कि हिन्दुस्तान के रोमन कैथलिक ईसाइयों में सदैव उसका नाम और यश स्थिर रहेगा। उसने इस संबंध में जो कार्य्य किए वे बड़े प्रशंसनीय और महत्वपूर्ण थे। बेगम ने अपना शील आदर्श रूप में प्रकट करके और बहुधा लोगों को उत्साह और प्रेरणा देकर ईसाई धर्म में मिला लिया। देशी ईसाइयों की संख्या बेगम के समय में ही सरधने में दो सहस्र तक पहुँच गई थी। तिब्बत देश की ईसाई धर्म की संस्था (Thibetan Mission) के केपूशिन फादर्ज़ (Capuchin Fathers) * अर्थात् पादरी सदैव उसके गृह पर आकर प्रत्येक अवसर पर धार्मिक सेवा कराया करते थे। परन्तु राजसेवा में निरन्तर प्रवृत्त रहने के कारण बेगम का एक स्थान में ठहरना नहीं

---

* रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के वे पादरी जो सिर पर कनटोप की भाँति एक वस्त्र पहने होते हैं। इस सम्प्रदाय की सेन्ट फ्रांसिस ऑफ एसिसी (St. Francis of Assisi) ने ११८२–१२२६ में स्थापना की थी।

होता था। उसे सदैव ठौर ठौर फिरना पड़ता था। इसलिये वह उपासनार्थ अब तक किसी गिरजे के बनवाने का प्रबन्ध न कर सकी थी। इस न्यूनता की पूर्ति करने के लिये उसने सरधने में एक गिरजा बनवाने की अपने मन में ठान ली और उसने उसके नकशे की तजवीज सोचने और पुनः उसे कार्य रूप में परिणत करने का सब भार अपने दरबार के एक अफसर मेजर एन्टोनिओ रेघेलीनी को, जो इटली देश के पडुआ स्थान का निवासी था, सौंप दिया।

बेगम ने तारीख १२ जनवरी सन् १८३४ को रोम के बड़े पादरी अर्थात् हिज़ होलीनेस पोप ग्रेगोरी सोलहवें के नाम जो पत्र भेजा था, उसका यहाँ अनुवाद दिया जाता है—

भगवन्,

मैं जोना समरू, जो सर्व साधारण में हर हाईनेस बेगम समरू के नाम और उपाधि से प्रसिद्ध हूँ, श्री पूज्यवर के सिंहासन के निकट पहुँचने के लिये आज्ञा माँगने की सविनय प्रार्थना करती हूँ और सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को, जिसने मुझे सत्य का मार्ग दिखाने और इस योग्य करने के लिये, कि जिससे उसके पवित्र नाम के सन्मानार्थ मैंने जो किञ्चित् मात्र किया है और आगे करने की चेष्टा कर रही हूँ, अपना कोटिशः धन्यवाद समर्पण करती हूँ। वह परमात्मा, जिसे यद्यपि मृत्यु का कलेवा होनेवाले जीवों से किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है, उनसे प्रसन्न होता

है जो सत्य और निर्लेप भाव से उसकी सेवा करते हैं। श्री पूज्यवर के सिंहासन के नीचे अपनी अल्प भेंट, जो इसके साथ लन्दन के नाम की हुन्डी जो डेढ़ लाख सरकारी रुपए अथवा तेरह सहस्र सात सौ चार पौंड तीन शिलिंग और चार पेंस अँग्रेजी सिक्के की है, रखने की आज्ञा माँगने की विनती करती हूँ। यह भेंट क्या है मानो उस पवित्र धर्म के लिये जिसकी मैं अनुयायिनी हूँ, मेरे सच्चे प्रेम का एक चिह्न है; और बहुत बहुत अधीनता के साथ मेरी प्रार्थना है कि इसको श्री पूज्यवर जिस प्रकार उचित समझें, पुण्य दान में व्यय करें।

मैं इस अवसर पर श्री पूज्यवर की सेवा में एक बड़ा चित्र भेजती हूँ जिसको इस देश में यहीं के एक निवासी ने बनाया है (उसके बनाने में जो भूलें रह गई हों, उन सब के लिये क्षमा प्रदान किये जाने की प्रर्थना है)। किंतु जो दृश्य उसमें हैं, वे भली भाँति मेरे नवीन गिरजे की प्रतिष्ठा को प्रकट करते हैं। इस गिरजे को सर्वथा मैंने ही अपनी राजधानी में बनवाया है जिसको मैंने पवित्र कुँआरी मरियम देवी के नाम पर अर्पण कर दिया है। साथ में जो नामावली भेजी जाती है, उससे वे विविध सज्जन श्रीपूज्यवर को विदित होंगे जिन जिन की उसमें तसवीरें अंकित हुई हैं।

इसी मौके पर मैं अपने गिरजे की पाँच छपी हुई तसवीरें श्री पूज्यवर के लिये भेजती हूँ जिसके विषय में मुझे गौरव

साथ कहना पड़ता है कि यह कथन किया जाता है कि वह भारत में सर्वोत्तम और अद्वितीय है।......भगवान् के बड़े भक्त पादरी जूलियस सीजर की ओर जो इस देश में हमारे पवित्र धर्म के बहुत काल से उपदेशक रहे हैं, श्री पूज्यवर का विशेष अनुकूल ध्यान दिलाने के लिये अति नम्रता से आज्ञा माँगने की विनय करती हूँ।..........वे मेरे घराने के पादरी हैं; और यह मेरा निश्चय है कि वे एक पवित्रात्मा और सीधे, सच्चे, बहुत बड़े गुणी और उच्च योग्य पुरुष हैं। उन्हें भारत में रहते सहते अट्ठाईस वर्ष के लगभग हो गए हैं, और हम सब उनको बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। अतः मैं अति अधीनतापूर्वक सिफ़ारिश करती हूँ कि कि उन्हें सरधने के बिशप की पदवी प्रदान कर दी जाय।

यदि परमेश्वर ने मुझे जीता रखा तो मैं श्री पूज्यवर के उत्तर की चिन्तापूर्वक बाट देखूँगी। मैं चाहती हूँ कि जवाब अँगरेजी भाषा में आवे। मैं तो यहाँ तक कहने का साहस करती हूँ कि पूज्यवर की ओर से पत्र प्राप्त करने के हेतु मेरे जीवन में दस वर्ष और बढ़ जायँगे; और मुझे इस बात के जानने से तृप्ति होगी कि मेरी समस्त प्रार्थनाएँ स्वीकृत हो गईं। मैं अपने लिये श्रीपूज्यवर से यही प्रार्थना करती हूँ कि जब जब भगवान् की पूजा करें, तो उस समय मेरे लिये उनसे प्रार्थना करें—वह ईश्वर जो हम सब का रचयिता है—और मेरे नित्य कल्याणार्थ आप अपना गुरुतर

आशीर्वाद भेज। इसके अतिरिक्त श्री पूज्यवर मेरे गिरजे के निमित्त कोई स्मारक चिह्न प्रदान करें तो उसका कृतज्ञता के साथ और महान् आदरपूर्वक स्वागत किया जायगा। मैं पुनः पुनः अपना अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रणाम श्रीपूज्यवर को भेजकर और अपनी समस्त विनतियों के लिये श्रीपूज्यवर का आशीर्वाद और कृपामय उत्तर पाने की प्रार्थना करके सविनय यह निवेदन करती हूँ कि मैं समस्त दासियों से अति लघु आज्ञाकारी दासी हूँ। सरधना (पश्चिमी भारत) बंगाल हाता तारीख १२ जनवरी १८३४।

बेगम की मृत्यु के थोड़े समय पूर्व ही उसे हिज होलीनेस पोप सोलहवें ग्रेगोरी के पत्र दो तावूतों के सहित जिनमें बहुत से सन्तों की हड्डियाँ थीं और अन्य बहुमूल्य स्मारक चिह्न मिले, जिनसे प्रतीत होता था कि बेगम ने उक्त पोप महोदय की सेवा में जो प्रार्थना की थी, वह स्वीकृत हुई। पोप ग्रेगोरी की मृत्यु के पश्चात् होली सी (Holy See) महोदय ने मुख्य हिन्दुस्तान के मिशन का काम, आगरे में उसका स्थान नियत करके, तिब्बती केपूशिन सम्प्रदाय के पादरियों को सौंप दिया। अतः सरधने का ईसाई धार्मिक समाज नियमपूर्वक शिक्षा पाने के लाभ में वंचित न रहा।

आचरण

अपने प्रारम्भिक शासन-काल में, जब कि बेगम को अपनी पल्टनों के साथ बहुधा इधर उधर यात्रा करनी पड़ती थी,

वह भारत की कुलीन स्त्रियों की प्रथा का पूर्ण रीति से अनुसरण करती थी; अर्थात् सर्व साधारण के सन्मुख नहीं निकलती थी। और जब उसे बाहर निकलने की आवश्यकता होती थी, तब वह अपने मुँह पर बुर्का डालकर निकलती थी। परदे की आड़ में वह आप दरबार करके सब बातें सुनती थी और सब प्रकार के राज कार्य का प्रबन्ध करती थी। तथापि उसने अपनी पति समक्ष की इस मर्यादा को स्थिर रक्खा कि अपने मेज पर वह अपने उच्च युरोपियन अफसरों को सदैव बुलाती रही। वे उन्हें अपने सरधने और दिल्ली के भवनों में बड़े बड़े भोज्यों में बुलाती थी, और बदले में गवर्नर जनरल और कमान्डर इन चीफ के निमन्त्रण स्वीकार करके उनकी कोठियों पर जाती थी। इतना करने पर भी बेगम ने अपने खाने पीने, वस्त्रों और अन्य प्रकार के रहन सहन में किंचिन्मात्र परिवर्तन नहीं किया। उस पत्र का यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा जो लार्ड बैन्टिक ने अपने हिंदुस्तान से जाने के समय उसको तारीख १७ मार्च सन् १८३५ को कलकत्ते से लिखा था; क्योंकि उक्त लार्ड चाल चलन के परखने में प्रवीण था और वह यथा योग्य उसकी कदर करना जानता था। उस पत्र में लिखा था—

माननीय मित्र,

मैं भारत से श्रीमती के शील के विषय में उस सच्चे सन्मान को प्रकट किए बिना जिसका भाव मेरे मन में है, विदा नहीं

हो सकता। स्वाभाविक दया और विशाल पुण्य दान ने, जिनके कारण आप सहस्रों की प्राणाधार बन गई हैं, मेरे चित्त में अत्यन्त प्रशंसा के विचार स्फुरित कर दिए हैं। मैं भरोसा रखता हूँ कि आप जो विधवाओं और अनाथों को धीरज बँधानेवाली, और अपने अगणित आश्रितों को निश्चित आश्रय देनेवाली हैं, वे अभी बहुत वर्षों तक सलामत रहेंगी। इंगलैएड के लिये मैं कल प्रातःकाल जहाज में बैठूँगा। मेरा आशीर्वाद और शुभ इच्छाएँ आप तथा उन सब अन्य सज्जनों के साथ स्थिर रहें जो आप के समान-भारतवासियों के कल्याणार्थ प्रयत्न करते रहते हैं।

अंतकाल

बेगम जिसकी छियासी* वर्ष की पूर्ण अवस्था हो चुकी थी और जिसने अपनी दीर्घ आयु में अनेक ऐसे ऐसे कार्य किए थे जिनके कारण उसका नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदैव बना रहेगा, अब उसकी मृत्यु के दिन भी निकट आ गए। थोड़े दिन रुग्न रहकर जिनमें अंत तक बराबर उसके होश हवास बने रहे थे, जेबउलनिसा ने शान्तिपूर्वक तारीख २७ जनवरी सन् १८३६ ई० तदनुसार तारीख ८ शव्वाल सन्

---

*ओरिएन्टल बायॉग्राफिकल डिक्शनरी के लेखक ने बेगम की आयु उसकी मृत्यु के समय अठासी वर्ष की लिखी है; किंतु इतनी इस कारण से नहीं हो सकती है कि यदि उसका जन्म सन् १७५० में होना भी मान लें जो सब से पहले निकलता है, तो भी छियासी वर्ष ही होते हैं।

१२५१ हिजरी को प्रातःकाल के समय अपने प्राण छोड़ दिए। उसकी कबर उसी विशाल और सुन्दर गिरजे में सरधने में बनी जिसको उसने बहुत श्रद्धा और सच्चे प्रेम से बनवाया था। उसकी मृत्यु के साल की सन् हिजरी की फारसी तारीख भाषा में एक विद्वान ने यह कही है—

شمرو بیگم عفیفۂ نیک سرشت ❀
جنت بگزید کرد آن جا منزل ❀
آمد زسما ندا بگوشم ناگاہ ❀
تاریخ وفات اوست داغے بردل ❀

अर्थात् पुण्यात्मा पतिव्रता समरू की बेगम ने स्वर्ग प्राप्त करके उसको अपना निवास स्थान बनाया। मेरे कान में अचानक यह आकाशवाणी आई कि उसकी मृत्यु की तारीख "दिल पर एक दाग" है। इससे अबजद कला की रीति से सन् १५५१ हि० निकलता है।

शासन नीति

समरू की बेगम का समय अब से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व का था। उस समय की दशा और वर्तमान काल की दशा में पृथ्वी और आकाश का सा अंतर हो गया है। इस बीच में निरन्तर ब्रिटिश शासन प्रणाली का प्रभुत्व भारत में रहने से केवल देश की गति ही में बिलकुल नवीन परिवर्तन नहीं हुआ, वरन् देशवासियों की प्रकृति और मति ने भी ऐसा विचित्र और अपूर्व पलटा खाया है कि जिसकी तुलना इनके पूर्वजों के

साध करने में बड़ा आश्चर्य और विस्मय होता है। नवीन सभ्यता के वशीभूत होकर भारत के प्राचीन पुरुषों की सन्तानें अपना अपनपा सर्वथा गँवाकर विदेशी रंग ढंग में पूर्णतया रंग गई हैं; इसलिये लोग उन उत्तम गुणों से विहीन हो गए जो उनके पूर्वजों में थे।

निस्सन्देह बेगम समरू में अनेक दोष और अवगुण भी विद्यमान थे; परन्तु इसको कोई अस्वीकार न करेगा कि उसमें बहुत से ऐसे असाधारण उत्कृष्ट गुण भी थे जिनके कारण वह अपने पति की उत्तराधिकारिणी हुई; और उनका अपने शासन काल में इस प्रकार परिचय दिया जिससे उसके कड़े से कड़े छिद्रान्वेषियों को भी उसकी योग्यता स्वीकार करनी पड़ी। अतएव उचित समझा जाता है कि जिन जिन महानुभावों की सम्मतियाँ हमको बेगम के विषय में जिस जिस भाषा में अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्राप्त हुई हैं, उनका यहाँ हिन्दी अनुवाद दे दें, ताकि उन्हें पढ़कर पाठक गण स्वयं उसके सम्बन्ध में स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत दृढ़ कर लें।

(१) आली गौहर हज़रत शाह आलम सानी के जीवन-चरित्र में लिखा है कि २४ रबी उल अव्वल सन जलूसी तदनुसार तारीख १६ अगस्त सन् १८०० ई० को ज़ेब उल निसा बेगम का वकील फ़रासू फिरंगी उपस्थित हुआ। उसकी भेंट स्वीकार करके बादशाह ने बेगम को यह लिखवा भेजा कि यद्यपि तुम स्त्री हो, तथापि ऐसे योग्य कार्य कर

दिखाती हो कि जो वीर पुरुषों से भी नहीं हो सकते। इस कारण हमारी यह इच्छा है कि तुमको किसी पुरुषयोग्य उपाधि से सुशोभित करें। अतएव आशा की जाती है कि (लोग) सोच कर निवेदन करें, जिसके अनुसार सम्मानित किया जाय।

(२) बिशप हैबर बेगम से सन् १८२५ ई० में मिले थे। वे लिखते हैं:—

यह एक बहुत छोटी सी अजीब वज़े क़ते की बुढ़िया औरत थी, जिसकी चमकदार आँखों में शरारत भरी हुई थी। बाईं हमा (तिस पर भी) हुस्न व जमाल (रूप व सुन्दरता) की झलक अब भी शकल व शमाइल (मुख और अङ्गों) में मौजूद थी। एक बड़ी हौसला और जुर्अत् और हिम्मत की औरत थी और कई बार उसने बनफ्स-नफीस (आप) फौज की सरकर्दगी (सेनाध्यक्षता) की है। उसकी खैरात व मबर्रात (दानपुण्य) की तूल तवील (लम्बी) फ़हरिस्त है। उसकी दीनदारी (धार्मिक भावना) का सबूत मिलता है। लेकिन मिज़ाज आग बगूला था *।

(३) बेगम के जीवन चरित्र लेखक पादरी डब्ल्यू कीगन साहब की यह सम्मति है—

उन समस्त मनुष्यों से जिन्हें बेगम से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, उसने एक दयावान, कृपामय और उत्तम

* यह उर्दू की लिखावट जैसी मिली है, वैसी ही और उन्हीं शब्दों में उद्धृत की गई है। केवल कठिन फारसी शब्दों का अर्थ कोष्ठक में प्रकट कर दिया गया है।

रमणी के समान बर्ताव किया। उसमें असाधारण चतुराई और पुरुषवत् दृढ़ता थी। यद्यपि वह क़द की नाटी थी, तथापि उसका महत्व और आतंक बहुत अधिक था। उन हजारों स्त्री-पुरुषों की, जिनका उसके दान से पालन होता था, वह सदैव अनुग्रह पात्र बनी रही; तथा ऐसा कोई समय नहीं बीता जब उसने उन लोगों के चित्तों में जिनको कि रात दिन उसके साथ नितान्त बेकल्लुफी से उठने बैठने का काम पड़ता था, अत्यन्त अगाध सन्मान का भाव नहीं प्रवेश कर दिया। उसके राज्य में सब जगह शान्ति और सुप्रबन्ध स्थिर रहा। किसी अन्यायी मुखिया को अपराधियों के रखने का साहस नहीं होता था। हर तरफ जान माल की रक्षा होती थी। धनाढ्यों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जाता था, न भूकर के वसूल किए जाने में कड़ाई का प्रयोग होता था। व्यापार की उन्नति थी, खेती के लिये उत्तेजना दी जाती थी, सूखा पड़ने पर किसानों को उदारता पूर्वक अनाज और तकावी देकर सहायता की जाती थी। बेगम के इलाके की भूमि पर बड़ी खेती होती थी और उसमें अधिक पैदावार होती थी। बेगम के राज्य में प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी। जब वह मर गई तो उसके समस्त राज्य में सब लोग शोक से रोते और विलाप करते थे और उसके गाँवों के कोने कोने से सहस्रों मनुष्य और स्त्री उसके मक़बरे को देखने को आते थे। इससे यह निश्चय हो गया कि उसकी मृत्यु से लोगों को दारुण दुःख हुआ।

(४) अंग्रेजी पुस्तक ओरियन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी के रचयिता मिस्टर थामस विलियम बेल ने बेगम सम्बन्धी संक्षिप्त वृत्तान्त में दो सज्जनों का मत लिखा है, जिन्होंने उसे देखकर प्रकट किया था। उनका उल्लेख यह है—

कप्तान गन्‌डी साहिब ने अपनी "भारत की यात्रा की पोथी" में लिखा है कि यदि बेगम के जीवन का इतिहास ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तो उससे उलट फेर की घटनाओं की एक ऐसी विचित्र माला बन जायगी जो कदाचित् और किसी स्त्री को अपनी आयु में पेश आई हो।

(५) कर्नल स्किनर साहब ने, जब वे मराठों के यहाँ नौकर थे, बेगम को बहुधा देखा था। उस समय पर वह एक रूपवती युवती थी जो आप अपनी सेना को युद्ध करने को ले जाया करती थी और लड़ाई के बीच में बड़ी से बड़ी वीरता और मानसिक प्रबलता का परिचय देती थी।

अंग्रेजी पोथी मुग़ल एम्पायर के लेखक हेनरी जार्ज कीनी साहब ने भी अनेक फारसी और अंग्रेजी पुस्तकों में बेगम के सम्बन्ध में वर्णन पढ़कर और उन सब पर विचार करके अपना निर्णय विदित किया है और इसके अतिरिक्त उन्होंने मिस्टर ट्रेवर प्लाउडन (Trever Plowden) की रिपोर्ट का आशय भी प्रकट किया है जो उन्होंने सन् १८४० ई० में बोर्ड आफ रेविन्यू अथवा भूकर पंचायत (Board of Revenue) में बेगम की मृत्यु के पीछे जब उसका राज्य

मियाद गुज़र जाने पर अंगरेजी राज्य में सम्मिलित हो गया था, उसका बंदोबस्त माल (Fiscal Settlement) करके जिसके लिये वे तईनात किए गए थे, उपस्थित की थी।

(६) कीनी साहव ने उस अवसर के पीछे की बातों का उल्लेख करते हुए जो पहले "चेतावनी" और "शान्ति-स्थापना" शीर्षकों में सविस्तर प्रकट की गई हैं, यह लिखा है—

इस प्रवीण रमणी ने अपने आधिपत्य को पुनः कभी अपने नारी स्वभाव की दुर्बलता के कारण जोखिम में नहीं पड़ने दिया। और उस समय से लेकर जब कि थॉमस ने उसे उसका राज्य फिर दिला दिया था (जिस काम में थॉमस ने दो लाख रुपए व्यय किए थे) सन् १८३६ में अपनी मृत्यु की तिथि तक उसकी प्रभुता पर पुनः कदापि घरेलू आपत्ति से कोई बाधा नहीं खड़ी हुई। जहाँ तक अटकल लगाई जा सकती है, उससे यह ही प्रतीत होता है कि वेगम अब बयालीस वर्ष की प्रौढ़ अवस्था को पहुँच चुकी थी; अतः उसने सम्भवतः अपनी इन्द्रियों का दमन करना सीख लिया था; क्योंकि ऐसा देखने में आता है कि अधिकारप्राप्त-वेगमें अपनी इन्द्रियों की उत्तेजना से कभी कभी एक मंत्री को ही सर्व शासन का भार सौंपकर उसे अपना स्वामी बना बैठती हैं। इससे शेष लोग उनके शत्रु हो जाते हैं। परन्तु बेगम ने ऐसी मूर्खता नहीं की, वरन् तदनन्तर उसने अपना मन विशेष करके अपने विशाल राज्य की व्यवस्था में लगाया। उसके परगनों की ऐस दशा थी

कि उनके उपयुक्त निरीक्षणार्थ उसे बहुत कुछ परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता था; क्योंकि वे गङ्गा से लेकर यमुना पार तक और अलीगढ़ के समीप से मुजफ्फरनगर के उत्तर तक फैले हुए थे। उसने अपनी राजधानी सरधने में ही रक्खी, जहाँ शनैः शनैः उसने राजभवन, ईसाई वैरागिनों का विद्यालय (Convent School) और गिरजा बनवाया जो अब तक विद्यमान हैं। उसके राज्य में सब जगह शांति और सुप्रबन्ध रक्खा जाता था। किसी अन्यायी और लुटेरे सरदार की यह शक्ति न थी जो अपराधियों को वहाँ छिपा दे और सरकारी मालगुजारी में गोलमाल कर दे। पृथ्वी पर खेती पूर्ण रूप में होती थी। एक एशियाई शासक के लिये ये बड़ी प्रशंसनीय बातें हैं।

(७) उक्त कीनी साहिब ने मिस्टर ट्रेवर प्लाउडन साहब की रिपोर्ट का सार इन वाक्यों में प्रकाशित किया है—

"ब्योरेवार जानने के प्रेमियों को बेगम समरू की जागीर का निम्नलिखित समाचार, जैसा कि उसकी मृत्यु पर जब कि उसका ठेका पूरा हो गया, प्रकाशित हुआ था, भला प्रतीत होगा। ये वृत्तान्त और अंक उस रिपोर्ट से लिए गए हैं जो उस अध्यक्ष ने रेविन्यू बोर्ड को भेजी थी जो कि उसका बन्दोबस्त माल करने के लिये नियुक्त किया गया था। यह सज्जन कहता है कि भूमि की जमाबन्दी की तख्मीस वार्षिक होती थी, जिसकी शरहों का पड़ता, उन शरहों से जो निकटवर्ती

अँगरेजी जिलों में प्रचलित थीं, एक तिहाई विशेष था। उन दिनों में अँगरेजी सरकार मूल जमा का दो तिहाई भाग लिया करती थी; अतः हम जानते हैं कि बेगम के असामियों को फिर क्या बचत रही। अफसर बन्दोबस्त ने भूलकर लगभग सात लाख (६, ६१, ३८८) से घटाकर कुछ ऊपर पाँच लाख रक्खा। उसने इतना ही नहीं किया, वरन् सायर का महसूल उड़ा दिया जिसके विषय में उसका यह कथन है—"ये कर समस्त प्रकार की संपत्ति पर लगाए जाते थे, तथा आने जाने-वाली वस्तुओं पर भी थे। पशु, पहनने के कपड़े, सब प्रकार के वस्त्र, चमड़े, रूई, गन्ने मसाले, और अन्य पैदावार पर लाने और ले जाने का मार्ग कर लिया जाता था। भूमि, मकानों और ईख के कारखानों पर भी महसूल लगता था। ईख पर बहुत ही अधिक कर था।"

शासन प्रणाली पूर्ण रूप से मुखिया शासन की (Parlarchal) थी। ईख की फसल की उपज बेगम से तकावी लेकर होती थी। और यदि किसी मनुष्य के बैल मर जाते अथवा उसे खेती के औजार आवश्यक होते तो उसे कोष से उनके लिये उधार रुपया मिल जाता था। परन्तु वह इस बात के लिये क्रूरतापूर्वक विवश किया जाता था कि जिस कार्य के लिये रुपया ले, उसीमें वह उसे लगावे। तहसीलदार और राजस्वाध्यक्ष अपने अपने इलाके में हल चलाने की ऋतु में वार्षिक दौरा करते फिरते थे। वे लोगों को खेती करने की उत्तेजना देते थे और जोतने

बोने के लिये विवश किया करते थे। इसी समय के लगभग एक लेखक ने मेरठ यूनीवर्सल मैगेजीन में प्रकाशित किया था कि इस उद्देश्य के निमित्त कभी कभी संगीन चढ़ाए सिपाहियों को खेतों में उपस्थिति रहने की आवश्यकता पड़ती थी।

मुहतमिम बंदोबस्त ने यह और प्रकट किया है कि तक़ावी चौबोस सैकड़ा व्याज समेत सदैव वर्ष के अंत में ले ली जाती थी। वास्तव में किसान कर से इतने अधिक जकड़े हुए थे कि उनके पास इतना थोड़ा शेष रह जाता था कि जिसमें वे अपना गुजारा कर सकें। इतना धन निश्चय-पूर्वक उनके पास छोड़ा जाता था। दूसरे शब्दों में यों कहो कि वे किसान क्या थे, धरती जोतने बोने, रखवाली करने और काटनेवाले मजूर (Predial Serfs) थे। मिस्टर साउडन को फिर भी यह कहना पड़ा कि "ऐसी प्रणाली को स्थिर रखने के लिये बड़े कौशल की आवश्यकता थी और जिस पौरुष से बेगम अपने राज्य की व्यवस्था करती थी, उसमें इनकी कुछ न्यूनता नहीं रहती थी। परन्तु जब बेगम बुढ़ापे में शक्तिहीन हुई और बिगड़े हुए प्रबन्ध का भार उसके उत्तराधिकारी के ऊपर पड़ा, तब इस पद्धति के मिथ्या रूप का भंडा फूट गया।" अंत के कुछ वर्षों में यह परिणाम हुआ कि जागीर में जो इलाका था, उसका एक तिहाई भाग भी खो गया: जिसका यह अर्थ है कि इतनी भूमि न्यूना-धिक उनके मालिकों और उत्तम श्रेणी के किसानों ने छोड़ दी।

रिपोर्ट के इस भाग का अंत इस वाक्य पर होता है कि "जिन मनुष्यों को ब्रिटिश शासन में रहने का लाभ प्राप्त नहीं है, वे उसका महत्व कैसा समझते हैं, उसे इससे अधिक और क्या बात सन्तोषजनक रूप में प्रकट कर सकती है कि ज्योंही बेगम के ठेके का समय पूरा हुआ कि प्रजा शीघ्रता के साथ अपने घरों को लौट आई।"

बेगम ने अपने जीवन में वीरता, धीरता, गम्भीरता और अनेक उच्च गुणों का जैसा परिचय दिया है, उसका उल्लेख पीछे प्रसंगानुसार हुआ है। इन्हीं के समान उसके स्वभाव में दानशीलता की भी रुचि बड़ी थी। ईसाई हो जाने के कारण उसका ध्यान इस धर्म की उन्नति की ओर अधिक था, इससे उसके दान स्रोत का बहाव भी विशेष कर उसी के कार्यों के निमित्त हुआ। तो भी इससे यह परिणाम अवश्य निकलता है कि उसकी प्रकृति में दान-शीलता थी।

कलकत्ते, बम्बई और मदरास की केथलिक मिशन संस्थाओं को बेगम ने एक लाख रुपए दान किए। आगरे के केथलिक मिशन को तीस हजार रूपए पुण्य किए। मेरठ में जो गिरजा है, उसके लिये बारह हजार रुपए का दान किया। इस बात का वर्णन अन्यत्र हो चुका है कि बेगम ने डेढ़ लाख रुपए रोमन नगर के पोप की सेवा में इस अभिप्राय से भेजे थे कि वह उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार शुभ कार्यों में व्यय करे। ऐसे ही उसने पचास हजार रुपए आर्च विशप आफ केन्टरबरी

(Archbishop of Canterbury) के पास भेजे थे कि वे भी उन्हें जैसे चाहें, धर्मार्थ बरता दें। पचास हजार रुपए बेगम ने कलकत्ते को और भेजे कि वे दीन दुखियों में बाँट दिए जायँ; और जो योग्य मनुष्य ऋण के कारण कारागार चले गए हों, उनका ऋण चुकाकर उन्हें कैद से छुड़ा दिया जाय।

उपर्युक्त दान का जोड़ तीन लाख बानवे सहस्र होता है। यह धन इस गिनती में नहीं आया है जो बेगम ने स्वयं अपने हाथों से समय समय पर दान किया था *।

इस समय कदाचित् यह संख्या विशेष न प्रतीत हो, परन्तु बेगम के ज़माने में समस्त वस्तुएँ और सामग्री बहुत सस्ते भावों पर बिकती थी, और आनों में वे पदार्थ आते थे जिनके लिये अब रुपए व्यय करने होते हैं। इन सब बातों का विचार करते हुए उस वक्त बेगम की खैरात का मूल रहस्य और महत्व यथार्थ रूप में समझ में आ जायगा। इसके अतिरिक्त रुपयों का व्यवहार बेगम के समय में उस अधिकता से न था जैसा कि पीछे अँगरेज़ों के राजशासन में हो गया। गाँवों में थोड़े से विरले ही मनुष्यों के पास उनकी

---

* ओरियन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता का मत है—

बेगम ने अपनी मृत्यु के पहिले १२ लाख रुपए से ऊपर विविध पुण्य और दान के कार्यों के निमित्त छोड़े और यह आदेश किया कि यह [illegible] [illegible] लाभ जिससे विशेष कर हिन्दुस्तान की मिशन सोसायटी का हित हुआ, को दी जाय।

आवश्यकता से अधिक रुपया बचता था, जिसको वे दवा छिपा कर रखते थे; क्योंकि लूट मार का सदैव भय बना रहता था।

इमारत

बेगम ने, जिसके पेट से कोई बालक उत्पन्न नहीं हुआ और जिसको इतना बड़ा अधिकार और राज्य प्राप्त था, यदि बहुत से गिरजे, भवन, कोठियाँ, पुल आदि बनवाए तो कोई आश्चर्यजनक विषय नहीं है; परन्तु इनसे उसके चित्त की उदारता अवश्य प्रकट होती है।

बेगम की इमारतों में सब से विशाल, उत्तम, सुन्दर विलक्षण और अनुपम इमारत उसका सरधने का गिरजा है जिसका संक्षिप्त वृत्तान्त उसके चरित्र-लेखक पादरी कीगन साहब और सविस्तर उल्लेख पादरी क्रिस्टोफ़र साहब (Rev. Fr. Chistopher O. C.) ने किया है। इन्हीं लिखावटों के आधार पर उसके सम्बन्ध में यहाँ लिखने का प्रयत्न किया जायगा। गिरजे में ही बेगम की हड्डियाँ दफन की गई हैं; अतः यदि उसको बेगम का स्मारक चिह्न कहा जाय, तो कुछ अनुचित न होगा।

यह गिरजा बेगम ने सन् १८२२ ई० में बनवाया था। बेगम ने इसके बनवाने के लिये जो शिल्पकार अथवा कारीगर चुना, वह बड़ा गुणी था। उसका नाम मेजर एन्टोनियो रैघेलिनी (Mojor Antonio Reghelini) था, और वह इटेली देश के पडवा (Padua) स्थान का निवासी था।

और वह बेगम के दरबार का अफसर था। ईश्वर के नाम पर उसने वह मन्दिर बड़ी शान शौक़त से बनवाया था। इस प्रान्त में उस समय वह अनुपम और अद्भुत समझा जाता था। हिन्दुस्तानी शिल्पकला में जो बढ़िया से बढ़िया कारीगरी उसकी सुन्दरता और उत्कृष्टता के निमित्त हो सकती थी, वह सभी दिल खोलकर धन खर्च करके उसने इसके लिये कराई थी।

बेगम को अपने महान् गिरजे का उचित घमण्ड था, जैसा कि उसने अपने पत्र में जो उसने तारीख १२ जनवरी सन् १८३४ को बड़े पादरी पोप ग्रेगोरी साहब के नाम लिखा था। और बातों का वर्णन करते हुए इसके सम्बन्ध में इन वाक्यों में संकेत किया है—"इसी अवसर पर मैं अपने गिरजे की पाँच छपी हुई तसवीरें श्री पूज्यवर के लिये भेजती हूँ जिसके विषय में मुझे यह कहने में गौरव है कि वह भारत में अति उत्कृष्ट और अद्वितीय बताया जाता है"। इस गिरजे पर, जो पुण्यात्मा कुमारी मरियम अर्थात् ईसा की माता को अर्पण किया गया है, चार लाख रुपए व्यय हुए हैं। उन दिनों इतना धन बहुत समझा जाता था जब कि मजूरी और मसाला बहुत सस्ता था।

बाहर की ओर से यह गिरजा भारी घनाकार की सूरत का दिखाई देता है, पर भीतर से उसका रूप पूर्ण लातीनी सलीब (Latin Cross) के सदृश प्रतीत होता है। इस बाहरी और भीतरी शकल के अन्तर का कारण यह विशाल बरामदा

है जो गिरजे के गिर्द उसकी बगलों तक बना हुआ है जिससे उसकी सूरत एक वर्ग घन की हो गई है। इस बरामदे के लग जाने से यह इमारत यूनानी बनावट के ढंग की सी दिखाई देती है। समस्त छत के बाहर की ओर जो कँगूरा अथवा कारनिस पर जो लोहे की छड़ों की आड़ चहुँ ओर लगी है, वह गिरजे की इमारत को मजबूत करती है।

मन्दिर के केन्द्र अथवा वेदी (Altar) के ऊपर एक मनोहर गुंबज बना हुआ है और इसी प्रकार के दो छोटे छोटे सुन्दर गुंबज बड़ी खूबसूरती से दोनों ओर बगली चैपिल (Chapells) अर्थात् उपासनालयों के ऊपर बने हैं। गिरजे के पूर्व का सिरा दो ऊँची ऊँची मीनारों पर पूर्ण होता है। इन मीनारों में से एक में घण्टा और दूसरी में सुरीली घंटियों का गुच्छा लगा हुआ है। घण्टे की कल (Clock Machinery) को बिगड़े हुए बहुत वर्ष बीत गए; यहाँ तक कि बाहर निकाल लिया गया और पुनः उसके स्थान में दूसरा घण्टा नहीं लगाया गया। यह घण्टा अति उत्तम था और बेगम ने स्वयं इसे मँगाया था।

तीनों गुंबजों और दोनों मीनारों के ऊपर धातु के गोले और सलीबें लगी हुई हैं जिन पर ऐसा मोटा और अच्छा सोने का मुलम्मा हो रहा है कि जिसको बने इतने वर्ष व्यतीत हो गए, तो भी जो बिलकुल नवीन और दमकती चमकती ऐसी लगती हैं मानो आज ही बनाकर चढ़ाई गई हों। गुंबजों की

चोटियों पर श्वेत संगमरमर की अठपहलू लालटेन है जिसमें बढ़िया कटाव और जाली का काम है। तारीख ५ अप्रैल सन १६०५ को जो भूकम्प हुआ था, उससे पुरानी लालटेन टूटकर गिर गई और पुनः वह न ठीक हो सकी। पीछे से उसकी जगह नई लालटेन, जो अब मौजूद है, लगाई गई।

गिरजे के बीच के द्वार पर पत्थर की एक पटिया पर लैटिन तथा फारसी में शिलालेख खुदे हुए हैं।

लैटिन लेख का निम्नलिखित सार है—

परम प्रसिद्ध सरधने की महारानी जोना ने अपने रुपए से यह मन्दिर बनाया और प्रभु की माता कुँआरी मरियम के नाम और संरक्षण में रोमन कैथलिक धर्म की विधि के अनुसार सन १८८२ में समर्पित किया।

फारसी लेख की लिखावट यह है—

بامداد خدا و فضل مسیح بسال هیجده
صد عشرین و اثنای بدل زیب النسا عمده
اراکین نبا فرمود عالیشان کلیسا—*

---

* पादरी [illegible] ने उपर्युक्त फारसी शब्द अपनी पुस्तक में रोमन अक्षरों में प्रकाशित किया है। यहाँ इस पोथी में उसके यथार्थ रूप फारसी अक्षरों में लिखा गया है। उक्त पादरी महोदय ने "हज़ार-ओ-हेश्तद सद अशरीन व इसना" का अर्थ सन् १८२० लिया है और लैटिन के और इसके सन् में दो सालों का अंतर होने से उसके निवारणार्थ यह टिप्पणी लिखी है—

"लैटिन और फारसी लेखों के दाम में जो सन् का अन्तर है, उसका [illegible]

अर्थात् ईश्वर की सहायता और मसीह के प्रसाद से सन् १८२२ ई० में प्रतिष्ठित उमराव (महारानी) जेब उलनिसा ने यह विशाल गिरजा बनवाया।

गिरजे के भीतर दृष्टि डालने पर सदर सहनची और मन्दिर का फर्श संग मूसा और संगमरमर का बना दिखाई देता है। उसकी छत नीचे की ओर गुंबजनुमा है, जिसके गुंबज और महराबों पर पूर्वी ढंग का सुशोभित और विभूषित अस्तरकारी का काम है।

वेदी (Altar) सम्पूर्ण श्वेत संगमरमर की है। यह पत्थर जयपुर से लाया गया है और इसका सुंदरतापूर्वक कटाव और सिंगार करके अक़ीक, सूर्यकांत आदि नाना भाँति की बहुमूल्य मणिओं से सजी हुई पच्चीकारी का जड़ाव हुआ है। यह काम अपने फूलदार नक्शे में अधिकतर ताजमहल आगरे के अद्भुत पच्चीकारी के काम से मिलता जुलता है। वेदी की सीढ़ियों के ऊपर एक देवालय मुड़े हुए खंभों का बना हुआ है जो सब संगमरमर के हैं। इनके बीच में एक ताक़ है जिस पर बीबी मरियम की मूर्ति विराजमान है।

कारण समझना चाहिए, कि फारसी लेख में गिरजे के बनने का सम्वत् लिखा हुआ है और लैटिन लेख में उसकी प्रतिष्ठा का वर्णन है।"

परन्तु यह उनकी कल्पना बिलकुल मिथ्या है; क्योंकि लैटिन और फारसी दोनों लेखों में सन् १८२२ ई० ही लिखा हुआ है। फारसी के जिन शब्दों का अर्थ भूल से स० १८२० किया गया है, उनका ठीक अर्थ १८२२ है; अर्थात् सन् निकालने में "इसना" शब्द जो दो का वाचक है वह उड़ा दिया गया है।

दोनों ओर को दो और मूर्तियाँ है जिनके इर्द गिर्द वनावटी फूलों की बड़ी बड़ी मालाएँ पड़ी हैं। यह पीछे से रक्खी हुई मालूम होती हैं।

बड़ा गुम्बज चार महराबों के ऊपर ठहरा हुआ है। उसके अठ-पहलू बुर्ज में आठ खिड़कियाँ बनी हुई हैं जिनसे पूर्ण प्रकाश वेदी और स्वयं मंदिर में पड़ता है। गुंबज की वेदी के चारों कोनों पर चार त्रिभुजाकार मूर्तियाँ चारों इंजील के प्रचारकों (Evaugllsto) की बनी हुई हैं।

मुख्य मंदिर के तीन ओर सुंदर संगमरमर का कटरा है। दोनों बगलों के जो चैपिल अर्थात् पूजागृह हैं, उनके ऊपर सुशोभित गुंबज है। इनकी वेदी करारा (Carrra) संगमरमर की बनी हुई है जिसको थोड़े दिन हुए, मृत आर्च विशप जैन्टिली (Archbishop Mgr. Charles Gentili) इटली देश से लाए थे।

बाईं सहनची के द्वार से गिरजे के उस भाग को मार्ग गया है जहाँ बेगम और डायस सोम्बरे की कबरों पर विशाल रोज़ा (स्मारक) है। यह काम इटली देश के प्रसिद्ध संगतराश एडमो टाडोलिनी, बोलोन निवासी का है जो केनोवा (Canova) के मुख्य शिष्यों में से था।

आगरे में ताज की इमारत शानदार, बहुमूल्य और महत्वशाली है। ऐसी ही भारी इमारत सिकंदरे में भी है। पर उनको देखकर आपके चित्त में कुछ उत्साह नहीं उत्पन्न होगा:

क्योंकि वहाँ जो दिखाई देता है, वह केवल निर्जीव संगमरमर पत्थर है। पर सरधने के रोजे के संगमरमर को देखकर आपको जीती जागती मूर्तियों के देखने की सी प्रसन्नता प्राप्त होगी। वह कोरा जड़ पत्थर ही नहीं है। वह कला और श्रद्धा की उत्कृष्ट वाणी है। वह संपूर्ण श्वेत सफेद करारा संगमरमर का है जिसमें ग्यारह मूर्तियाँ पूरे कद की खड़ी हुई हैं और तीन चौखटे लगे हुए हैं*। बेगम ज़र्क बर्क हिन्दुस्तानी

---

* इस स्मारक के विषय में पादरी कीगन साहब ने यह लिखा है—

एक सुशोभित स्मारक करारा संगमरमर का रोम नगर से बनवा कर बेगम की स्मृति में सन् १८४२ में खड़ा किया गया। तमाम तसवीरें पूरे क़द की हैं। हिन्दू और मुसलमान इस स्मारक के देखने को बड़ी संख्या में आते थे, अतः इस विचार से कि मुख्य मन्दिर का अपमान न हो, जहाँ होकर उन्हें आना पड़ता था, उस तरफ को नया द्वार खोल दिया गया जिससे स्मारक को जाने का सीधा मार्ग हो गया। इस स्मारक भवन में जो चौखटे ऊपर की ओर लगे हैं, उनके उन वाक्यों से जो लैटिन और अंग्रेजी भाषाओं में अंकित हैं, विदित होता है कि रचयिता स्वर्गवासिनी के गुण, सुलक्षण और योग्यताओं को पर्याप्त रूप से प्रकट करने में असमर्थ था। बेगम के स्मारक पर ये शब्द अंकित हैं—

हर हाइनेस जोना जेब उन्निसा बेगम समरू की पवित्र स्मृति में जो अमीर उल् उमरात्र और साम्राज्य की प्यारी पुत्री थी, जिसने यह असार संसार स्थायी लोक में गमनार्थ अपने महल सरधने में तारीख २७ जनवरी सन् १८३६ को त्याग किया। उसकी प्रजा हजारों की संख्या में, श्रद्धापूर्वक उसको याद करके रोती है। उसका वय ६० वर्ष का था। उसका शव इस गिरिजे के नीचे दफ़न है जिसे उसने आप बनवाया था। उसका प्रबल हृदय, उसके उत्कृष्ट गुण, बुद्धि, न्याय और दयालुता जिनके साथ अर्द्ध शताब्दि के समय से अधिक पर्यन्त

पोशाक पहने हुए राजकीय कुरसी पर विराजमान है। उसके दाहिने हाथ में बादशाह का लिपटा हुआ वह फरमान है जिसके द्वारा सरधने की जागीर उसको प्रदान की गई थी। दाईं ओर को मिस्टर डायस सोम्बरे शोकमय स्थिति में खड़ा हुआ है और बाएँ को उसकी रियासत का दीवान रायसिंह है। इनके जरा पीछे बिशप जूलियस सीज़र और उसके रिसाले का कमांडर और प्रथम एडिकाँग इनायत उल्लाह है।

जो तीन चौखटे हैं, उनके सामने की ओर से गिरजे की प्रतिष्ठा की घटना का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। बिशप पादरी अपने पद के नियत वस्त्र पहने हुए अपने आसन पर विराजमान हैं। बेगम जिसकी सेवा में उसके प्रधान यूरोपियन अफसर उपस्थित हैं, अपने कर कमलों में सुवर्ण थाल धारण किए हुए, जिसमें बढ़िया वसन उसके गिरजे के निमित्त रक्खे हुए हैं, आगे बढ़ती हैं और उन्हें बिशप को अर्पण करती है। चौखटा राजसिंहासन की दाईं ओर बेगम के दरबार करने और बाईं ओर

शासन किया है, उन (डेविड औक्टरलोनी डायस सम्बर) के लिये जो वह माता से भी बढ़कर थी, अतएव उसके हृदय उसको अत्यंत प्यारी नहीं लगती । परन्तु उसकी प्यारी स्मृति का धन्यवादपूर्वक सम्मानार्थ यह स्मारक उसने खड़ा किया है और वह नम्रतापूर्वक विश्वास करता है कि वह ऐसी [illegible] प्रकट होने से न चूकेगी ।

डेविड औक्टरलोनी डायस सम्बर"

विजय की सवारी के जलूस का, जिसमें बेगम हाथी पर चढ़ रही है, दृश्य दिखाता है। इसके अतिरिक्त रोजे (स्मारक) के दाएँ बाएँ छः मानसिक वृत्तियों के चित्र लगे हुए हैं। दाईं ओर प्रथम चित्र पराक्रम और धैर्य का इस भाँति का है कि एक दृढ़ और अभय स्त्री पृथिवी पर पड़े और गड़-गड़ाते हुए सिंह की छाती पर पाँव जमाए हुए है। दूसरा चित्र चतुराई का है जिसे इस तरह दिखाया गया है कि एक नारी भारी भारी कपड़ों से ढकी हुई है और गहरे ध्यान में है और वह अपने सीधे हाथ में एक साँप पकड़े हुए है। तीसरी तसवीर काल की है जो बेगम की ओर घण्टे का शीशा दिखा रहा है जिस पर रेत पड़ रही है और दाएँ हाथ से जीवन की मशाल बुझा रहा है। रोजे (स्मारक) की बाईं ओर प्रथम छवि माता और पुत्र के स्नेह की है जिसमें एक युवती अपनी छाती से एक दूध पीते हुए बालक को चिपटाए हुए है और इसके बदले में एक लड़का उसे सब्र अथवा प्रेम का फल दे रहा है। दूसरी बहुतायत की है। एक स्त्री प्रसन्न-मुख नाना प्रकार के फलों और अनाज की बालों से भरा हुआ नरसिंघा ले रही है और गुलदस्ता समर्पण कर रही है। तीसरा चित्र शोक का है। गिरजे के किनारे के चबूतरों पर त्रिविध समाधि शिलाएँ लगी हैं, जिनसे पता लगता है कि यहाँ कई पादरी गाड़े गए हैं।

गिरजे के छोर पर जो अरगन बाजे (Organ loft) का घर है, वह समस्त नकशे इमारत के अनुसार नहीं है, क्योंकि

यह लकड़ी का बना हुआ है। प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता है कि यह पीछे से बना है, और शिल्पकार रैघेलिनी की तजवीज में शामिल न था। पुराना अरगन बाजा बड़ी उत्तम बनावट और अति मधुर सुरीले स्वर का है। परन्तु खेद है कि भारत के जलवायु ने उसका तहस नहस कर डाला। अब तो उसकी ऐसी अधोगति हो गई है कि उसे केवल कोई निपुण कारीगर ही ठीक कर सकता है।

अरगन घर से तुम गिरजे की चपटी छत पर चढ़ सकते हो। यह ही वह छत है जहाँ सन १८५७ के विद्रोह में चैपलेन, मठ की अवधूतनियों और चेलों ने अपनी जान बचाने के लिये आश्रय लिया था। विद्रोहियों ने गिरजे पर धावा कर दिया, परन्तु उन्हें उसके सब द्वार भीतर से सुदृढ़ बन्द मिले। बागी उन्हें तोड़कर खोल लेते, परन्तु ऐसे नाज़ुक अवसर पर न जाने उन्हें क्या भय लगा कि वे डर के मारे भाग निकले। एक लिखावट से यह भी विदित होता है कि जिस समय ये विद्रोही गिरजे से अकस्मात् डरकर भागे थे, ठीक उसी समय चैपलेन ने सत्य हृदय से अपने को और अपने साथियों को श्री कल्याणकारी यूकरिस्ट जी (Eucharist) की शरण में सौंप दिया, जिन्हें वह अपने साथ ऊपर छत पर ले गया था। चाहे इसे करामात कहो अथवा केवल संयोग वश बताओ, परन्तु है यह घटना आश्चर्यजनक और समझ के बाहर कि बागी लोग ठीक इस वक्त जब कि उनको गिरजे के तूटने का

मौक़ा मिला, डर से भाग गए।

बेगम ने पादरी जूलियस सीजर को, जो उसका घरेल चैपलैन था, पोप के पास अपनी सिफारिश भेजकर सरधने का बिशप पादरी नियुक्त करा दिया जिसका वर्णन पीछे हो चुका है। परन्तु यह सीजर ही सरधने का प्रथम और अंतिम बिशप हुआ; क्योंकि वह तो एक वर्ष पश्चात् सरधने से चला गया और पुनः यह स्थान आगरे के अधीन हो गया। उसका गमन, बेगम की मृत्यु और ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में सरधने का आ जाना, ये सब इस परिवर्तन के कारण हुए।

गिरजे के पीछे के भाग में जो कमरे हैं, वे ख़ानक़ाह (Convent) कहलाते हैं। वे पहले चैपलैन और बिशप जूलिअस सीजर के निवासस्थान थे। जब पीछे से वे ख़ान-क़ाह और अनाथालय बना लिए गए, तो इनमें और गृह भी बनवाए गए जो भारतवासी अनाथ बालकों और बालिकाओं के, जिन्हें मिशन ने अपने आश्रय में ले रक्खा है, निद्रालय, कक्षालय अथवा विद्यालय और भोजनालय के काम में आते हैं। यह संस्था ईसा और मरियम की तपस्विनियों (Nuns of Jesus and Mary) के प्रबन्ध में है।

गिरजे के उत्तर को ओर के सिरे पर जो फाटक है, उसमें होकर ख़ानक़ाह को प्रवेश करते हैं।

गिरजे के चौक के बड़े द्वार से बाहर निकलकर तुम्हें एक सड़क पार करनी पड़ती है और फिर दूसरा बड़ा फाटक

आता है। इसमें होकर सेन्ट जोन्स गृह (St. John's Qurater s) को जाते हैं जो बेगम का पुराना महल था, और जिसको बैरन सैलेरोली (Baron Saloroli) ने, जो बेगम के दरबार में एक प्रभावशाली पुरुष था, मिशन को दे दिया था। बहुत दिनों तक इसमें अनाथालय और पाठशाला थी, और यह आरम्भ से ही सेन्ट जोन्स कालिज कहलाने लगा था। इस इमारत का वह भाग जो अब तक हिन्दुस्तानी ढंग का बना हुआ है, बेगम का पुरानी महल था। आगे जो बरामदा और दूसरे मकान हैं, वे मिशन के बनवाए हुए हैं।

सेन्ट जोन्स के चौक से बाहर निकलकर एक सड़क मिलेगी जो दाईं ओर को मुड़ती है। अब तुम दो इमारतों के बीच में होकर गुज़रोगे। आधुनिक लाल ईंट की इमारत में बाएँ को सरधने का सरकारी मदरसा है और दाएँ को सरकारी शफाखाना है। अब हम बड़े फाटक के पास पहुँचते हैं, जो बड़ा प्राचीन प्रतीत होता है। इसके दाहिने ओर को पहरेदार की कोठरी (Sentry Cabin) है।

यह बेगम के शाही महल का द्वार है। पहले हमें जो दृष्टिगोचर होता है, वह महल का पिछला भाग है। आगे बढ़कर हम सीधे शानदार ज़ीने के सन्मुख आते हैं जो महल की बुलन्द गोल ड्योढ़ी के ऊपर जाता है। यह महल अब मिशन की सम्पत्ति है जिसमें एक मदरसा है,

जहाँ अंगरेजी और देशी भाषा की शिक्षा दी जाती है और लड़कों का एक अनाथालय है।

किसी किसी को यह भ्रम हो जाता है कि बेगम ही महल को मिशन के लिये छोड़ गई है। परन्तु असल बात यह है कि मिशन ने तो इसे पाई बाग समेत पीछे से, लेडी फौरेस्टर की मृत्यु हो जाने पर, नीलाम में पचीस हजार रुपए को सन् १८९७ ई० में मोल लिया था। अब इस महल में एक ईसाई स्कूल है। व्यवस्थापक की आज्ञा से तुम इसे देख सकते हो। बेगम का गुसलखाना सम्पूर्ण संगमरमर का बना है और उसमें बहुमूल्य पच्चीकारी का काम हो रहा है; इसलिये यह अति सुन्दर स्थान देखने योग्य है।

महल के चौक के बाहर बाग के बीच में एक छोटी सी कोठी है, जो रैबेलिनी के बँगले के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि उसमें मेजर ए० रैबेलिनी, जिसने बेगम का गिरजा और महल बनाया था, रहा करता था। अब यह मिशन की ओर से किराए पर उठा दी जाती है।

कसबे का वह भाग जिसमें बेगम के समय की ईसाई धर्म की यादगार इमारतें बनी हुई हैं, छावनी के नाम से विख्यात है। सम्भव है कि उसका यही नाम बेगम के समय में भी हो, जो अब तक ज्यों का त्यों चला आता है। छावनी के भीतर जो बेगम की यादगार ईसाई इमारतें हैं, उनकी रक्षा करने का भार गवर्नमेन्ट ने अपने ऊपर ले लिया है।

ईसाई क़बरस्तान (Cathelic Cementry) भी देखने योग्य है। इसमें बड़ी बड़ी कबरें हैं जिन पर उत्तम रौजे बने हुए हैं।

इन कबरों के अतिरिक्त यात्रियों को और बहुत सी लिखावटें अंगरेजी में दृष्टिगोचर होंगी। ये इस विचार से बड़ी ही विचित्र और मनोरम हैं कि बेगम के दरबार में किस प्रकार अनेक जातियों के मनुष्यों का समावेश हुआ था, जिनमें अँगरेज, फरासीसी, इटली निवासी, पुर्तगीज और यहाँ तक कि पोलेन्ड निवासी भी थे; क्योंकि मेजर कवायने की (Major G. Kolne) की कबर पर "पोलेन्ड निवासी" (Native of Poland) लिखा हुआ है।

इस कबरस्तान में बराबर अब तक देशी ईसाइयों के मुरदे दफनाए जाते हैं। इन लोगों की संख्या सरधने के उपनिवेश में अब बहुत अधिक हो गई है।

बेगम ने मकानात केवल अपनी राजधानी सरधने में ही नहीं बनावाए, किन्तु उसकी इमारतों का और स्थानों में भी पता चलता है। दिल्ली में भी उसने अपना महल बनवाया था जिसकी वर्तमान स्थिति एक उर्दू लेखक के इन वाक्यों में है—

"यह कोठी चाँदनी चौक के शुमाल में है, जो पहले "समरू की बेगम की कोठी" और "चूड़ीवालों की हवेली" कहलाती थी। यह एक कोठी निहायत दिलकुशा और फ़रहबख़्श बड़ी आलीशान बहुत उम्दा ऊँची कुर्सी देकर बनाई है, और उसमें

कुर्सी में कमरे और गोदाम और शागिर्द पेशे के लिये ग्योतात बनवाए हैं। उस पर यह कोठी है। एक दर्जा इसका रश्कइरम है, जिसमें बड़े बड़े हाल और बरामदे हैं। अलावे खूबी इमारत के एक वसीअ और पुरफ़िज़ा बाग है जिसमें सर्व के दरख्तों की खुशनुमाई और नहर के जोर शोर से बहने का अजीब लुत्फ़ है। अब नहर तो नहीं रही, बाग़ अलबत्ता मौजूद है। इस कोठी में क़दीम से दिल्ली लन्दन बैंक है। इसी कोठी में एक मकान मुत्अल्लक़े में से बैंक के मैनेजर मिस्टर ब्रस्ज़ डाऊन की मेम साहिबा और लड़कियों ने तारीख ११ मई सन् १८५७ ई० को बागियों से सख़्त मुकाबिला किया, जिसमें सारे का सारा खानदान मारा गया जो सबके सब कश्मीरी दरवाजे के पासवाले गिरजा में मदफून हैं।" अब हाल में इसमें शिमला एलायन्स बैंक और पञ्जाब बैंकिंग कम्पनी भी शामिल हो गई हैं। सन् १६२२ में इस कोठी को दिल्ली के एक सज्जन ने मोल ले लिया था।

बेगम ने एक बड़ी विशाल कोठी मेरठ में तामीर कराई थी। उसमें एक बड़ा बाग भी था जहाँ सरधेन के महल बनने से पूर्व वह बहुधा आकर रहा करती थी। यह कोठी "बेगम कोठी" के नाम से विख्यात है। यह एक मुसल्मन जमींदार की सम्पत्ति बन गई है और मेरठ कालिज के दक्षिण में स्थित है। अनेक पुलों और कई अन्य लोक-हितकार्यों के अतिरिक्त उसने एक गिरजा और प्रेसबिटेरी (Presbytery) मेरठ में छावनी के

अँगरेज सैनिकों के उपदेशार्थ तैयार कराई थी।

झज्झर में भी वेगम का राज्य था। वहाँ की गढ़ी के सम्बन्ध में एक उर्दू इतिहास में यह उल्लेख मिलता है— "झज्झर में बतरफ़ ग़र्ब मुलहक़-इ-शहर पनाह की मायेन बेरी दरवाजा और गढ़ी दरवाजा एक गढ़ी ख़ास बतौर कचहरी वास्ते क़याम आमिल के बनाई। चुनांचि अब तक वह गढ़ी कायम है; और भड़ेचियों के वक्त में उस गढ़ी में मकान जनाना हैदर अली खाँ सरिश्तेदार रईस का था और अमलदारी सरकार में अवल्लन् चन्द रोज़ कचहरी तहसील की वहाँ रही और अब कई साल से थाना पुलिस का उसमें मुक़ीम है।"

ऐसे ही कस्बा टप्पल जिला अलीगढ़ में एक कच्चा मिट्टी का क़िला है जो वेगम समरू के किले के नाम से विख्यात है। अलीगढ़ से जो पक्की सड़क खैर होती हुई आती है, वह टप्पल की बस्ती के पश्चिम में थोड़ी दूर चलकर समाप्त हो गई है। कस्बे की आबादी के सन्मुख इसी सड़क पर उत्तर में यह क़िला है, जिसका बड़ा द्वार पश्चिम की ओर है। इससे लगभग दस गज की दूरी पर सामने पक्का मैगज़ीन चूना व कलई की अस्तरकारी का बना हुआ है जिसके अंदर वेगम के शासन काल में गोले बारूद आदि विविध प्रकार की युद्ध की सामग्री रक्खी जाती थी; और अब इसमें चौकीदारों के बख्शी का दफ्तर है। प्रसिद्ध उर्दू इतिहास "विकाये राजपूताने" में लिखा है कि महाराज सूर्यमल के समय में भरतपुर

का राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था, जिसके अन्तर्गत जेवर और टप्पल के परगने भी थे। अतः आश्चर्य्य नहीं कि झज्झर और झाड़से आदि अनेक परगनों में, जो महाराज सूर्य्यमल के पौत्र राव नवलसिंह ने समरू को प्रदान किए थे, जिनका वर्णन समरू के चरित्र में पीछे हो चुका है, कदाचित् जेवर और टप्पल भी सम्मिलित हों जो फिर पीछे समरू की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्त्री और उत्तराधिकारिणी जेबउलनिसा बेगम के अधिकार में उसकी अन्य सम्पत्ति के साथ आ गए। बहुत सम्भव है कि यह क़िला उस वक्त में भी मौजूद हो। परन्तु यह तो निश्चय ही है कि बेगम की ओर से जो शासक टप्पल में नियत था, वह इसी गढ़ में रहता था; और स्वयं बेगम भी समय समय पर दौरे में आकर यहाँ कुछ दिनों तक ठहरती थीं और उस कसबे तथा उसके संबंधी ग्रामों की स्थिति का निरीक्षण करती थी। इसी क़िले में वह अपना दरबार करके राज कर्मचारियों, प्रजा के मुख्यों और परगने के प्रतिष्ठित पुरुषों को एकत्र करती थी और उनसे विविध भाँति के प्रश्न पूछकर उचित प्रबंध करने की आज्ञा देती थी। अब से चालीस वर्ष के पूर्व बहुत से मनुष्य जीवित थे जिन्होंने बेगम को अपनी आँखों से देखा था और उसके दरबारों में सम्मिलित हुए थे। बेगम की मृत्यु होने पर जब उसका राज्य ईस्ट इन्डियन कम्पनी के अधिकार में आया, तब अँगरेजों की कस्बा टप्पल संबंधी सरकारी कचहरियाँ और

दफ़्तर भी अर्थात् मुनसिफी, तहसील, थाना और डाकखाना पुनः इस किले में स्थित हुए, जो पीछे से एक एक करके यहाँ से उठ गए। अब केवल थाना ही रह गया है। इस किले में मिट्टी की दीवारों के अतिरिक्त अब कोई पुरानी इमारत नहीं रही। वे भी जगह जगह से टूट फूट गई हैं। बाहरी भाग के फाटक के ऊपर के मकानों और उससे सटे हुए कच्चे ऊँचे गोल चबूतरे पर, जिसे "दमदमा" कहते हैं, चौकीदार और पुलिस कान्सटिबिल रहते हैं। इसके घेरे में एक बँगला बनाया गया है जिसमें दौरे के समय जिले के हुक्काम आकर विश्राम करते हैं। मेजर आरचर साहब का कथन है कि बेगम के पास एक बाग भरतपुर के समीप था और उसमें उत्तम गृह बना हुआ था। एक सनद की प्रति से, जो इम्पीरियल रेकर्ड आफिस कलकत्ते में विद्यमान है, ज्ञात होता है कि बेगम के सौतेले पुत्र ज़फ़रयावखाँ की १६०० बीघे बाग़ की भूमि दीग में भरतपुर के समीप थी जो उसके नाम बहाल हो गई। यही भूमि ज़फ़रयाब खाँ की मृत्यु के पश्चात् सन् १८०२ में बेगम के हाथ आई थी, जिसकी ओर आर्चर साहब ने संकेत किया है।

बेगम के उत्तराधिकारी डायस समरू ने अपनी पुस्तक "रिप्यूटेशन" में लिखा है—"आगरा में बेगम के तीन बाड़े थे और बाजार भी इस जिले में था।"

फिर्वा में, जो सर्धना से ३-४ मील है, बेगम ने एक उत्तम

कोठी बनवाई, जहाँ वह वायु-परिवर्तनार्थ जाती थी। वह फरवरी सन् १८२८ में बनी और सन् १८४८ में नष्ट हो गई। उसके निवासार्थ एक कोठी जलालपुर में भी थी जिसके खँडहर सन् १८७४ तक देखने में आते थे।

राज्य का विस्तार

बेगम समरू राज-रानी न थी। उसका पद सैनिक सेवा के उपलक्ष में दिल्ली की बादशाहत में एक जागीरदार का था; अर्थात् उसे कुछ परगने प्रदान किए गए थे जिनका राजस्व वह उगाहती थी और उसके बदले में उसे अपने पास एक वाहिनी रखनी पड़ती थी। यह सेना बादशाह की नौकरी के लिये, जब उसकी माँग होती थी, भेजनी पड़ती थी।

मिस्टर कीगन साहब ने बेगम के राज्य का विस्तार गङ्गा से लेकर यमुना पार तक और अलीगढ़ के समीप से मुजफ्फ़रनगर तक बतलाया है जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। यह भी लिखा जा चुका है कि सन् १७८८ में बादशाह शाह आलम ने उसे बादशाहपुर का इलाका भी प्रदान किया जिसको मिस्टर जार्ज थामस ने पीछे से लूटा। महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने हाल में कलकत्ते के प्रसिद्ध अँगरेजी मासिक पत्र "माडर्न रिव्यू" की सितम्बर सन् १९२५ की संख्या में जो अपना लेख छपवाया है, उसमें इस संबंध में अनेक प्रमाणों सहित अधिक प्रकाश डाला है। हम इस अध्याय में विशेष कर उन्हीं का अनुकरण करेंगे।

बेगम के अधीन सरधना, करनाल*, बुढ़ाना, बरनावा, बड़ौत, कुताना, टप्पल और जेवर ये आठ परगने थे। कदाचित् यही वह आठ परगने थे जिनका संकेत बेगम के द्वितीय पति ए० लीवैसौल्ट ने अपने पत्र तारीख़ २ अप्रैल सन् १७९५ में किया था, जो कर्नल मैक्ग्वान के पास अनूपशहर को भेजा था। पर लाला चिरंजीलाल (नायब रजिस्टरार कानूगो तहसील बुढ़ाना ज़िला मुजफ्फरनगर) बेगम के पास नौ परगने बतलाते हैं, जिनमें से सात तो वही हैं जिनका ऊपर वर्णन हुआ है: पर उसमें करनाल का नाम नहीं है। उन्होंने बागपत जो जिला मेरठ में है और लँडोरा जो सहारनपुर जिले में है, ये दो परगने अधिक बतलाए हैं।

बेगम का तालुका बहुत धनवान था और उसके भीतर बड़े उत्तम उत्तम कस्बे थे; जैसे बड़ौत, दोनौल, बरनावा, सर्धना और दनकौर: और उसके राज्य के समीप बड़ी बड़ी मंडियाँ जैसे मेरठ, शामली, काँधला, बागपत, शाहदरा और दिल्ली की थीं।

बेगम के पास यमुना पार की जागीर थी जिस पर उसका स्वत्व "अलतमगा" अर्थात् शाही स्थायी देन का था। इस ओर

---

* ज़िला करनाल निवासी मास्टर रामचन्द्र हेडमास्टर हाई स्कूल बाबू मानसाह सिंह से मुझे ज्ञात हुआ है कि बेगम समरू के [illegible], जो कर ज़िला करनाल में एक दनकौर है, न कि स्वयं करनाल—लेखक।

की उसकी सम्पत्ति में बादशाहपुर-भारसा का परगना था जिसमें लगभग ७० ग्राम थे। इसका फ़ासला दिल्ली से प्रायः १४ मील है। भुटगाँग के गाँव जो सोनीपत के परगने में था और मौजा भोगीपुरा, शाहगंज और एक बाग़, जो सुयह अकबराबाद (आगरे) में था, उन पर भी उसका अधिकार था। आगरे के क़िले से पश्चिम की ओर जो सड़क फ़तहपुर-सीकरी को जाती है, उसी सड़क पर कुछ आगे बढ़कर बेगम समरू का बाग़ था जिसके चारों ओर दीवार खिंची हुई थी; और वह सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय तक स्थित था।

पहले कहा जा चुका है कि सन् १७७८ में नवाब नजफ़-खाँ ने समरू की मृत्यु के पश्चात् बेगम को केवल उसकी योग्यता और तत्परता देखकर ही उसके मृतक पति की सैनिक सेवा का भार सौंपा था। उसके पीछे मिरजा शफ़ी तथा अफ़रा-सियाब खाँ ने भी बेगम को उसके पद पर स्थित रक्खा। जब दिल्ली में महादजी सिंधिया का डंका बजने लगा, तब उन्होंने और अधिक भूमि यमुना के दक्षिण-पश्चिम में देकर उसकी जागीर में विशेष वृद्धि की। तदनन्तर जब दौलतराव सिंधिया फर्वरी सन् १७९४ में महादजी के उत्तराधिकारी हुए, तब उन्होंने बेगम की जागीर और निजी सम्पत्ति पर उसका सत्व और पदवी बहाल रक्खी; और सिक्खों के आक्रमण रोकने और पश्चिमी सीमा की रक्षा करने का भार उसे सौंपा।

बेगम की जागीर का विस्तार समय समय पर घटता बढ़ता रहा। एक बार महादजी सिंधिया की पुत्री बाला बाई ने मेरठ के जिले में कई एक गाँव ले लिए। परन्तु जब सन् १८०३ में अँगरेजों और सिंधिया के बीच शत्रुता हो गई, तब वे ग्राम छिन गए। उसके इन गाँवों में से कुछ गाँव कुछ काल के लिये फिर बेगम के अधिकार में आ गए। परन्तु यह दीर्घ समय तक उनका कर न प्राप्त कर सकी; क्योंकि तारीख ३० दिसम्बर सन् १८०३ को जब अंजंगगाव की संधि हुई, तब उसकी ७ वीं धारा के अनुसार बालाबाई की जागीर उसे पुनः लौटा दी गई। अतएव रेज़ीडेन्ट देहली के पत्र तारीख ११ मई सन् १८०४ की आज्ञा का पालन करके बेगम को भी उक्त ग्राम छोड़ने पड़े। पीछे अगस्त सन् १८३३ में जब बालाबाई की मृत्यु हो गई, तब बेगम ने तारीख ६ जनवरी सन् १८३४ को लार्ड विलियम बेन्टिक गवर्नर जेनरल को लिखा कि ये गाँव मुझे इस कारण लौटा दिए जायँ कि ये "पहले मेरे कब्जे में थे, और न्यायपूर्वक उन पर केवल मेरा ही स्वत्व है"। परन्तु उसका दावा अस्वीकृत हुआ।

असाई के युद्ध में, जो सितम्बर १८०३ में हुआ था, बेगम ने अपने स्वामी सिंधिया को सहायता दी थी। इसके बदले में दौलतराव सिंधिया ने उसे परगना पहासू का जिसमें ५६ गाँव थे, और परगना तुरयल का अन्तर्वेद में दिया। किन्तु

ज़ेनरल पैरन ने पहासऊ का परगना तो बेगम को सौंप दिया, पर गुरथल का परगना न छोड़ा। इस लड़ाई का वर्णन पीछे "मराठों की सेवा" शीर्षक में हो चुका है।

सौभाग्य से बेगम की जागीर अन्तरवेद में सब से अधिक मूल्यवान् थी; क्योंकि नहर तथा यमुना, हिंडुन, कृष्णी और काली नदियों के पानी के बहुतायत के साथ प्राप्त होने का उसमें लाभ था। भूमि उत्तम और उपजाऊ थी। क्या अनाज, क्या रूई, क्या गन्ने और क्या तमाकू आदि समस्त प्रकार की जिन्स उसमें अधिकतापूर्वक उत्पन्न होती थी। किसान भी उसके राज्य में विशेष करके जाट थे, जो भारत भर में सब से श्रेष्ठ किसान होने और लगान चुकाने में प्रसिद्ध हैं।

अपने इस विशाल इलाके की व्यवस्था करने में बेगम इतनी तत्पर और दत्तचित्त रहती थी कि उसके बड़े से बड़े कट्टर समालोचक को भी उसके प्रबंध की प्रशंसा करनी पड़ी है। मिस्टर कीनी ने इस विषय में लिखा है—"उसके परगनों की ऐसी दशा थी कि उनके उपयुक्त निरीक्षणार्थ उसे बहुत परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता था"।

पीछे "इमारत" शीर्षक में बेगम के महल का उल्लेख करते हुए यह प्रकट किया गया है कि उसके बड़े कमरे की दीवारों पर चित्र लगे हुए थे। वास्तव में बेगम का महल इन बढ़िया चित्रों के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। निस्सन्देह उनमें अधिकतर बड़े उत्तम और मनोरंजक चित्र थे। वे

चित्र बेगम के इष्टमित्रों और दरबारियों के थे। बड़े बड़े निपुण और विख्यात चित्रकारों ने उन्हें चित्रित किया था; जैसे जीवनराम, लखनऊ के मिस्टर बीची (Beechey), दिल्ली के मिस्टर मेलविले (Melville) आदि। उन रोगनी चित्रों की संख्या लगभग २५ के थी।

पादरी क्रिस्टोफर साहब का कथन है कि ये सब चित्र यूरोपियन चित्रकारों के बनाए हुए हैं। केवल वह चित्र जिसमें बेगम के बनाए हुए सरधने के प्रसिद्ध गिरजा की प्रतिष्ठा होने के समय की क्रियाओं के सुन्दर दृश्य खींचा है, कदाचित् चित्रकार जीवनराम का हो, जिसका नाम ऊपर आ चुका है।

उक्त पादरी साहब का यह भी भ्रम है कि महल के नीलाम में बिकने से पहले ही डायस सम्बर की विधवा पुनर्विवाहित लेडी फौरेस्टर ने, जो बेगम की उत्तराधिकारिणी थीं, अपना मनुष्य भेजकर सन् १८९६ में ये सब चित्र उतरवा लिए थे। अतः पादरी आर्च बिशप आगरा ने जब यह महल बाग समेत सन् १८९७ के आरम्भ में मोल लिया, तब उस घर में ये चित्र नहीं थे। निस्सन्देह चित्र तो उस समय उस महल में नहीं थे; किन्तु लेडी फौरेस्टर भी कहाँ विद्यमान थीं जो अपना आदमी भेजकर उन्हें उतरवातीं? क्योंकि वह तो इससे पूर्व सन् १८९३ में ही मर चुकी थीं। इसलिये यह पता नहीं कि ये चित्र किसने उतरवाए। उन्होंने लेडी फौरेस्टर की

एक फौलादी तस्वीर भी थी, जो उसके चचा के पास भेज दी गई थी और शेष अथवा उनमें से अधिकांश चित्रों को सन् १८६५ में प्रांतीय गवर्नमेन्ट ने मोल ले लिया और अब वे गवर्नमेन्ट हाउस इलाहाबाद की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इन चित्रों के महत्त्व और सुन्दरता ने प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कीनी साहब को यहाँ तक मोहित किया कि उन्होंने उनका सविस्तर वृत्तान्त अपने एक निबन्ध में लिखकर उसे अँगरेजी के मासिक पत्र "कलकत्ता रिव्यू" में सन् १८८० में पृष्ठ ४६–६० में प्रकाशित कराया था।

इस स्थान पर यदि बेगम समरू के पुराने चित्रों का, जो जहाँ तहाँ देखने में आए हैं, उल्लेख कर दिया जाय, तो कदाचित् अनुचित न होगा।

(१) दिल्ली के लाला श्रीराम के संग्रह किए हुए चित्रों में एक पुराना चित्र है, जिसमें बेगम के मरदाना वस्त्र पहने, हुक्का हाथ में लिए और एक चोबदार के पास खड़े होने का दृश्य दिखाया गया है। इस चित्र को बाबू ब्रजेन्द्र-नाथ बनर्जी ने कलकत्ते के प्रसिद्ध अँगरेजी मासिक पत्र माडर्न रिव्यू की सितम्बर सन् १९२५ की संख्या में अपने लेख के साथ प्रकाशित कराया है। कदाचित् यह दिल्ली के लाला श्रीराम "खुम खानए जावेद" वाले हैं।

(२) बेगम की दो तसवीरें दिल्ली के अजायबघर में भी विद्यमान हैं।

(३) बेगम का एक छोटा चित्र सिलीमैन साहब की अँगरेज़ी पुस्तक "सिलीमेन्स रैम्बुल्ज़" के प्रथम भाग के सब से पहले संस्करण के मुखपृष्ठ पर भी प्रकाशित हुआ है।

(४) हमारे मित्र हिंदी संसार के चिर-परिचित पण्डित नन्दकुमार देव जी शर्म्मा ने हमको सूचित किया है कि उन्होंने बेगम समरू का चित्र कीनी साहिब की अँगरेज़ी पुस्तक "इन्डिया अन्डर फ़ी लैन्स" में छपा देखा है।

राजस्व

बेगम की मृत्यु होते ही उसकी जागीर की अवधि समाप्त हो गई और वह अँगरेजी राज्य में सम्मिलित हो गई। पश्चिमोत्तर प्रान्त के गज़ट के तीसरे भाग के ४३१ वें पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है—"समरू के तअल्लुके का वह अंश जो अवधि के गुजरने पर मेरठ के जिले में सम्मिलित हुआ, उसमें सरधना, बुढ़ाना, बड़ौत, कुताना और बरनावा के परगने तथा दो और गाँव थे। इन समस्त परगनों के कर का पड़ता बीस वर्ष अर्थात् सन् १८१४ से लेकर १८३४ तक ५,८६,६५०) था। इस काल में जो रुपया प्राप्त हुआ, उसका पड़ता ५,६९,७२१) था; और शेष १६,९२६) नहीं मिला।"

बेगम के उत्तराधिकारी डायस समरू ने अपने एक आवेदन पत्र में, जो गवर्नमेंट को भेजा गया था, लिखा था—"उत्तरी भारत में अंतर्वेद के अंतर्गत जो भूमि थी, उससे प्रति वर्ष आठ लाख की आय होती थी। बेगम के द्वितीय पति

लीवैस्यू के पत्र में, जो इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित हुआ है, बेगम की जागीर के एक अंश की आय छः लाख रुपए लिखी है। अतएव अनुमान करना पड़ता है कि शेष परगनों का कर दो लाख रुपए था। इसी लिये सब को मिलाकर आठ लाख रुपए सालाना की आय प्रकट की गई है।

अंतर्वेद से बाहर के परगनों की आय का ब्यौरा इस प्रकार है कि परगना बादशाहपुर झारसा से ८२०००), भुटगाँग ग्राम से २२०००) और अन्य मौजों भोगीपुरा शाहगंज आदि से ८०००) थे। इनका जोड़ एक लाख बीस हजार रुपए सालाना होता है।

बेगम और अँगरेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी में परस्पर जो लिखा पढ़ी हुई थी, उससे यह अटकल लगाई जाती है कि बेगम की आय के और भी मार्ग थे; क्योंकि यह प्रतीत होता है कि वह उस माल पर राहदारी शुल्क लेती थी, जो उसकी भूमि में खुशकी और तरी से गुज़रता था।

इसका निश्चय उस गोशवारे से होता है जो श्रीमती के वकील मुहम्मद रहमत खाँ ने पाँच वर्ष (१२४२-१२४६ हिजरी, सन् १८२६-२७ से १८३०-३१ ई० तक) का बनाकर गवर्नमेंट को मई सन् १८३२ में भेजा था। यह शुद्ध बचत है; क्योंकि इसमें से वसूल करनेवाले कर्मचारियों का वेतन और पेनशन घटा दी गई है। उसके अंक निम्न लिखित हैं—

	कर भूमि	कर पानी
सन् १२४२-४६ हिजरी		
परगना जेवर	८७१६॥≡)	१००६२॥)
„ टप्पल	६८२६॥≡)।	६४६५≡)
	१८५५६॥=)।	१६५२७॥≡)

जेवर और टप्पल के परगनों की राहदारी के पानी के शुल्क का पड़ता ३,२०५॥)॥१ वार्षिक और पृथ्वी के कर का पड़ता २७११।-)। था।

जेवर, टप्पल और कुताने के परगनों से ही केवल नदी के घाटों पर कर एकत्र किया जाता था; क्योंकि बेगम के राज्य के किसी और परगने में नदी नहीं थी, जहाँ पर घाटों की उतराई का कर लिया जाता।

मिस्टर डब्ल्यू० फ्रेजर साहब एजेन्ट गवर्नर जनरल दिल्ली के पत्र तारीख ३१ अगस्त १८३२ से, जो उन्होंने गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी के नाम भेजा था, विदित होता है कि सितम्बर सन् १८३२ में बेगम ने यमुना के दोनों ओर के घाटों के महसूलों के बदले ४,८६६॥।)॥ हमारी की किस्तों के द्वारा खजाने दिल्ली से लेना स्वीकृत किया था; अर्थात् ३६४४≡)॥ जेवर और टप्पल के परगनों के घाटों के और ८२२॥)॥१ कुताने के घाटों के।

मेरठ युनिवर्सल मैगेज़ीन सन् १८३७, भाग ४, संख्या २३८ से यह ज्ञात होता है कि बेगम के मुहकमों के सादर के महसूल

के सत्व में कभी हस्तक्षेप नहीं हुआ। उन दिनों में पक्की सड़कें तो बहुत ही कम थीं। केवल वह सड़क पक्की थी जो मेरठ से सरधने को जाती है और जिस पर व्यापारी बहुधा आते जाते थे। इसी सड़क पर माल लानेवालों पर वह कर लगाती थी। इसके अतिरिक्त उसकी आय के और भी कुछ मार्ग थे। वह गाँवों में पैंठों पर, मेलों पर एवं तीर्थों के यात्रियों से भी कर उगाहती थी।

व्यय

सलीमेन साहब के मत के अनुसार "बेगम के सैनिक विभाग का व्यय लगभग चार लाख रुपए वार्षिक था; और उसके देशीय विभाग के जो कार्य्यकर्ता थे, उन पर उसे अस्सी हजार रुपए खर्च करने पड़ते थे। लगभग इतना ही रुपया उसको अपने घरेलू सेवकों और अन्य खर्चों में उठाना पड़ता था। यह सब मिलाकर वार्षिक व्यय छः लाख रुपया बैठता था। सरधने और दूसरे परगनों का नियत राजस्व, जो सेना के व्ययार्थ उसे समय समय पर मिला करता था, कभी उससे, जो सेना के निर्वाह के लिये पर्याप्त था, अधिक नहीं प्राप्त हुआ।"

यह कथन सत्य प्रतीत होता है; क्योंकि इतने विशाल दल के रखने और दूसरे भारी भारी खर्चों का बोझ ऐसा था जिसके कारण कठिनता से आधा करोड़ रुपया भी उसने बचाया। और खर्च जाने दो, केवल अपने आश्रितों को

५६६१०॥।-)॥। मासिक तो उसे पेनशन का प्रति मास देना पड़ता था। जब से अँगरेजों के साथ उसकी संधि हुई, तब से उसने अवश्य अपने राज्य के अधिकार का भोग भोगा। किसी किसी का विचार है कि यदि वह चाहती तो इससे कहीं अधिक रुपया संचय कर लेती। परन्तु यह केवल कल्पना ही कल्पना है; क्योंकि अंगरेजों के साथ उसकी जो संधि हुई, उसके अनुसार वह अपना सैनिक व्यय नहीं घटा सकती थी। और तो और, उसे अपनी आधी सेना का आवश्यक व्यय भी संधिपत्र की शरतों के अनुसार देना पड़ता था, जो व्यय सदैव कम्पनी की सेवा में रहती थी। इस सेना में तीन पल्टनें और एक भाग (Park) तोपखाना था।

देहली के बादशाह की जागीरदार होने के कारण बेगम के लिये आवश्यक था कि वह अपने बादशाह को कठिनाई के समय में सहायता देने के निमित्त अपने पास सेना रक्खे। उसकी सेना का एक भाग राजधानी सरधने में रहता था और दूसरा दिल्ली की शाही सेवा में। कवायद जाननेवाली सेना के अतिरिक्त वह रंगरूटों की सेना की भरती भी, जो उस वक्त "सेहबन्दी" कहलाती थी, आवश्यकता पड़ने पर कर लेती थी। सरधने की कोठी के समीप छोटे से दुर्ग में भरा पूरा शस्त्रालय (arsenal) और तोपों के बनाने का कारखाना था। उसकी सेना एक सुशिक्षित सेना थी जिसमें पैदल पल्टन, तोपखाना और रिसाले का हिस्सा था.

जो विविध जातियों के युरोपियनों के अधीन थे। जरमन जनरल पाउली के वध के पश्चात्, जो सन् १७८२ में हुआ था, उसके सैनिक अफसर सिक्खों की चढ़ाइयों का दमन करने के निमित्त विशेष रूप से तत्पर हो गए थे। जनरल पाउली के पश्चात् उसकी सेना की कमान आयरलैंड निवासी जार्ज थामस, फरासीस ली वैसौल्ट, सेलौर और कर्नल पोइथौड ने क्रमशः सँभाली। उसकी मृत्यु के समय सेना का कमान्डर जनरल रैवालिनी था; और उसके अतिरिक्त ग्यारह युरोपियन अफसर उसमें थे और जिनमें से एक प्रसिद्ध जार्ज थामस का पुत्र जान थामस भी था।

वेगम स्वतः एक निडर, लड़ाकी और सेना की चतुर नेत्री थी। वहुत सी लड़ाइयों में वह आप सेना की संचालक वनी थी। कर्नल स्किनर साहव ने वेगम को अपनी आँखों से अपनी सेना को लड़ाते हुए देखा था जिसकी उन्होंने वहुत प्रशंसा की है।

दक्षिणी लोग जिन्हों ने वेगम की ख्याति सुन रक्खी थी, उसे जादूगरनी समझते थे जो अपने शत्रुओं पर अपनी चादर* डालकर उन्हें मार डालती थी।

सन् १८२५ में अँगरेजों ने भरतपुर पर जो गोले वरसाए थे और वेगम ने भी वहाँ स्वयं युद्ध क्षेत्र में गमन करके अपने

* पुराने जमाने में "चादर नामक एक प्रकार की वन्दूक भी होती थी।

रण कौशल का जो परिचय दिया था, उसके संबंध में महाशय ब्रजेन्द्रलाल बनर्जी ने प्रमाण देकर इस प्रकार लिखा है— "जब लार्ड कम्बरमियर (Lord Combermere) ने भरतपुर पर घेरा दिया, तब बेगम का सैनिक उत्साह नए सिरे से उभर आया। उसकी इच्छा युद्ध क्षेत्र में उतरने और विजय-प्राप्ति के गौरव में भाग लेने की हुई।" लार्ड कम्बरमियर के एडीकाँग मेजर आर्थर (Major Arther) ने लिखा है—

"सन् १८२६ में जब सेना भरतपुर के आगे थी, तब कमान्डर इन-चीफ ने यह चाहा कि हमारे भारतीय मित्रों में से कोई सरदार, अपनी किसी वाहिनी के साथ जो भरतपुर के क़िले के घेरा देने में प्रवृत्त हो, न जाय। इस आज्ञा ने बेगम के गर्व को आघात पहुँचाया; क्योंकि मथुरा की सँभाल उसको सौंपी गई थी। उसने इसका घोर प्रतिवाद किया। उसने कहा—यदि मैं भरतपुर न जाऊँगी, तो सारा हिन्दुस्तान कहेगा कि बेगम बुड्ढी क्या हुई, कायर बन गई।"

उसके सैनिक अफसरों की वर्दी के विषय में हेबर साहब का कथन है—

"वस्त्र भिन्न भिन्न भाँति के थे; एक दूसरे से नहीं मिलते थे। एक ही तरह के नमूने या रंग का विचार किए बिना प्रत्येक अपना मनमाना और अपनी रुचि का वस्त्र पहनता था। सेना पीले कपड़े के अँगरखे पहने हुए थी जिनकी एक-सी काट छाँट थी। यद्यपि उनका रूप अधिकतर सैनिकों का सा न था,

परन्तु कहा जाता है कि वे अच्छे योद्धा हैं, वे वीर भी बड़े हैं और कड़ी झेलनेवाले भी हैं।"

बेगम की सेना की संख्या समय समय पर घटती बढ़ती रहती थी। इबारत नामा से पता चलता है कि सन् १७८७ में जब बेगम ने गुलाम क़ादिर को परास्त किया, उसकी सेना में "चार पल्टनें सिपाहियों की लड़ाई का काम सीखी हुई ८५ तोपों के सहित थीं।"

फ्रैंकलिन साहब जार्ज थामस के जीवन चरित्र में सन् १७९४ की घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय बेगम की फ़ौज में चार पैदल पल्टनें, २० तोपें, और लगभग ४०० के घुड़सवार सेना थी जिन पर अनुभवी और मानी हुई योग्यताओं के अफसर कमान करते थे"। उन्हीं लेखक महाशय का दूसरे स्थान पर यह कथन है—"सन् १८०२ में मिस्टर थामस के वर्णन के आधार पर लगभग छः छः सौ सिपाहियों की ५ पल्टनों के ३००० सिपाही; २४ तोपें; १५० घुड़सवार थे। पीछे सन् १७९७-९८ में उनकी संख्या और बढ़ गई। मेजर फर्डिनेन्ड स्मिथ ने जो दौलतराव सिंधिया की फ़ौज के साथ थे, लिखा है,—"बेगम की सेना में सितम्बर सन् १८०३ में ६ पल्टनें अथवा ४००० योद्धा, ४० तोपें और २०० घुड़सवार थे।"

बेगम की मृत्यु के थोड़े दिन पीछे मिस्टर आर० एन० सी० हैमिल्टन साहब मजिस्ट्रेट और कलक्टर मेरठ ने एक ब्योरेवार चिट्ठा अपने अन्वेषण के आधार पर ऐसा तैयार

किया था जिससे बेगम की फ़ौज की ठीक ठीक संख्या विदित हो। इस चिट्ठे में बेगम की सेना निम्नलिखित है—

हिन्दुस्तानी पैदल पल्टन	२६४८
बॉडी गार्ड के सिपाही	२६६
अशिक्षित घुड़सवार	२४५
तोपखाने का अमला	१००७
	कुल ४४६४

अँगरेज़ों से संधि के पश्चात् आधी सेना अर्थात् देशी सिपाहियों की ३ पल्टनें और कुछ भाग तोपखाने का अँगरेज़ों की आवश्यकताओं के लिये अलग करके उनकी आज्ञा के अधीन रख दिया गया था।

मिस्टर गुथरी (G. D. Guthrie) कलक्टर सहारनपुर ने सितम्बर सन् १८०५ में बेगम के दफ़ादारों के मध्य जो अनुसन्धान किया, तो विदित हुआ कि एक पल्टन का वेतन सितम्बर सन् १८०३ में ६५६५)+४२४६) का था, जब कि वह पल्टन दक्षिण में नौकरी पर थी। जो अफ़सर ३ या अधिक पल्टनों के ब्रिगेड की कमान पर था, उसकी और उसकेस्टाफ (Staff) की रकमें ५४१)+४०१) थीं। नौकरी पर बोली हुई सेना के बड़े जनरल और उसके स्टाफ की रकम =६५) थी।

जब सरधना अँगरेज़ी शासन में आ गया तो बेगम की सेना में भी कमी हुई और व्यय बहुत ही कम रह गया।

बेगम की उन तीनों पल्टनों का मासिक व्यय, जो नौकरी पर अँगरेजी इलाके में रहती थीं ११,७६३) था; और तोपखाने के भाग का जो दिल्ली के उत्तर पश्चिम ८६ मील पर हासी में था १७० ≡)॥२ था।

बेगम के सिपाही सुशिक्षित और योद्धा थे; अतएव अँगरेजी सरकार के उच्च अफसर चाहते थे कि उसकी मृत्यु के पीछे उन पल्टनों के अतिरिक्त जो अंगरेजी इलाके में थीं, सरधने में रहनेवाली सेना के अंश भी अपनी सेना में रख लें। किन्तु बेगम के देहान्त के एक मास पश्चात् मेरठ के मजिस्ट्रेट ने कोई आदेश पहुँचने के पहले ही उनका वेतन उनको दे दिया और सेना तोड़ दी। उनमें से कुछ पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह के यहाँ चले गए।

उत्तराधिकारी

बेगम समरू के जीवन के उत्तर समय का इतिहास उसके प्रिय सरधने के राज्य का इतिहास है; और वह इतिहास उसके उत्तराधिकारी के दुर्भाग्य की शोकमय घटना के साथ समाप्त होता है।

यह बताया जा चुका है कि जनरल समरू के दो मुसलमान स्त्रियों से विवाह हुए थे। उसकी पहली स्त्री के एक पुत्र ज़फरयाब खाँ ने कप्तान लैफेवरे (Capt. Lefevre) की कन्या से विवाह किया था। उससे उसके यहाँ एक पुत्री

जूलिया ऐनी (Zulia Anne) तारीख १६ नवंबर सन् १७८६ की उत्पन्न हुई। जूलिया ऐनी का विवाह स्काटलैंड निवासी कर्नल जी० ए० डायस (Col. G. A. Dyce) से, जो बेगम की सेना में था, तारीख ८ अक्तूबर सन् १८०६ को हुआ। यद्यपि ज्यूलिया ऐनी को बहुत से बालक उत्पन्न हुए, परन्तु एक पुत्र और दो पुत्रियों के अतिरिक्त और सब बचपन में ही मर गए। जो पुत्र ८ दिसंबर सन् १८०८ को पैदा हुआ, उसका नाम डेविड अक्टरलोनी डायस (David Octerlony Dyce) रक्खा गया। और कन्याएँ जिनका फर्वरी सन् १८१२ और १८१५ में जन्म हुआ, ऐनी मेरी (Anne Mary) और जॉर-जियाना (Georgiana) कहलाईं। कर्नल डायस की भार्या ज्यूलिया ऐनी, जिसका दूसरा नाम यह बेगम भी था, १२ जून सन् १८२० को दिल्ली में मरी। बेगम समरू ने उसके बालकों को अपने पास रक्खा और उनका अपने बच्चों का सा पालन पोषण किया। लड़कियाँ ऐनी और जौर्जियाना जब सयानी हुईं, तब उनका विवाह २ अगस्त सन् १८३१ को दो योग्य यूरो-पियनों से कर दिया जो उसकी सेवा में थे। एक कप्तान रोज ट्रोप (Capt.Rose Troup) था जो पहले बंगाल की सेना में रह चुका था और दूसरा पाल सोलरोली (Paul Solaroli) था जो इटली देश का निवासी था और पीछे से मारक्विस आफ बरिओना की पदवी को प्राप्त हुआ। इन दोनों ने बहुत सा जहेज़ भी पाया था।

कर्नल जी० ए० डायस के हाथ में कुछ समय तक बेगम के राज्य का शासन और सैनिक प्रबंध था और वह अपनी स्वामिनी का कृपापात्र बन गया था। यहाँ तक कि उस वक्त में बेगम की यह इच्छा हो गई थी कि इसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाऊँ। परन्तु बेगम की मृत्यु से बहुत पहले ही वह अपने उग्र स्वभाव और असह्य आचरण के कारण उसके मन से उतर गया था। अतएव सन् १८२७ में उसको विवश होकर इस्तेफा देना पड़ा। बेकन साहब लिखते हैं—"ब्रिटिश गवर्नमेंट से गुप्त लिखा पढ़ी करने का बहाना करके वह निकाल दिया गया।" उसके पुत्र डेविड ओकूर-लोनी डायस को उसके पद पर आरूढ़ किया गया। इस दुर्घटना से बेगम के साथ कर्नल का व्यवहार शत्रुवत् हो गया। बेगम तो बेगम, वह अपने पुत्र का भी बुरा चाहने लगा।

बेगम के तो बच्चे हुए ही नहीं, इसलिये ऐसा जान पड़ता था कि परमेश्वर की यह इच्छा थी कि वह एक माताहीन बालक की माता बन जाय। वह डेविड ओकूरलोनी डायस को प्यार करती थी। बेगम को उसके पढ़ाने लिखाने की बहुत चिंता रहती थी। कुछ समय तक मिस्टर फिशर साहब, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मेरठ के पादरी थे और बेगम की कोठी के पड़ोस में रहते थे, युवा डेविड के शिक्षक रहे। बेकन साहब लिखते हैं—"डायस ने दिल्ली कॉलेज में शिक्षा पाई है तथा वह फारसी और अँगरेजी का उत्तम विद्वान्

है। यद्यपि वह अभी नवयुवक है, तो भी कार्य-कुशल और नीतिज्ञ बताया जाता है; क्योंकि इसका परिचय उसके अगणित भिन्न भिन्न कार्य्यों के करने की शैली से मिलता है। उसका शरीर बड़ा मोटा और चौड़ा है। यद्यपि उसका रंग अति काला है, किन्तु उसका चेहरा बड़ा सुन्दर और मनोहर है जिससे कोमलता और चतुरता टपकती है। स्वभाव में दया है; और जो उसे जानते हैं, सामान्यतः उन्हें वह प्रिय लगता है।"

डेविड की योग्यताओं और गुणों ने उसे बेगम का उसके जीवन के उत्तर समय में अतीव प्यारा और दुलारा बना दिया, और वह अपनी विशाल संपत्ति का समस्त प्रबंध उसके हाथ में सौंपकर अत्यंत प्रसन्न हुई। इस कारण अनेक मनुष्य युवक डायस का सौभाग्य देखकर जलने भुनने लगे।

अपनी मृत्यु से थोड़े वर्ष पहले बेगम ने अपनी संपत्ति विभक्त करने की व्यवस्था की। उसका वसीयतनामा * तारीख़ १६ दिसंबर सन् १८३१ को लिखा गया था जिसके अनुसार डेविड आक्टरलोनी डायस और बंगाल के तोपख़ाने के कर्नल क्लेमेन्स ब्रौन (Colonel Clemence Brown) उसके वली (रक्षक) नियुक्त हुए। वसीयतनामा अँगरेज़ी भाषा में

---

* इस पूरे वसीयतनामे की प्रति पंजाब सिविल सेक्रेटेरियट के [illegible] (Records of the Punjab Civil Secretriat) में है। मूल अँगरेज़ी वसीयतनामे के साथ साथ चार इक़रारनामे अँगरेज़ी में लिखे हुए [illegible] थे जिनमें २,४०,०००) सिक्का रुपयों [illegible] के विभाग का ब्यौरा था।

तैयार हुआ था; अतएव बेगम ने उसे पर्याप्त नहीं समझा। उसने तारीख १७ दिसंबर सन् १८३४ को मजिस्ट्रेट मेरठ, मुख्य मुख्य सैनिक अफ़सरों और वहाँ के युरोपियन निवासियों को अपने महल सरधने में अपने बख़शिशनामे (दानपत्र) की तस्दीक़ करने के हेतु, जो फारसी भाषा में उसने प्रस्तुत किया था, बुलाया। फारसी में यह बखशिश नामा इसलिये तय्यार हुआ कि वह आप उसे समझती थी। और उन सब की उपस्थिति में बेगम ने अपनी सर्व प्रकार की निजी संपत्ति अपने दत्तक पुत्र डेविड को सौंप दी और आप उससे ला दावा (सत्वहीन) हुई। उसी दिन से डेविड डायस समरू कुल में प्रविष्ट हुआ और उसका नाम डेविड ऑक्टरलोनी डायस समरू हो गया।

अधिकतर डायस समरू को ही बेगम की सम्पत्ति तर्के में मिली*। दो लाख रुपए की पूँजी तो उसने नक़द पाई। परन्तु

---

* डायस समरू के अतिरिक्त बेगम ने और ३,५७,०००) इस प्रकार अपने तर्के में दिए—(अ) ७०,०००) कर्नल लोमेन्स ब्राउन को उसकी वली की सेवा के निमित्त; (इ) १,५७,०००) अपने प्रिय मित्रों, अनुचरों और संबंधियों को जिनके नाम ये हैं—

जॉर्ज थॉमस के पुत्र जॉन थॉमस को जिसको बेगम अपना पुत्र समझती थी, १८०००); उसकी स्त्री जोना को ७०००); उसकी माता मेरिया थॉमस को ७०००); कप्तान एनथिनी रेघलिनी को ६०००); उसकी स्त्री विक्टोरया को ११,०००); उसके पाँच पुत्रों को ५०००); तथा कमान्डेन्ट अबुल हसीर वेग को २०००); और (उ) पचास हजार तथा अस्सी हजार रुपए डायस समरू की दो बहिनों एना मेरी

इसके संबंध में यह शर्त हो गई कि वह उसे तीस वर्ष की आयु होने पर मिले और उस समय वह उसका केवल ब्याज ही लेता रहे। कर्नल ब्राउन साहब का, जो दूसरे संरक्षक नियत हुए, आदेश हुआ कि वह इस रुपए को कहीं ब्याज पर लगा दे। तारीख़ १२ मार्च सन् १८३६ के मेरठ के मजिस्ट्रेट के पत्र से विदित होता है कि श्रीमती बेगम ने अपने पीछे ४७,८८,६००) सिक्का सरकारी गवर्नमेंट की रक्षा में छोड़ा जो डायस समरू ने ही लिया होगा। इसके अतिरिक्त बेगम के समस्त आभूषण, रत्न, गृहस्थी के पदार्थ, पोशाक यहाँ तक कि हाथी, घोड़े और अनेक प्रकार का माल असबाब, भूमि, इमारत और बेगम की पैतृक संपत्ति सहित जो आगरा, दिल्ली, भरतपुर, मेरठ, सरधना और अन्य स्थानों में थी, उसके अधिकार में आई। केवल जिस सम्पत्ति से वह वंचित रहा, वह परगना बादशाहपुर-झारसा था जो यमुना के पश्चिम में था और मौज़ा भोगीपुर-शाहगंज था जो नूया

और जोजिगाना के लिये ब्याज पर जमा किए। किन्तु (ड) और (च) का जोड़ १,५७,०००) नहीं होता, वरन् १,८६,०००) अर्थात् ३२०००) अधिक होता है। (ए) अपने समस्त सेवकों को भी, चाहे वे सरकारी हों अथवा घरेलू हों परन्तु जो उसकी मृत्यु के समय उपस्थित थे, उनके तीन वेतन के अतिरिक्त पारितोषिक दिया। (डायस समरू ने अपनी दोनों बहनों को अपने इंग्लैंड जाने से पूर्व दो दो लाख रुपए देकर छुट्टी पाई।) केगन साहब यह भी लिखते हैं कि बेगम ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने चिकित्सक डाक्टर टामस डेवर (Thomas Dever) को भी २०,०००) देने की आज्ञा दी थी।

अकबराबाद (आगरा) में था। इनको तथा सैनिक सामग्री * को बेगम की मृत्यु होने पर, जब कि जागीर की अवधि गुजर गई, कंपनी ने जब्त कर लिया। डायस समरू कदापि इससे प्रसन्न नहीं हुआ, किन्तु उसने इनकी प्राप्ति के निमित्त कोई मुकदमा दायर नहीं किया। उसने इसके विषय में अवश्य आपत्ति की, युक्तियाँ और आवेदनपत्र उपस्थित किए और यह प्रकट किया कि मेरे साथ अन्याय का व्यवहार किया गया है। परन्तु जब उसके प्रयत्न उसके स्वत्वों को प्रमाणित करने में विफल हुए, तब उसने निराश होकर अपने स्वत्व एक पत्र द्वारा श्रीमती महारानी विक्टोरिया पर प्रकट किए। †

---

* डायस समरू ने सैनिक सामग्री, शस्त्र, सिपाहियों की वर्दी, चमड़े की वस्तुओं, तोपों दूसरे सैनिक पदार्थों, बारूद, गोलियों और गोलों, और मेगेजीन का मूल्य ४,६२०६२) कूता था। उसने सरकारी इमारतों, क़िले, दफ्तर आदि के हेतु कुछ माँग नहीं की।

† किन्तु श्रीमती डायस समरू जो पीछे से लेडी फौरेस्टर बनी, अपने दुःखों को दूर कराने के उपाय करने में अपने पति से भी बढ़ चढ़कर निकली। उसने कम्पनी के विरुद्ध परगना बादशाहपुर-झारसो का इलाके पाने के लिये, जिससे ८२,०००) की वार्षिक आय थी, कानूनी चाराजोई करने में बहुत रुपए व्यय किए। मुकदमा अंत में निर्णयार्थ प्रीवी कौन्सिल के समक्ष पेश हुआ। अपीलाण्ट का दावा और बातों के अतिरिक्त यह था कि परगना मुतनाजे "अस्तमरा" अर्थात स्थायी देन का था; अतएव ऐसी स्थिति में बेगम की जागीर का भाग नहीं समझा जा सकता। बेगम और कम्पनी के मध्य सन् १८०५ में जो सन्धि हुई, उसके अनुसार वे स्थान जो दुआब के अन्तर्गत थे, उसकी मृत्यु के पश्चात् वे ही कम्पनी के भोग्य थे। किन्तु बादशाहपुर-झारसा दुआब के बाहर है; अतएव कंपनी का उसको हटाना

तीस वर्ष की अवस्था होने पर डायस समरू एक बड़ी सम्पत्ति और धन का स्वतंत्र स्वामी हो गया। न उसके ऊपर कोई क़ानूनी दबाव रहा और न उसे ठीक मार्ग पर चलाने को सच्चा सहायक रहा। उसको तीव्र उत्कंठा हुई कि पश्चिमी देशों में भ्रमण करे और उन आश्चर्यमय बातों को अपनी आँखों से देखे जिनके विषय में उसने बहुत कुछ सुना था।

बेगम के दो पुराने मित्रों ने युवा उत्तराधिकारी को ऐसी सम्मतियाँ दीं जो एक दूसरे के विरुद्ध थीं। लार्ड कम्बरमियर ने युरोप देखने के लिये उसे दबाया। उधर कर्नल

या लेना लेशमात्र न्याय-संगत नहीं है। रिज़ीडेन्ट का आग्रह था कि उस संधि के अनुसार जो तारीख ३० दिसम्बर सन् १८०३ को हुई, दुआब और यमुना के पश्चिम की भूमि का आधिपत्य दौलतराव सिंधिया से निकलकर ईस्ट इण्डिया कंपनी को मिला और बेगम उस पर अपने जीवन पर्यंत अपनी दुआब की जागीर के साथ केवल अधिकृत रही। अपने दावे को सिद्ध करने के अभिप्राय से [illegible] ने [illegible] असली सनद, जो दिल्ली के बादशाह ने बेगम के सौतेले पुत्र ज़फ़रयाब ख़ाँ के नाम प्रदान की थी जिसके नाम पहले यह परगना स्थिर था, नहीं पेश की; किन्तु उन्होंने एक बनावटी सनद की प्रतिलिपि जिस पर महादजी सिंधिया की मोहर है जो पूर्व वर्ष के आदि में ही मर चुका था, पेश की है। प्रिवी कौंसिल जुडीशल कमेटी ने दावे और रद्द दावे पर पूर्ण रूप से विचार करके तारीख ११ मई सन् १८७२ को इस मुकदमे में कंपनी के हक में फैसला दिया। किन्तु यह स्वीकार हो गया कि सैनिक सामग्री, जिसको कंपनी ने ज़ब्त कर लिया था, वास्तव में बेगम ने अपने दामों से मोल ली थी और डायस समरू को उसका मूल्य [illegible] मिलना चाहिए था। जिन्हें इस संबंध में अधिक जानना हो, उन्हें प्रिवी कौंसिल का फैसला पढ़ना उचित है, जिसमें इस मुकदमे का पूर्ण [illegible] किया गया है।

एस० वी० स्किनर साहब ने उसे एक फारसी शेर लिखकर ऐसा करने से बहुत कुछ रोका। फील्ड मारशल की सम्मति से कर्नल का परामर्श अति श्रेष्ठ था; तो भी उसने युरोप जाने की ही ठानी।

यह सत्य है कि डायस समरू ने भारत में जन्म लिया और यहीं उसका पालन पोषण होकर वह बड़ा हुआ। परन्तु उसका वाप स्काटलैंड निवासी था; अतएव यह उसके लिये स्वाभाविक ही था कि वह अपने पूर्वजों का देश देखे।

इंगलैंड जाने की इच्छा से वह सन् १८३७ में कलकत्ते आया; किंतु उसका प्रयाण एक वर्ष के लिये और स्थगित हो गया; क्योंकि उसके पिता कर्नल डायस ने सुप्रीम कोर्ट कलकत्ता में उसके विरुद्ध वेगम के वली की हैसियत से नालिश दायर कर दी और उसकी संपत्ति से चौदह लाख रुपए पाने का दावा पेश किया। उसका पुत्र डायस समरू अपनी पुस्तक में लिखता है कि कर्नल का दावा अपनी नौ वर्ष की वक़ाया तनख्वाह पाने के विषय में था। मुकदमे में राजीनामा हो गया; और थोड़े दिन पीछे डायस समरू अपने वहनोई पाल सौलारोली को अपने इलाके और संपत्ति का प्रवन्ध सौंपकर इंग्लिस्तान के लिये जहाज़ में सवार हो गया। इस प्रकार पिता और पुत्र एक दूसरे से जुदा हुए और फिर इस पृथ्वी पर कभी न मिले। कर्नल डायस कलकत्ते में अप्रैल १८३८ में मरे और फोर्ट विलियम में दफन हुए।

डायस समरू जून सन् १८३८ में इंगलैंड पहुँचा और अगले वर्ष रोम गया जहाँ बेगम की मृत्यु की तीसरी वर्षी मनाई।

डायस समरू की इंगलैंड में अच्छी प्रसिद्धि हुई। अगस्त सन् १८३९ के आदि में वह मेरी एनी डर्विस (Mary Anne Dervis) से जो एडवर्ड डर्विस, द्वितीय विस्काउन्ट सेन्ट-विंसेन्ट की इकलौती पुत्री थी, परिचित हो गया; और २६ सितम्बर सन् १८४० को दोनों का विवाह हो गया। दुलहन का वय लगभग २८ वर्ष के होगा। अगले वर्ष सडब्यूरी (Sudbury) की ओर से वह पार्लियामेन्ट का मेम्बर नियत हुआ।

किन्तु खेद है कि यह विवाह उसको शान्ति और सुख पहुँचाने के बदले उलटा बिलकुल उसके दुःख और नाश का कारण हुआ। थोड़े समय पीछे दंपति के बीच अतीव बैर भाव उत्पन्न हुआ; यहाँ तक कि डायस समरू ने अपनी भार्या को स्पष्ट रूप से ऐसे दुष्कर्म से कलङ्कित किया जो एक साध्वी पत्नी के लिये दूषित ही गिना जाता है। उसे अपनी स्त्री की भक्ति और प्रेम में संदेह पैदा हो गया। श्रीमती समरू भी अपने पति की संगति से खिन्न हो गई जिसके कार्य उसे अप्रिय प्रतीत होते थे। अतएव उसने अपने पति को पागल ठहराने के लिये जी जान से यत्न करना आरंभ किया। उसके पति के दोनों बहनोई कप्तान रोज़ट्रोप और पाल सालारोलो* ने, जो उससे ईर्ष्या रखते थे, इस दुष्ट

* उन्होंने बहुधा मंनशी डायस समरू से कहा कि सरधनापुर का रहना भी

को सहायता दी और अंत में इनके मन का चाहा हो गया। ग़रीब डायस समरू पागल ठहराया दिया गया।

जब श्रीमती डायस समरू अपने पति को पागल ठहराने के उपाय में सफल हुई, तो ताजे घाव पर नमक छिड़कने की लोकोक्ति को चरितार्थ करने के लिये आप उसके स्वास्थ्य के हेतु चिंता करने लगी और एक चलता पुर्जा डाक्टर बुलाया। एक दिन प्रातःकाल जब डायस सोकर उठा, तो क्या देखता है कि मैं बंदी बन गया हूँ और तीन रखवाले द्वार पर मेरी सँभाल के निमित्त नियत हो गए हैं। पहले १६ सप्ताह तक वह निरन्तर घर में बन्द रहा। तब कहीं जाकर तारीख़ ३१ जूलाई सन् १८४३ को एक कमीशन उसके गृह पर उसकी मानसिक स्थिति का अनुसंधान करने के हेतु गया, जिस ने यह निश्चय किया कि इसका दिमाग ठीक नहीं है; अतएव यह अपने कार्यों की व्यवस्था का भार उठाने के लिये नितान्त असमर्थ है। परन्तु यह डायस समरू का सौभाग्य समझो कि जो वह पागल होने के निश्चय के प्रभाव से बच गया। कमीशन ने उसे अपराधी क्या बताया कि उसके स्वास्थ्य ने भी जवाब देना आरम्भ किया और वह एक डाक्टर के निरीक्षण में जल वायु

बहुमूल्य है, उसमें हमारी पत्नी भी साझी थी और डायस समरू ने अनीति करके उनके स्वत्व की साक्षी अर्थात् वह मूल पत्र जिससे वह प्रदान हुआ था, उनको वंचित करने के अभिप्राय से नष्ट कर दिया, जिससे आपही समस्त सम्पत्ति का स्वामी बन जाय।

बदलने के बहाने वहाँ से ब्रिस्टल (Bristol) भेजा गया और ब्रिस्टल से लिवरपूल (Liverpool) ले जाया गया। लिवरपूल में उसे भागने का अवसर प्राप्त हो गया और वह तारीख़ २१ सितम्बर सन् १८४३ के प्रातःकाल चलकर अगली संध्या को पैरिस में पहुँचा। परन्तु न उसके पास उस समय कुछ रुपया था और न कोई और वस्तु थी। जो कुछ था, वही था जो उसके शरीर पर था। उसके पास एक सू* (Sou) तक न था। कुछ सप्ताह तक वैसे ही रहा। जिस जान पहचानवाले से जो कुछ उधार उसे मिल गया, उसी पर उसने गुजारा किया। शीघ्र ही एक कमेटी उसकी सम्पत्ति के प्रबंध के हेतु बनाई गई जिसने दो लाख वार्षिक आय प्राप्त करानेवाली जायदाद के स्वामी के लिये सूक्ष्म वृत्ति नियत की और उसकी भार्या को उसके ताल्लुके से ४०,०००) रुपए वार्षिक भोग विलास में उड़ाने के लिये दिए।

संसार के समक्ष अपना सचेतपन सिद्ध करने और जो अभियोग उस पर आरोपण किए गए, उन्हें मिथ्या ठहराने के लिये डायस समरू ने पैरिस, सैन्ट पीटर्सबर्ग और ब्रूसल्ज़ के ही नहीं वरन् इंगलैंड के भी अतीव निपुण और फ़स्ट क्लास चोटी के चिकित्सकों से अपनी जाँच कराई: और उन सब ने सहमत होकर उसके सचेत तथा अपने कार्य्यों का प्रबंध आप

---

* सू एक फरासीसी सिक्का ५ सेन्ट के मूल्य का होता है।

कर सकने के योग्य होने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया। इन मेडिकल परामर्शों से प्रबलता-पूर्वक पूर्ण करके डायस समरू ने अपना आवेदनपत्र कोर्ट ऑफ चैन्सरी (Court of Chancery) अर्थात् उस समय के इंगलिस्तान के सर्वोपरि उच्च न्यायलय में इस हेतु से भेजा कि वह आज्ञा जो उसके संबंध में दी गई, समस्त रूप से रद्द करने का आदेश प्रदान किया जाय। परंतु चैन्सरी के डाकृरों ने जो विविध अवसरों पर उसकी डाकृरी परीक्षा की, उसमें वह उत्तीर्ण न हो सका। डायस समरू को प्रतीत गया कि इन लोगों से न्याय की आशा करना व्यर्थ है।

इस प्रकार हताश होकर उसको एक भिन्न मार्ग के अनुकरण करने की सूझी। उसने पैरिस नगर में अगस्त सन १८४८ में ५८२ पृष्ठों की एक मोटी पुस्तक "चैन्सरी की कचहरी में पागलपन का जो अभियोग लगाया है, उसका मिस्टर डायस समरू की ओर से प्रतिवाद" नामक प्रकाशित की। पुस्तक का यह उद्देश्य था कि उसके दुःखदायी मुकदमे के विषय में सर्वसाधारण अपना मत आप स्थिर करें।

यंत्रणाओं और निराशाओं के बोझ से दबकर डायस समरू दिन दिन घुलने लगा। यहाँ तक कि अंत में उसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया। सन् १८५० में वह लंदन चला आया जहाँ तारीख १ जुलाई सन् १८५१ को असहाय और अकेला सेन्टजेम्स स्ट्रीट के फैन्टन के होटल में मर गया।

१६ वर्ष बाद उसका मृत शरीर अगस्त सन् १८६७ में सरधने लाया गया और उसकी संरक्षिका बेगम की समाधि के समीप नीचे की ओर पृथक् क़बर में दफन हुआ।

डायस समरू की इच्छा यह थी कि उसकी घृणित स्त्री उसके धन में से कुछ न पावे। उसने अपना एक वसीयत-नामा लिखा था जिसमें यह आज्ञा थी कि मेरी समस्त संपत्ति मिश्रित जातियों के पिता माताओं से उत्पन्न हुए अर्थात् युरेशियन अथवा दोगले लड़कों के हेतु सरधने में एक स्कूल स्थापित करने में लगाई जाय। वहाँ जो महल है, उसकी इमारत से इसका श्री गणेश किया जाय। उसने अपनी इस वसीयत को सफल करने के निश्चय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टरों के सभापति और उप सभा-पति को उस स्कूल का संरक्षक नियत किया और १०,००० पौंड दोनों को तरके में दिए जाने के लिये रक्खे। इस पर भी उसका अर्थ सफल न हुआ। यद्यपि ये महानुभाव महा-रानी की कौन्सिल तक लड़े, किन्तु डायस समरू का वसीयत नामा इस कारण प्रत्येक न्यायलय से रद्द हो गया कि वह एक पागल का लिखा था और कानून के अनुसार उसकी सब संपत्ति की स्वामिनी अकेली उसकी विधवा समझी गई।

डायस समरू की विधवा मेरी एनी ने तारीख़ ८ नव-म्बर सन् १८६२ को जार्ज सैसिल वैल्ड, तीसरे बेरन फोरे-स्टर (George Cecil Weld, 3rd Baron Forester)

को अपना द्वितीय पति बनाया और तब लेडी फौरेस्टर के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसका पति तारीख १४ फरवरी सन् १८८६ को मृत्यु को प्राप्त हुआ; और सात वर्ष के पश्चात् अस्सी वर्ष की अवस्था में तारीख़ ७ मार्च सन् १८९३ को वह आप भी मर गई। उसके पीछे उसकी कोई संतान नहीं रही। जब तक वह जीवित रही, उसने सरधने के महल को उत्तम स्थिति में रक्खा; और फौरेस्टर हास्पिटल तथा डिस्पेन्सरी की बेगम के धन से सरधने में सैन्ट जौन्स कालिज के आगे स्थापना की जिससे सरधने और आसपास की जनता को लाभ पहुँचे *।

---

* यह पीछे वर्णन हो चुका है कि बेगम ने ५०,०००) रुपए डायस समरू की बहन एनी मेरी के निमित्त अपनी वसीयत में ब्याज पर रक्खे थे, और यह करार दिया था कि यदि एनी और उसका पति कर्नल ट्रोप निःसंतान मर जाय, तो उसके ब्याज की आय पुण्यार्थ लगा दी जाय। संतानहीन कर्नल ट्रोप ५ जुलाई १८६२ को मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसके ५ वर्ष पीछे १८ मार्च सन् १८६७ को उसकी स्त्री भी पतिलोक में उसके पास चली गई। इस पर लेडी फौरेस्टर ने धरोहर की पूँजी अर्थात् ५०,०००) रुपए से हास्पिटल और डिस्पेंसरी के लिये नवीन ट्रस्ट (Trust) १५ अप्रैल सन् १८७६ को बनाया, जो सन् १८८० तक बनकर तैय्यार हो गए। उसने इस शुभ कार्य्य के लिये १७२५ वर्ग गज माफ़ी भूमि दी, जिस पर एक गृह पहले से ही बना हुआ था, ताकि शफ़ाख़ाने का कार्य्य प्रचलित हो जाय। यह रुपया इन दिनों इलाहाबाद के खैराती कामों के महकमे के हाथों में है।

जॉर्ज थॉमस

बेगम समरू के अफसरों में जॉर्ज थॉमस एक ऐसा प्रसिद्ध असाधारण योग्य वीर पुरुष हुआ है जिसका नाम और काम उस समय के इतिहास में अंकित हो गया है। ईसवी सत्रहवीं और अठारवीं शताब्दी में भारतवर्ष में आकर अनेक युरोपियनों ने अधिक गुण प्रकट किए हैं और इस देश के इतिहास में वे अपना नाम छोड़ गए हैं। जॉर्ज थॉमस भी उनमें से एक था। बेगम के चरित्र में थॉमस का वर्णन विशेष कर कई कारणों से आया है; और उससे इसका इतना घनिष्ट और अनिवार्य सम्बन्ध हो गया है कि बेगम के अँगरेजी चरित्र-लेखक पादरी की गन साहब ने थॉमस का वृत्तांत अपनी पुस्तक में बेगम के चरित्र के अतिरिक्त पृथक् भी लिखा है। अतएव इस पोथी में भी उसका ही अनुकरण किया जाता है।

मिस्टर जॉर्ज थॉमस आयरलैंड (Ireland) देश के टिप्पेररी (Tipperary) स्थान का निवसी था। यह अंगरेजों के एक जंगी जहाज (Man of war) में मल्लाह होकर भारत में आया था। पुनः अपने जहाज को छोड़कर करनाटक में मारा मारा फिरा और थोड़े वर्षों तक उसने मद्रास के दक्षिण में पोलीगरों की सेवा कर ली। तदनन्तर उत्तरीय भारत को चल दिया और सन् १७८७ ई० में दिल्ली में पहुँचा: और यहाँ यह बेगम की सेना में अफसर के पद पर नियत हो गया।

अनन्तर उसने किस प्रकार गोकुलगढ़ में अपनी अतुलित वीरता का परिचय देकर शाह आलम बादशाह के प्राण बचाए, कैसे बेगम पर अपना पूर्ण प्रभाव डाला और उससे अपना विवाह करना चाहा, परन्तु इसमें उसे सफलता के बदले उलटी यह निराशा हुई कि उसका प्रतिरोधी फराँसीस अफसर ली वैस्यू बेगम का पति बन गया, जिससे वह बेगम की सेवा छोड़ने पर विवश हुआ और पहले उसने अँगरेजी छावनी अनूपशहर में नौकरी की और पुनः मराठे सरदार अप्पू खंडेराव की सेवा में नियत होकर उसने अपनी स्वतंत्र पृथक् जागीर प्राप्त की, किस भाँति ली वैस्यू के बहकाने पर बेगम ने उसके स्वामी और उसके साथ छेड़ छाड़ की जिसका उसने यथार्थ उत्तर दिया, और अंत में उसने कैसा विकट प्रपंच रचा कि जिससे बेगम का सब खेल बिगड़ गया, क्योंकि उसके पति के प्राण नष्ट हुए और वह आप बंदी हो गई जिससे लाचार होकर पुनः उसकी शरण ली और उसने भी अपनी पूर्व स्वामिनी की रक्षा और सहायता करके फिर उसे सरधने की गद्दी पर बैठा दिया, जिसके उपलक्ष में बेगम ने अपनी निज मुख्य गोरी ख़वास मेरिया नामक उसे ब्याह दी और उसके साथ बहुत सा द्रव्य दहेज़ में दिया, यह सब सविस्तर कथा यथास्थान और यथा अवसर बेगम के जीवन चरित्र में पहले आ चुकी है।

थॉमस ने अपना बल बहुत बढ़ा लिया था और वह बड़ा

प्रभावशाली हो गया था। वह पश्चिम और उत्तर पश्चिम की ओर लड़ाई लड़ता रहा। घरेलू आपदा में फँसने और समीप की जातियों के साथ लड़ने झगने से ही उसको अवकाश नहीं मिलता था। बड़ी कठिनाई से उसने अपने कपटी स्वामी से मेल किया था और मेवात में जैसे तैसे शान्ति हुई थी कि उसको यह दुःखदायी संवाद मिला कि अप्पू खंडेराव ने नदी में डूबकर आत्मघात कर लिया और उसका पुत्र और उत्तराधिकारी वामनराव अपने पिता के समान टेढ़ी चाल चल रहा है। दुआब के ऊपरी भाग में एक छोटा सा संग्राम करने के अतिरिक्त, जिसमें उसने केवल किलेबन्द कस्बे शामली और लुखनाऊटी को जीता, थॉमस ने और कोई युद्ध नहीं किया, जब तक कि वह वामनराव से पूर्ण रूप से अलग नहीं हो गया।

थॉमस अब बिलकुल स्वतंत्र और स्वाधीन हो गया था। कौन जानता था कि आयरलैंड देश का मल्लाह भारत में आकर एक बड़े राज्य का स्वामी बन बैठेगा। हरियाना प्रान्त में, जो दिल्ली और सिन्ध के बड़े रेगिस्तान के मध्य में स्थित है, हाँसी नगर को थॉमस ने पहले अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसने किलों को, जो टूटे फूटे पड़े हुए थे, फिर नए सिरे से बनवाया और लोगों को बुला बुलाकर अपनी भूमि में बसाया। उसके यहाँ ऐसा आराम और चैन दिखाई दिया कि निकटवर्ती इलाके की प्रजा, जो उजड्ड भट्टीना जाति के मनुष्यों

और पंजाब के जाटों द्वारा लुटती रहती थी, तुरंत इसके आश्रय में चली आई। तदनंतर थॉमस ने क्या क्या किया और वह आगे को और क्या क्या करना चाहता था, यह उसके अपने इन शब्दों से विदित होगा—

"मैंने अपनी टकसाल स्थापित की जिसमें मैंने रुपए गढ़वाए और उन्हें अपनी सेना और देश में प्रचलित किया। इसके अतिरिक्त मैंने अपनी तोपें ढलवाईं और बन्दूकें व बारूद बनवाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि मेरा राज्य इतना फैल गया कि जिसकी सीमा सिक्खों की भूमि से जा भिड़ी। मैं चाहता था कि ऐसी सामर्थ्य और शक्ति प्राप्त करूँ कि अनुकूल अवसर मिलने पर पंजाब को विजय करने का प्रयत्न करूँ। मेरे मन में यह लालसा लग रही थी कि मुझे ऐसा गौरव प्राप्त हो जाय कि अटक नदी के तट पर पहुँचकर वहाँ ब्रिटिश झंडा गाड़ दूँ।"

थामस को अपनी पुरानी जायदाद से, जो मराठों की सेवा में उसे प्राप्त हुई थी और अब तक उसके अधिकार में बनी हुई थी, डेढ़ लाख रुपए के लगभग आय होती थी। पीछे से चौदह परगने उसके हाथ लगे, जिनमें न्यूनाधिक नौ सौ पचास गाँव सम्मिलित थे। इनसे प्रायः तीन लाख रुपए राजस्व के प्राप्त होते थे। यह हलका कर भी थॉमस ने किसानों के इच्छानुसार नियत किया था।

अपने राज्य की जब इस प्रकार व्यवस्था कर चुका, तब

थॉमस ने अपने पूर्व संरक्षक अप्पू खंडेराव के पुत्र वामनराव का साथ महाराज जयपुर पर आक्रमण करने में दिया। इस लड़ाई में उसके प्राण ही प्रायः जा चुके थे। परन्तु तो भी उसने अपना सहकारी जान मौरिस (John Morris) और अपने कई सौ चोटी के सिपाही गँवाकर अपनी जान बचा ली। उपरान्त थॉमस ने सिंधिया के प्रिय जनरल अम्बाजी से मित्रता जोड़ ली, जो उदयपुर राज्य में लुकवा दादा से पुनः लड़ाई करने की चेष्टा कर रहा था।

इस युद्ध में लुकवा दादा की सर्वथा विजय हुई जिसके अधिकार में राजपूताने का बहुत सा भाग आ गया।

थॉमस इस संग्राम में क्या सम्मिलित हुआ कि उसके सिपाही ही उससे फिर गए। परन्तु उसने उनके नेताओं को पकड़कर तोप से उड़ा दिया। इससे शान्ति स्थापित हो गई।

सन् १८०० में मल्लाह राजा थॉमस ने पुनः उत्तर और उत्तर-पश्चिम को चढ़ाइयाँ करके कीर्ति प्राप्त की। उस समय उसने अपने मन में यह संकल्प किया था कि समस्त पंजाब को विजय करके इंग्लैंड के सम्राट् तीसरे जॉर्ज को अर्पण कर दूँगा। परन्तु अँगरेजों के शत्रुओं ने उसके मार्ग में नाना प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर दीं।

जब फराँसीस जनरल पेरन (Perron) का डंका भारत में जोर शोर से बज रहा था और सतलज से लेकर नर्मदा तक उसी की तूती बोल रही थी, तब उसने अपने सिक्खों

तथा मराठे सरदारों और उन युरोपियन अफसरों से प्रत्यक्ष में विगाड़ न करके जो उसकी डोर में न थे, इस प्रकार उन पर दबाव डालना चाहा कि उसने जॉर्ज थॉमस को दिल्ली बुलाया और उससे कहा कि सिंधिया की सेवा में आ जाओ, जिसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह था कि तुम पैरन को अपना स्वामी बना लो। परन्तु अँगरेज़ों और फराँसीसों में परस्पर वैर और द्वेष था। अतः थॉमस ने पैरन के इस मंतव्य को अपनी जाति के अपमान का कारण समझा और उसे घृणापूर्वक अस्वीकार किया। इस पर फराँसीसों और मराठों की वलिष्ठ सम्मिलित सेना ने लुइस बोर्क्विन (Louis Bourquin) की अध्यक्षता में थॉमस के इलाके पर चढ़ाई की। थॉमस भली भाँति सोच विचार कर काम नहीं किया करता था; वल्कि जो उसे सूझ गई, उसके अनुसार ही कार्य करता था। ऐसा ही उसने अब किया। शत्रु को इधर उधर से हटा-कर यह उस सेना पर टूट पड़ा जो उसके दुर्ग जॉर्जगढ़ को घेरे हुए थी और उन्हें क्षति पहुँचाकर वहाँ से उनको भगा दिया और आप उस स्थान में जमकर बैठ गया। सुदृढ़ रोक थाम खड़ी करके उसने आगे की रक्षा कर ली और पुनः होलकर की ओर से अपने पास कुमक आने की प्रतीक्षा, अथवा अनुकूल अवसर प्राप्त होने पर अपने वैरी पर दूसरी चोट मारने का विचार करने लगा।

किन्तु उन घटनाओं ने जो पीछे घटित हुईं, यह सिद्ध

कर दिया कि उसकी यह तजवीज ठीक न थी; क्योंकि होलकर की ओर से कोई कुमक उसके सहायतार्थ नहीं आई, प्रत्युत् फराँसीसों को मदद मिल गई; इसलिये उन्होंने इसकी छावनी को चहुँ ओर से घेरकर इसका निकास रोक दिया। इसके अतिरिक्त कोढ़ में खाज यह और उत्पन्न हुई कि वैरी ने थॉमस के सैनिकों के जेब घूँस से भर दिए। इस कारण वे अपने स्वामी को छोड़कर भागने लगे। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि थॉमस के पास अपने प्राणों की रक्षा के लिये इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा कि वह भी पीठ दिखाकर भाग जाय। तारीख १० नवम्बर सन् १८०१ को प्रातः काल नौ बजे के लगभग वह एक उत्तम ईरानी घोड़े पर चढ़कर और अपनी अर्दली के सवारों को साथ लेकर अचानक घर से बाहर निकल पड़ा और चक्करदार मार्ग से दौड़ लगाकर सौ मील से ऊपर चल कर तीन दिन से भी कम समय में हाँसी पहुँच गया। परन्तु उसके मन्द भाग्य के कारण यहाँ भी उसकी रक्षा न हो सकी; क्योंकि शत्रु बुरी तरह से उसके पीछे पड़ा हुआ था। उसने हाँसी में भी पहुँचकर थॉमस की राजधानी को अपनी सेना से घेर उसी भाँति हँसली में ले लिया जैसे कि पहले उन्होंने उसकी छावनी को अपने वश में कर लिया था। थॉमस ने अपने गिने गिने हुए मुट्ठी भर स्वामी-भक्त सिपाहियों से मुकाबला करके अपने वैरी लुइस बोरक्विन को घायल और

विस्मित कर दिया, जो आशा अथवा भय के वश होकर कदापि अपने स्वामी के पास से टाले नहीं टल सकते थे। इतने पर भी थॉमस अपने प्रिय सैनिकों को दुश्मन की बड़ी फौज से कब तक लड़ा सकता था! उसके अच्छे दिन व्यतीत हो चुके थे, उसके भाग्य ने उसे जवाब दे दिया था; अतएव उसने हारकर अन्य अफसरों के द्वारा वोरक्विन से यह वचन ले लिया कि अँगरेजी इलाके में चले जाने की उसे आज्ञा दे दी जाय; और वह अपने राज्य के नष्ट होने पर और अधिकार से च्युत होने पर तारीख १ जनवरी सन् १८०२ को चल दिया।

समय की बलिहारी है कि आज थॉमस ऐसा लुट गया कि उसके पास न राज्य ही रहा, न सेना ही रही और न धन ही रहा। थोड़े दिन ही हुए कि जब एक विशाल राज्य पर उसका आधिपत्य था और वह रणक्षेत्र में छः हजार पल्टनें, दो हजार घुड़सवार सेना और पचास तोपें खड़ी कर सकता था। उसका जीवन निरन्तर पटियाला और झींद के सिक्खों, जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के राजपूतों तथा मराठों से लड़ने में बीता था।

अँगरेजों की वर्तमान नाजुक मिजाजी और भोग विलास की प्रकृति की तुलना पुराने समय के युरोपियनों से, जिनमें से एक थॉमस भी था, जिनका जीवन नित्य नई आपत्तियों में बड़ी कठिनाइयों और कष्टों से व्यतीत हुआ करता था, अंगरेजी ग्रंथ मुगल एम्पायर के ग्रंथकार मिस्टर हेनरी जार्ज

कीनी साहब ने इन खरे और चुभते हुए वाक्यों में की है—

"आज कल के पतित युरोपियनों को जिन्होंने अपनी ऐसी मनमानी दिनचर्य्या (Programme) बना ली है कि जिससे सदैव वे छुट्टियों पर जाकर शीतल पहाड़ों के जलवायु का सेवन करें, समय समय पर फरलो लेकर इंगलैंड चले जायँ, और जब वे भारत में रहें तो अपने निवासस्थान को विदेशों से मँगाई हुई भोग-विलास की सामग्री से ऐसा सुसज्जित करें कि जिसमें फिर उन्हें किसी भाँति लेशमात्र गरमी की भी सम्भावना ही न रहे, उनको प्रायः यह बात कपोलकल्पित और मिथ्या प्रतीत होगी कि कोई ऐसा जमाना भी हुआ है कि जब हमारे पूर्वजों को देश-निकाले में अपना इतना दीर्घ जीवन व्यतीत करना पड़ता था कि जिसमें लगातार वर्षों पर्यन्त उनको अँगरेजी भाषा का एक शब्द तक नहीं सुनाई देता था, जहाँ मोटे झोटे गुदड़ी के परदों और साधारण लकड़ी के किवाड़ों के भीतर रहना ही उनको बहुत बड़े भोग-विलास के भवन का सा जान पड़ता था। यदि उनको कभी बाजार में बिकती हुई भद्दी मदिरा के कुछ घूँट मिल गए, तो उसके नशे में जो समय उनका कटता था, वह उनको अति प्रिय और आराम चैन का प्रतीत होता था। परन्तु ऐसे अवसर भी उनको भूले भटके और बड़ी दुर्लभता से प्राप्त होते थे; क्योंकि उनको तो रात दिन लड़ाइयों के विचार घेरे हुए रहते थे, जिनमें सफलता पाना ही सर्वथा निज योग्यता का परिचय देना समझा जाता

था। थामस के जीवन का भी ऐसा ही मुख्य पारतोषिक था।"

फिर हम भारतवासियों के पतन का क्या कहना है जिनमें न बल है, न पुरुषार्थ है, न साहस है। हम सब गुणों से रहित और सर्वथा पतित हो गए हैं। आज भगवान रामचन्द्र, कृष्ण-चंद्र, भीष्म पितामह आदि की संतानों की क्षीण-हीन दशा देखकर उस पर जितना रोया जाय, जितना उस पर खेद किया जाय, वह थोड़ा ही है।

अँगरेज़ी इलाके में पहुँचकर थामस को अपनी जन्मभूमि की याद आई और उसने आयरलैंड जाने का संकल्प किया। स्वदेश-प्रयाण करने से पूर्व वह सरधने में समरू की बेगम के पास गया, जहाँ उसने अपनी स्त्री और तीनों पुत्रों जॉन, जेम्स और जॉर्ज (John, James and George) और पुत्री जुलियाना (Julliana) को बेगम के संरक्षण में छोड़ा; और आप उसने कलकत्ते को गमन किया। किंतु मौत ने उसे मार्ग में ही आ घेरा और २२ अप्रैल सन् १८०२ को ४६ वर्ष की अवस्था में बहरामपुर में उसके प्राण छूट गए।

थामस की मृत्यु के पीछे बेगम उसके परिवार का उदारता-पूर्वक पालन पोषण करने लगी। लड़की और लड़कों के विवाह भी हो गए। जॉन संतानहीन ही रहा और मर गया। जेम्स ने एक पुत्र जार्ज नामक छोड़ा जो दोनों आँखों से अंधा होकर मरा, जिसकी पुत्री जॉना (Joanna) थी। थॉमस के तीसरे पुत्र जॉर्ज के केवल एक बेटी थी जो उस पीड़ा से मृत्यु

को प्राप्त हुई जो उसे दिल्ली से सन् १८५७ ई० के विद्रोह में निकल भागने से हुई थी। उसका विवाह हो गया था और उसे बच्चे भी पैदा हुए थे; परन्तु वे उससे पहले ही मर गए थे। अब रही थामस की पुत्री जुलियाना। उसके एक पुत्र जोज़फ़ (Joseph) नाम का हुआ जो आगरे में निःसंतान मर गया। जॉर्ज थॉमस के वंश में अब उसकी परपोती जीना जीवित है। उसका विवाह मिस्टर एलेक्ज़ेन्डर मार्टिन पेनशन प्राप्त क्लर्क से हुआ है और वह दो पुत्रों की माता है।

भारतवासी अधिकारीगण

बेगम के जीवन चरित्र में अब तक अधिकतर उसके युरोपियन अफसरों के नामों और कार्यों का वर्णन हुआ है, जो उसके गौरव और महत्त्व का अवश्य पूर्णतया प्रकाश करता है; क्योंकि भारतीय इतिहास के उस युग में, जब कि अराजकता और हलचल तथा लूट मार चारों ओर हो रही थी, उसने अपनी ऐसी अति प्रशंसनीय और उत्कृष्ट योग्यता के अनेक गुण प्रकट किए जिनसे विदेशीय गोरी जातियों के मनुष्यों ने, जिन्होंने भ्रम में आकर अपने मन में यह मिथ्या कल्पना कर रक्खी है कि हमारा जीवन तो अन्य महाद्वीपों के निवासियों पर शासन और अधिकार करने के ही लिये है, उसकी सेवा में रहना और उसकी आज्ञा मानना स्वीकार किया। परन्तु इसका अर्थ किसी प्रकार यह नहीं है कि भारत-

वासियों के लिये बेगम के शासन में राज-सेवा में प्रविष्ट होने के लिये कुछ रोक टोक थी। उसने हिन्दू मुसलमानों को भी अपने अधिकार में बड़े बड़े उच्च पदों पर नियुक्त किया था।

बेगम ने सन् १७७८ से लेकर सन् १८३६ ई० पर्यंत ५८ वर्ष तक राज्य किया। इस दीर्घ काल के भीतर उसकी सेना और जागीर में समय समय पर अनेक परिवर्तन हुए। इस बीच में विविध हिन्दुस्तानी कर्मचारी विविध समयों पर विविध छोटे बड़े पदों पर नियुक्त और पृथक् होते रहे; इसलिये इस प्रकरण में सविस्तर उनके नामों और कार्य्यों का परिचय नहीं दिया जा सकता; और न उन सब लोगों का कोई ऐसा विस्तृत और ब्योरेवार लेख या तालिका ही विद्यमान है; किंतु इसमें किञ्चित् मात्र संदेह करने का स्थान नहीं है कि बेगम को अपने स्वदेशी भाई भी ऐसे ही प्यारे थे जैसे कि युरोपियन अफसर, जिनके साथ अनेक कारणों से वह बहुत हिल मिल गई थी।

पीछे गिरजे के वृत्तान्त में बतलाया जा चुका है कि स्मारक भवन में दीवान रायसिंह और सरदार इनायतउल्लाह, बेगम की घुड़सवार सेना के अध्यक्ष, और उसका फर्स्ट एडी कांग इन् वेटिंग (Commandant of Cavalry and first aid-de-Camp in waiting) की मूर्तियाँ रक्खी हैं। एक अबुलहसीर बेग हैं जिनको २०००) वसीयतनामे में देना लिखा है।

लाला चिरंजीलाल नायब रजिस्ट्रार कानूनगो तहसील

बुढ़ाना जिला मुजफ्फरनगर ने अपने पत्र में बेगम के निम्न लिखित अफसरों का वर्णन किया है।

राव हरकरणसिंह प्रधान मंत्री थे जिनका वेतन एक हजार रुपए मासिक था। उनकी न जाने किस कारण से मौज़े बामनोली तहसील बागपत जिला मेरठ में हत्या हो गई। उनके स्थान में उनके पुत्र राव दीवानसिंह मंत्री बनाए गए। राव जौकासिंह उपमंत्री थे। इनके अतिरिक्त लाला गुलजारीमल दीवान, मुन्शी कान्हसिंह मीर मुन्शी और बंसीसिंह जमादार थे। बेगम के दस्तखती एक फारसी परवाने से, जो फोतलिप साहिब हाकिम बुढ़ाने के नाम तारीख ८ सफर सन् १२१८ हिजरी को लिखा गया था, प्रकाशित होता है कि चौधरी रामसहाय को उसके द्वारा गिरदावर कानूनगो नियुक्त किया गया था।

इतिहास से पता चलता है कि राजा मन्नूलाल और जवाहरमल और मोहम्मद रहमत खाँ बेगम की सरकार के वकील थे। कसबा टप्पल के पुराने मनुष्यों के कथन से ऐसा विदित हुआ है कि वहाँ के कानूनगो कुल के लाला गिरिधारी लाल बेगम के राज्य के देश दीवान हुए थे। इसी वंश के द्वितीय पुरुष लाला बख्शीराम* बेगम के शासनकाल में

---

* यह सज्जन इस पुस्तक के लेखक के [illegible] से, [illegible] एक फारसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तारीख [illegible] सन् १२४८ हिजरी या सन् १८२९ ईस्वी [illegible] है जिसको ९९ वर्ष व्यतीत हुए। [illegible]

ताल्लुक़ा, कसवा अर्थात्, जेवर, टप्पल और पहासऊ के मशरफ़ हुए। मशरफ के अधिकार में पुलिस विभाग और महकमा सायर अथवा शुल्क विभाग का प्रबन्ध था।

फुटकर बातें

अब कुछ ऐसी लोकोक्तियों का वर्णन करके, जिनका आधार विशेषतः बेगम के समय से अब तक सुनने सुनाने पर चला आता है, इस पुस्तक की समाप्ति की जाती है। ये बातें साधारण हैं; परन्तु इनसे भी बेगम के चित्त की वृत्ति

और दाम हैं। मेरी इच्छा हुई कि उसकी प्रतिलिपि इस पुस्तक में भी उद्धृत करूँ; किन्तु इस कारण से कि यह तीन तालिकाओं में से एक ही है, अतएव इसके जोड़ों का ठीक मिलान नहीं होता; ऐसे अधूरे हिसाब के प्रकाशित करने से क्या लाभ हो सकता है, वह यहाँ नहीं दिया। परन्तु इससे यह अवश्य परिणाम निकलता है कि इस देश में पहले वस्तुएँ इस बहुतायत से होती थीं कि दाम अर्थात ४ कौड़ी का जैसा छोटा सिक्का भी प्रचलित था। दूर क्यों जायँ, युरोप के महायुद्ध सन् १९१४-१८ से पूर्व भी यहाँ कौड़ियों से लेन देन होता था। ग़रीब लोग धेले छदाम बल्कि अद्धी से भी साग पात, नोन तेल आदि नित्य के आवश्यक पदार्थ मोल ले सकते थे। किन्तु अब तो कौड़ियों का व्यवहार ही बिलकुल जाता रहा। उनका पूर्ण रूप से अभाव ही हो गया। थोड़े वर्षों में इस विचित्र और विस्मयजनक परिवर्तन का क्या ठिकाना है कि पैसा भी कौड़ियों के मोल का न रहे। क्या अब भारतवासी धनाढ्य हो गए? कदापि नहीं, वरन् इस से उल्टा यह सिद्ध होता है कि उनके देश की पैदावार की इतनी अधिकता और प्रचुरता से निकासी होती है कि जिन भावों पर यहाँ की सामग्री विदेश में बिकती है, लगभग उन्हीं पर वह इस देश में भी बिकती है जहाँ कि वह पैदा होती है।

का सोचने और समझनेवाले मनुष्य को भली-भाँति पता लग सकता है।

(१) लाला भजनलाल चौकड़ात कस्बा टप्पल जिला अलीगढ़ का, जिनके पूर्व पुरुषों के यहाँ बेगम का मोदीखाना था, कथन है कि एक बार बेगम का एक चपरासी उनके बुजुर्ग लाला इन्द्रमन चौकड़ात के पास आया और व्यर्थ बकवाद करने लगा। उन्होंने उस चपरासी से कहा कि तेरा तो हमें कुछ डर नहीं है; परन्तु जो सरकारी चपरास तू बाँधे है, उसका सम्मान और भय हमें बहुत है, जिसके कारण ये तेरी अनुचित बातें हम सुन रहे और सह रहे हैं। इस पर उस मूर्ख चपरासी ने आग बबूला होकर सरकारी चपरास को अपनी कमर से खोलकर फेंक दिया और बिगड़ कर चौकड़ात से बोला कि अब तुम मेरा क्या कर सकते हो! इस पर उन्होंने उसे खूब ठोंका। वह पुकारता हुआ बेगम के हजूर में गया और वहाँ जाकर उसने बहुत वावेला मचाया। बेगम ने चौकड़ात को बुलाया और इस घटना का समाचार पूछा। उक्त चौकड़ात ने जो कुछ बीती थी, सब कथा सुना दी और कहा कि अम्मा जान! जब इसकी दृष्टि में सरकारी चपरास की प्रतिष्ठा न रही, तो फिर हमने भी इस शठ को अच्छी तरह पीटकर सरकारी वर्दी और चपरास का सम्मान करने के निमित्त इसे यथा योग्य शिक्षा दी।

बेगम ने चौकड़ात के व्यवहार को पसन्द किया और चपरासी को उसके अपराध का दंड दिया।

(२) बेगम का कोई सेवक दौलत नाम का था। उससे न जाने क्या अपराध हो गया जिसके कारण बेगम ने उसे अपनी सेवा से पृथक् कर दिया। दौलत एक चतुर मनुष्य था। वह प्रातःकाल बेगम के समक्ष उपस्थित हुआ और पूछने लगा—"हजूर! दौलत जाय या रहे?" यह विलक्षण प्रश्न सुनकर बेगम को यही उत्तर देना पड़ा कि दौलत तो अवश्य रहे *।

(३) "समरू संतति" शीर्षक के पढ़ने से विदित होता है कि समरू की अनेक सन्तानें बाल्यावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुईं। इन कष्टों से बेगम का हृदय विदीर्ण हो गया था। वह वीर रमणी, जो युद्ध में तोप बंदूकों की मार की तनिक भी परवाह नहीं करती थी, वही इन असह्य दुःखों से कातर और अधीर हो गई थी *।

बेगम समरू को अपने ग्रहण किए हुए रोमन कैथलिक ईसाई धर्म्म पर जो अपूर्व श्रद्धा थी, उसका वर्णन हमारे पाठकों

---

* ये दोनों बातें वर्त्तमान लेखक ने अपनी बाल्यावस्था में टप्पल में सुनी थीं। पहली के विषय में तो स्मरण नहीं कि किससे सुनीं, किंतु दूसरी के संबंध में अच्छी तरह से याद है कि वह इलाहीबख़्श पतंगबाज से सुनी थी, जिसे हजारों शेर प्रत्येक ज़िले के जबानी याद थे और जिसने बेगम का समय भी देखा था।

ने पीछे "धार्मिक भावना" नामक अध्याय में पढ़ा ही होगा। परन्तु यह भी निश्चय है कि भारत में अन्य धर्म्म के अनुयायी जो मनुष्य थे, उनसे भी उसको किंचित् मात्र द्वेष न था: वरन् उनके साथ सहानुभूति और प्रेम प्रकट करने और उनके धर्म्म में भी चाहे किसी कारण उसके श्रद्धा रखने का परिचय मिलता है। इन पंक्तियों के लेखक को हाल में ही एक प्रमाण मिला है जिसको वह इस कारण से कि आज कल नास्तिकता का बड़ा ज़ोर है और एक धर्म्म का अनुयायी दूसरे धर्म्मों के अनुयायी के रक्त का प्यासा बन रहा है, बह झूठा नहीं समझ सकता।

मिती ज्येष्ठ कृ० १३ संवत् १९८२ तदनुसार तारीख़ २१ मई सन् १९२५ को जब इस पुस्तक के अभागे लेखक को अपनी इकलौती संतान अर्थात् प्रिय पुत्र वेदप्रकाश के फूल गंगाजी में प्रवाह करने के लिये हरिद्वार जाना पड़ा, तो उसे अपने कुल के तीर्थ-पुरोहित बट्टूलदास गंगाशरण के स्थान पर ठहरने का अवसर हुआ। उस समय उनकी बही से यह प्रतीत हुआ कि उनके पूर्वज गंगा पुरोहित मानकचंद के समय में तीन बार बेगम समरू गंगा स्नान करने आई थी और उनके यहीं ठहरी थी: अर्थात्—

(१) प्रथम बार संवत् १८७९ (सन् १८२२) में, जब इनके साथ चौधरी हरसुख और गुलाब हम्बलवाले थे।

(२) द्वितीय वार संवत् १८८७ (सन् १८३०) में, जब उसके साथ चौधरी हीरासिंह टप्पलवाला राजपूत था।

(३) तृतीय वार संवत् १८९० (सन् १८३३) में, जब उसके साथ चौधरी साँवतसिंह ज़मींदार था।

मनोरंजन पुस्तकमाला

अपने ढंग की यह एक ही पुस्तकमाला प्रकाशित हुई है जिसमें नाटक, उपन्यास, काव्य, विज्ञान, इतिहास, जीवन-चरित आदि सभी विषयों की पुस्तकें हैं। यों तो हिंदी में नित्य ही अनेक ग्रंथ-मालाएँ और पुस्तक-मालाएँ निकल रही हैं, पर मनोरंजन पुस्तकमाला का ढंग सब से न्यारा है। एक ही आकार प्रकार की और एक ही मूल्य में इस पुस्तकमाला की सब पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। इसकी अनेक पुस्तकें कोर्स और प्राइज बुक में रक्खी गई हैं; और नित्य प्रति इनकी माँग बढ़ती जा रही है। कई पुस्तकों के दो दो, तीन तीन संस्करण हो गए हैं। इसकी सभी पुस्तकें योग्य विद्वानों द्वारा लिखवाई जाती हैं। पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या २५०-३०० और कभी कभी इससे भी अधिक होती है। ऊपर से बढ़िया जिल्द भी बँधी होती है। आवश्यकतानुसार चित्र भी दिए जाते हैं। इन पुस्तकों में से प्रत्येक का मूल्य १) है; पर स्थायी ग्राहकों से ॥।) लिया जाता है जो पुस्तकों की उपयोगिता और पृष्ठ संख्या आदि देखते हुए बहुत ही कम है। आशा है, हिंदी-प्रेमी इस पुस्तकमाला को अवश्य अपनावेंगे और स्थायी ग्राहकों में नाम लिखावेंगे। अबतक इसमें भिन्न भिन्न विषयों पर ४५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी सूची इस प्रकार है—

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दुबे।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय।
(१२) कबीर-वचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेव-विहारी मिश्र बी० ए०।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०, २१) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०।
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और पं० शुकदेव विहारी मिश्र बी० ए०।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा बी० ए०।

(२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए-जी०।
(२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०।
(३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए०।
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।
(३६) रामचंद्रिका—संकलन कर्त्ता लाला भगवानदीन।
(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
(३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
(४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुकदेवविहारी मिश्र।
(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक व्रजरत्नदास।
(४३) शिशु पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा।
(४४) शाही दृश्य—लेखक मा० दुर्गाप्रसाद शुक्ल।
(४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए०।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १) है: पर स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें ॥।) में दी जाती हैं।

उपरोक्त पुस्तकों का पता और नया सूचीपत्र मँगाइए।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

सूचना

नोरंजन पुस्तकमाला की मूल्य-वृद्धि

जिस समय सभा ने मनोरंजन पुस्तकमाला प्रकाशित करना आरम्भ किया था, उस समय प्रतिज्ञा की थी कि इसकी सब पुस्तकें २०० पृष्ठों की होंगी। पर, जैसा कि इसके ग्राहकों और साधारण पाठकों को भली भाँति विदित है, इस पुस्तकमाला की अधिकांश पुस्तकें प्रायः २५० पृष्ठों की और बहुत सी ३०० अथवा इससे भी अधिक पृष्ठों की हुई हैं। यही कारण है कि सभा को १२ वर्षों तक इस पुस्तकमाला का संचालन करने पर भी कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ। भविष्य में भी सभा इस माला से कोई लाभ तो नहीं उठाना चाहती, पर वह इस माला में अनेक सुधार करना चाहती है। सभा का विचार है कि भविष्य में जहाँ तक हो सके, इस माला में प्रायः २५० या इससे अधिक पृष्ठों की पुस्तकें ही निकला करें और इसकी जिल्द आदि में भी सुधार हो। अतः सभा ने निश्चय किया है कि इस माला की अब तक की प्रकाशित सभी पुस्तकों का मूल्य १) से बढ़ाकर १।) कर दिया जाय। पर यह वृद्धि केवल फुटकर बिक्री में होगी। माला के स्थायी ग्राहकों से इस माला की सब पुस्तकों का मूल्य अभी कम से कम ५० वीं संख्या तक ।।।) ही लिया जायगा।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा

काशी।

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला

शाहपुरा के श्रीमान् महाराज कुमार उम्मेदसिंह जी की स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती महाराज कुँवरानी श्री सूर्य्यकुमारी के स्मारक में यह पुस्तकमाला निकाली गई है। हिंदी में अपने ढंग की एक ही पुस्तकमाला है। इस माला की सभी पुस्तकें बहुत बढ़िया मोटे एँटीक कागज पर बहुत सुन्दर अक्षरों में छपती हैं और ऊपर बहुत बढ़िया रेशमी सुनहरी जिल्द रहती है। पुस्तकमाला की सभी पुस्तकें बहुत ही उत्तम और उच्च कोटि की होती हैं और प्रतिष्ठित तथा सुयोग्य लेखकों से लिखाई जाती हैं। यह पुस्तकमाला विशेष रूप से हिंदी का प्रचार करने तथा उसके भांडार को उत्तमोत्तम ग्रंथ-रत्नों से भरने के उद्देश्य और विचार से निकाली गई है; और पुस्तकों का अधिक से अधिक प्रचार करने के उद्देश्य से दाता महाशय ने यह नियम कर दिया है कि किसी पुस्तक का मूल्य उसकी लागत के दूने से अधिक न रक्खा जाय; इसी कारण इस माला की सभी पुस्तकें अपेक्षाकृत बहुत अधिक सस्ती भी होती हैं। हिंदी के प्रेमियों, सहायकों और सच्चे शुभचिंतकों को इस माला के ग्राहकों में नाम लिखा लेना चाहिए।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा,

काशी।

जायसी ग्रंथावली

सम्पादक—श्रीयुक्त पं० रामचंद्र शुक्ल

कविवर मलिक मुहम्मद जायसी का लिखा हुआ "पद्मावत" हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है। ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य्य और भावों की गंभीरता के विचार से यह काव्य बहुत ही उच्च कोटि का है। पर एक तो इसकी भाषा पुरानी अवधी; दूसरे भाव गंभीर; और तीसरे आजकल बाजार में इसका कोई शुद्ध और सुन्दर संस्करण नहीं मिलता था, इससे इसका पठन-पाठन अब तक बंद सा था। पर अब सभा ने इसका बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिससे यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। अंत में जायसी का अखरावट नामक काव्य भी दिया गया है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अब नागरीप्रचारिणी पत्रिका त्रैमासिक निकलती है और इसमें प्राचीन शोध संबंधी बहुत ही उत्तम, विचारपूर्ण तथ गवेषणात्मक मौलिक लेख रहते हैं। पुरातत्व के सुप्रसिद्ध विद्वान राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा इसका सम्पादन करते हैं। ऐसी पत्रिका भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं में अभी तक नहीं निकली है। यदि भारतवर्षीय विद्वानों के गवेषणापूर्ण लेखों को, जिनसे भारतवर्ष के प्राचीन गौरव और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बातों का पता चलता है, आप देखना चाहें तो इस पत्रिका के ग्राहक हो जाइए। वार्षिक मूल्य १०) ; प्रति अंक का मूल्य २॥) है। परंतु जो लोग ३) वार्षिक चंदा देकर नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के सभासद हो जाते हैं, उन्हें यह पत्रिका बिना मूल्य मिलती है। इस रूप में यह पत्रिका संवत् १९७७ से प्रकाशित होने लगी है। पिछले किसी संवत् के चारों अंकों की जिल्द-बँधी प्रति का मूल्य ५) है।

हमारे पास स्टाक में नागरीप्रचारिणी पत्रिका के पुराने संस्करण की कुछ फाइलें भी हैं। सभा के जो सभासद या हिंदी प्रेमी लेना चाहें, शीघ्र मँगा लें; क्योंकि बहुत थोड़ी कापियाँ रह गई हैं। मूल्य प्रति वर्ष की फाइल का १) है।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।